प्रकाशक :—

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम

रत्नकूट, हम्पी

पो० कमलापुरम् स्टे० होस्पेट

जिला बेलारी (मैसूर स्टेट)

Hampi, Kamlapuram
Hospet, Dist. Bellari
Mysore

महावीर जयन्ती | प्रथमावृत्ति | मूल्य—५)
वीर निर्वाण सं० २५०० | २२००

मुद्रक :—

अजन्ता फाइन आर्ट प्रेस

२०, बालमुकुन्द मक्कर रोड,

कलकत्ता-७

ॐ नमः

अध्यात्म-योगी, सन्तप्रवर श्री सहजानंदघनजी

(संक्षिप्त-परिचय)

'देह छतां जेनी दशा, वर्त्ते देहातीत।
ते ज्ञानीनां चरण मां, हो वंदन अगणित ॥"

ये पंक्तियाँ 'आत्मसिद्धि शास्त्र' की हैं, जिसकी रचना परम कृपालु देव श्रीमद् राजचंद्र प्रभु द्वारा हुई है। परम कृपालु देव के वचनों को यथार्थ रूप में अपने जीवन में उतार कर तद्रूप आत्मस्थिति सिद्धकर बताने वाले प्रभु श्री सहजानंदघनजी महाराज कृत चैत्यवन्दन, स्तुति, स्तवन, पद एवं नियमसार रहस्यादि सहजानंद-सुधा के प्रथम भाग पद्यकृतियों के रूप मे सहजानंद-पदावली ग्रन्थ मुमुक्षु पाठको के कर कमलों में रखते हर्ष और दुख उभय भावों का अनुभव होता है।

हर्ष होने का कारण तो यह है कि परम-पूज्य योगिराज, प्रयोगवीर गुरुदेव श्री सहजानंदघन जी महाराज की सभी रचनाएँ अद्यावधि प्रायः अप्रकाशित ही रही हैं क्योंकि परम-पूज्य गुरुदेव-को प्रसिद्धि की लेश मात्र भी इच्छा न होने के कारण वे किसी भी कृति को प्रकाशित करने की आज्ञा नहीं देते थे। इतना ही नहीं, वरन् प्रसिद्धि न हो इसलिए उन्होंने अनेक स्वहस्तलिखित कृतियों को भी अलभ्य कर दिया था। और दुख का अनुभव इसलिए होता है कि ऐसे आत्मज्ञानी योगीन्द्र परम-

पूज्य गुरुदेव की कृतियाँ अव ऐसे समय में प्रकाशित कर रहे हैं जव कि वे अपने वीच नहीं रहे। संवत् २०२७ मिती कार्त्तिक शुक्ल २ रविवार ता० १-अक्टोवर १६७० को रात्रि दो वजकर पचीस मिनट पर परमपूज्य गुरुदेव की पवित्र आत्मा ने इस नश्वर देह का त्याग कर दिया।

कच्छ-डुमरा के परमार गोत्रीय ओसवाल सुश्रावक श्री नागजी भाई तथा सुश्राविका श्री नयनादेवी माता की कोख से सं० १६७० भाद्रपद शुक्ल १० को सूर्योदय के समय उस तेजस्वी आत्मा का जन्म हुआ था। जन्म के समय मूल नक्षत्र होने से आपका "मूलजी भाई" नामकरण हुआ। कच्छ डुमरा के स्कूल में सातवीं कक्षा तक अभ्यास करने के पश्चात् अध्ययन की अदम्य इच्छा होने पर भी संयोग वश पढाई छोडकर उन्हे आजीविका के हेतु वंवई महानगरी में आना पडा। वंवई में आप कच्छ लायजा निवासी श्री पुनशीभाई मोनजी के यहाँ व्यापार कार्य से संलग्न हो गए।

वम्वई-भातवजार के गुदाम में वैठे हुए वि० सं० १६८६ में १६ वर्ष की तरुणावस्था में आत्म-चिन्तन करते-करते आप समाधिस्थ हो गए, देहभान छूट गया। इस समाधि-दशा में उन्हें आत्म-दर्शन और विश्व-दर्शन हुआ। उन्होंने सांसारिक प्राणियों को वीतराग परमात्मा श्री महावीर स्वामी के वतलाए माग से विपरीत दिशा में मार्गावलम्वन करते देखा। इस समय उनके मन में विकल्प हुआ कि मुझे क्या करना है? आदेश हुआ

कि-सिद्ध भूमि में जाकर आत्म-साधना करो और वृक्षवत् समाधिस्थ वनो।

परन्तु इस कलिकाल में ऐसी साधना करना दुष्कर बताने से श्री मूलजीभाई ने माता-पिता की आज्ञा लेकर खरतर गच्छाचार्य श्री जिनरत्नसूरिजी के पास वि० सं० १९९१ में कच्छ-लायजा में भागवती दीक्षा स्वीकार की। आपका दीक्षानाम 'भद्रमुनि' रखा गया। उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी के पास अल्प समय में ही आपने वहुत सारे शास्त्रों का अभ्यास कर लिया।

श्री भद्रमुनि जी महाराज धर्म ध्यान और तपश्चर्या में दृढ़ निश्चयी और अविरल वीर थे। दीक्षा से पूर्व ही आपने प्रतिदिन एकाशना चालू कर दिया और वाद में उस तपश्चर्या ने ठाम-चौविहार का रूप धारण कर लिया जिसे आजीवन निभाया। गुरुजनों के साथ वारह वर्ष पर्यन्त विविध क्षेत्रों में विचरण कर आत्मज्ञान के विकास की प्रवल भावना से गुफावास प्रारंभ किया और ध्यान व योग साधना में आगे वढ़ने के लिए गुर्वाज्ञा से एकल विहारी बने। आपने एकाकी विचरते हुए लगभग समग्र-भारत के क्षेत्रों में परिभ्रमण किया और विविध क्षेत्रीय गिरि-कन्दराओं में रहकर आत्म-साधन किया।

सं० २००३ पोष शुक्ल १४ सोमवार को संध्या समय अमृत-वेला में ६ वजे आपने मोकलसर (राजस्थान) गुफा में प्रवेश किया। परमपूज्य गुरुदेव का यह सर्वप्रथम गुफा प्रवेश था। इस

गुफा से ऊपर की गुफा में एक चीता रहता था। जिस गुफा में परमपूज्य गुरुदेव साधना करते थे उसमें दो वडे विषधर फणधारी सांपो का भी वास था। आत्मलीनता के कारण शरीर की लेशमात्र की पर्वाह किए बिना आप निर्भय साधना रत रहते थे। सव जीवों के प्रति आपकी अत्यन्त करुणामयी स्वात्म दृष्टि थी। आपके पवित्र हृदय में स्नेहभाव और मैत्रीभाव के पावन निर्झर प्रवहमान थे।

सं० २००४ की कार्त्तिक-पूर्णिमा के दिन मोकलसर से विहार कर आठ मील दूर गढ़सिवाना पधारे। वहाँ से पाली, ईडर आदि अनेक स्थलों में आपने गुफावास किया। ईडर की तप्त शिलाओं पर ग्रीष्मकाल के मध्यान्ह में घण्टों तक कायोत्सर्ग ध्यान मे लीन रहते थे (ईडर की यह भूमि परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजी की तपोभूमि थी) चारभुजारोड (आमेट) में शीतकाल की अत्यन्त ठण्ढ में मात्र एक पंछिया और पतली चादर धारणकर साधना-मस्त रहते थे।

हृषिकेश, देहरादून, हरिद्वार, उत्तरकाशी तथा पंजाब के अनेक स्थानों में निर्विकल्प भाव से विचरण करते हुए सं० २०१० में परम पूज्य प्रभु महातीर्थ श्री सम्मेत-शिखर जी पधारे। मधुवन में और गिरिराज पर श्री चिदानंदजी महाराज की तपोभूमि-गुफा में रहकर आपने आत्म-साधना की। वहाँ से विहार कर श्री महावीरस्वामी की निर्वाण-भूमि पावापुरी में चातुर्मास किया। आप मौन साधना रत थे फिर भी दहाणु के लोहाणा

परिवार की सुपुत्री सरला वहिन के लिए एक घण्टा व्याख्यान क्रम रखकर समाधि-माला पद्य रचना द्वारा समाधि मरण कराया। पावापुरी में परमपूज्य गुरुदेव को जनता आत्मज्ञानी वावा नाम से पुकारती थी। गुरुदेव की पावापुरी स्थिति के समय इतनी अच्छी वर्षा हुई व धान्य उत्पन्न हुआ, वैसा आज तक कभी नहीं हुआ। सं० २०२५ में परमपूज्य गुरुदेव के साथ मुझे पावापुरी जाने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय जनता गाडो में भरकर दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। उन लोगों का भक्तिभाव और संत प्रेम देखकर हर्षातिरेक से हृदय नाच उठता था।

परमपूज्य प्रभु चातुर्मास कहाँ करेंगे? यह कभी पहले से निश्चित नहीं करते। कोई चातुर्मास के हेतु वीनति करने आता तो 'वर्त्तमान जोग' कहकर वात टाल देते। निर्विकल्प भाव से विचरते हुए जहाँ भी आषाढ शुक्ल १४ चौमासी-चौदस आ जाती, वहीं चातुर्मास कर लेते। वहुधा ऐसा हो जाता था कि विल्कुल अज्ञात या जैनेतरो की वस्ती में रहना पड़ता किन्तु आत्मशक्ति के कारण प्रभु को कभी कष्ट का अनुभव नहीं होता था। प्रारंभ में लोगो के हृदय में भावना का अभाव भले ही हो पर धीरे धीरे परमपूज्य प्रभु के सानिध्य में आने पर अद्भुत ज्ञान वाणी सुनकर सभी लोग उनके भक्त वन जाते थे।

समस्त मानव हृदय में आत्म भावना की ज्योति जगाने की इच्छा से आपने अनेक क्षेत्रों में परिभ्रमण किया था। राजगृही, वद्रीनाथ आदि अनेक तीर्थस्थानो की यात्रा भी

की। असंग भावना के कारण गोकाक की गुफा में तीन वर्ष पर्यन्त अखण्ड मौन रहकर आत्मानंद में लीन रहे। गोकाक के ठाम-चौविहार में केवल दूध और केला के अतिरिक्त आप अन्य कुछ नहीं लेते थे।

बीकानेर, खण्डगिरि, बद्रीनाथ, देहरादून, आदि स्थानों में विहार करते हुए आप बोरडी पधारे। सं० २०१८ ज्येष्ठ सुदी १५ की रात्रि में अखण्ड भक्ति का आयोजन रखा गया था। यहाँ सात हजार जन समुदाय एकत्र हुआ था। भक्ति के समय दिव्य वस्तुओं के साथ परमपूज्य गुरुदेव को 'युगप्रधान' पद समर्पक श्लोक प्रगट हुआ। इस अद्भुत प्रसंग के अनेक विशिष्ट व्यक्ति भी साक्षीभूत हैं। बीकानेर के जज सिन्धी सद्गृहस्थ श्री जे० पी० चंदानी, बम्बई के म्युनिसीपल सभ्य जीवराज शाह प्राणलाल भाई, जैन इतिहास-रत्न अगरचंदजी नाहटा और श्रीमद् राजचंद्रजी की सुपुत्री जवलबेन आदि भी उपस्थित थे। बोरडी से विहार कर गुरुदेव कुंभोजगिरि, हुबली, गदग होकर अपने पूर्व-जन्मों की साधना-भूमि हंपी पधारे। यहाँ रामायण कालीन किष्किंधा और मध्यकाल के विजयनगर साम्राज्य के ध्वंशावशेष दृष्टिगोचर होते हैं। यहा १४० जैन मन्दिरों के अवशेषों वाले हेमकूट पर थोड़े दिन रहकर आपने हेमकूट के सामने वाले रत्नकूट पर स्थित चीते की गुफा मे अपना साधनासन जमाया। जैनेतर लोगों के उग्रविरोध होते हुए भी सं० २०१८ आषाढ शुक्ल ११ को 'श्रीमद् राजचंद्र आश्रम' की

युगप्रधान गुरुदेव श्री सहजानन्दघनजी महाराज

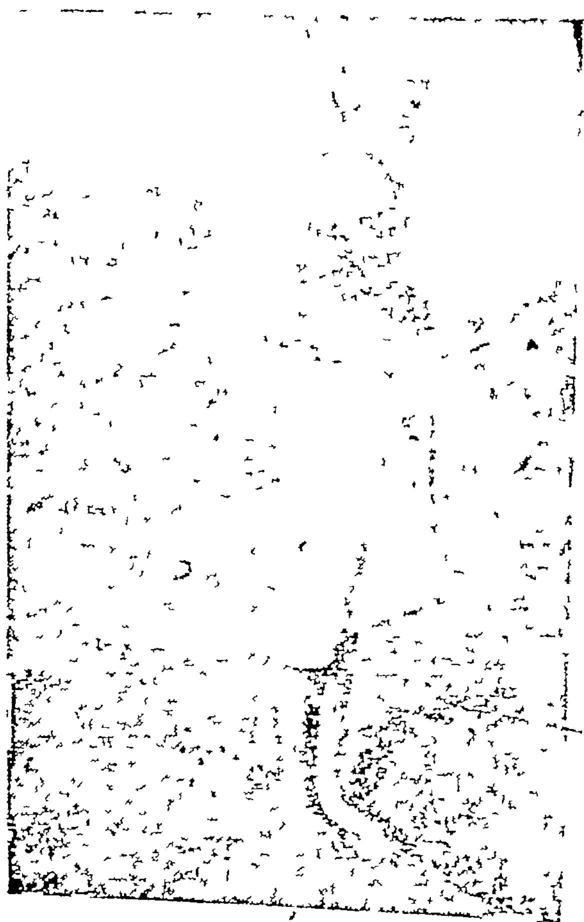


जन्म सं० १९७० भा० सु० १० डुमरा,

दीक्षा सं० १९९१ वै० सु० ६ लायजा

युगप्रधान पद सं० २०१८ ज्ये० सु० १५ वोरडी

महाप्रयाण सं० २०२७ का० शु० २ हम्पी



युगप्रधान गुरुदेव श्री सहजानन्दघनजी महाराज

स्थापना की। इस रत्नकूट पहाड़ी का वातावरण अत्यन्त भयानक था, जिससे लोग यहा दिन में भी आते हुए घबराते थे। आश्रम की स्थापना के समय भवन-निर्माण कार्य कुछ भी नहीं हुआ। जो गुफाएँ थीं, उन्हे साफ करके व्यवस्थित कर दी गई। ऐसे वातावरण में परमपूज्य गुरुदेव अकेले निर्भय रूप से चीते की गुफा में रहकर समाधि मे लीन रात्रि व्यतीत करते थे। कुछ दिनों मे भूत प्रेतों और हिंस्र-जन्तुओं का निवास स्थान सर्वथा निरापद हो गया। गुरुदेव के पदार्पण से वह भयानक स्थल दिव्य तीर्थ रूप मे परिवर्त्तित हो गया। विद्युत् व जल की सुविधा के साथ इस आश्रम में विशाल व्याख्यान हाल, नि:शुल्क भोजनालय आदि की भी सुव्यवस्था है। श्रीमद् राजचंद्र जन्म शताब्दी-महोत्सव के समय पक्की सड़क का निर्माण हो जाने से आश्रम में ऊपर तक मोटरें आ सकती हैं। चातुर्मास में और विशेषत: पर्यूषण पर्व में इस स्थल की लीला कुछ अनोखी ही हो जाती है। जहां परम-पूज्य प्रभु के शरीर का अग्नि-संस्कार किया गया था उस स्थल पर गुरुमन्दिर और उसके पास दादावाड़ी का निर्माण कार्य चालू है। प्रत्येक पूर्णिमा को यहां अखण्ड भक्ति का आयोजन रहता है जिसमे होस्पेट, बेलारी, गदग, कंपली इत्यादि स्थानों के मुमुक्षु जन भाग लेते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव की व्याख्यान शैली अत्यन्त सरल, सादी भाषा में होते हुए प्रभावशाली, ओजपूर्ण और ज्ञानमय थी।

अनेक भक्तों के हृदयगत शंकाओं का समाधान बिना प्रश्न पूछे ही व्याख्यान में हो जाता था। वे प्रशस्त आत्म-साक्षात्कारमय अलौकिक पथ के पथिक थे। आध्यात्म जैसे गूढ विषय को भी वे अपनी अलौकिक वाणी द्वारा सरल और रसमय बना देते थे। सम्यग् दृष्टि, स्थित-प्रज्ञ, षड्ध्यानाभ्यासी, महान् विचारक परम-पूज्य प्रभु अमरत्व की शिखा और पवित्रता की साक्षात मूर्त्ति थे। आत्मानुभूति प्राप्ति विषयक अलौकिक बातें सुनने के लिए अनेक सम्प्रदाय वाले भक्तगण बिना किसी भेदभाव के परमपूज्य प्रभु के व्याख्यान में अत्यन्त उत्कण्ठा-पूर्वक आते और अपनी पिपासा शान्त कर सन्तुष्ट होते थे। उन्होंने सतत जागृत अभेद चिन्तन से अनुराग और विराग के अन्तराल को समाहित किया था। ज्ञान की अविरल अमृतमयी श्रोतस्विनी से वे ओत-प्रोत थे। सतत प्रज्वलित निर्धूम अग्नि-शिखा के सदृश उनके ज्ञान के अप्रतिम प्रकाश की आभा से आलोकित वाणी के पवित्र, मधुर उद्गार मोहतिमिर नाशक थे, वे सार्वभौम ज्ञान के ज्ञाता थे।

परमादरणीय-परमाराध्य योगीन्द्र-युगप्रधान प्रभु श्री सहजानंदघनजी महाराज एक साथ योगी, साधक, विचारक, रागद्वेष रहित आचार्य गुरु तथा सद्धर्म-प्रचारक महान् विभूति थे। अपनी अविरल साधना और चिन्तन धारा से विचारों को तपा कर आपने स्थिर और दृढ़ किए थे। अगाध आत्मनिष्ठा, अपरिमेय विश्वास और अजेय आत्मबल प्रसूत ज्ञान की निर्मल

वाग्धारा प्रभु के मुखारविन्द से जो प्रवाहित होती उसे श्रवण करते-अमृत वाणी का पान करते भक्तगण कभी तृप्त नहीं होते थे।

परमपूज्य गुरुदेव को प्रसिद्धि का मोह या ज्ञान का अहंकार किंचित् भी नहीं था। अनेक वार खरतर गच्छ संघ ने उन्हें आचार्य पद स्वीकार करने के लिए आग्रह-पूर्ण वीनति की, किन्तु इन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। इनके विचारों में आचार्य पद की योग्यता केवल संघ के अर्पण करने से स्वत. नहीं आ जाती, किन्तु अपने ज्ञान वल की योग्यता से ही आचार्य पद की प्राप्ति होती है। अर्थात् आचार्यपद आत्मज्ञान पर अवलम्बित है और आत्मा में आचाय-गुण-लब्धि का प्राकट्य होता है। यदि संघ के अर्पण करने मात्र से आचार्य पद की योग्यता आजाती हो तो 'अरिहंत' पद की योग्यता आ जानी चाहिये न ? किन्तु संघ के पद अर्पण करने से योग्यता नहीं आती, प्रत्युत अपनी आत्मा की श्रेणी ओर ज्ञानवल से ही पद-प्राप्ति की योग्यता आती है।

आत्म साक्षात्कार संपन्न, अनुभव-ज्ञानी, प्रयोग-वीर प्रभु श्री सहजानंदघनजी के भक्त देश के अनेक प्रान्तो से आते थे। किसी भी धर्म-दर्शन के विषय मे भेद-भाव, खंडन-मंडन वहाँ नहीं था। उनके पास गच्छ-मत का आग्रह भी नहीं था। वे कहते-किसी भी धर्म या मत-पंथ को मानो पर आत्मा को पहिचानो! आत्मा की समझ पूर्वक जो कुछ करोगे वही मोक्ष के प्रति जाने का मार्ग है। वे सर्वात्म में समदृष्टि रखते। उसके हृदय में

एक ही "सवि जीव करूं शासन रसी" की भावना प्रबल थी। इसी कारण उन्होंने मात्र दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदाय का ही नहीं पर समस्त गच्छ-मतामतों और सम्प्रदाय वालों का समान प्रेम-भक्तिभाव प्राप्त किया था। अनेक सम्प्रदाय, गच्छमत वाले भक्त परमपूज्य प्रभुजी के व्याख्यान को ध्यान-पूर्वक सुनते और आनंद अनुभव करते।

परमपूज्य प्रभु का दीक्षा नाम 'भद्रमुनि' था किन्तु वे अपना 'सहजानंदघन' नाम से परिचय देने लगे, जिस का अर्थ इस प्रकार है—सहजानंदघन=सहज+आनंद+घन सहज=सह+ज अर्थात जिनकी उत्पत्ति किसी भी कारण को लेकर नहीं, किन्तु सहज है, स्वाभाविक है, जो जन्म-मरण के बन्धनों से रहित है वह=आत्मा ऐसे सहज=आत्मा का आनंद-अपूर्व आनंद वह सहजानंद। इस आत्मानंद को जिसने ठोस रूप में घन रूप में अनुभव किया है वह 'सहजानंदघन' यह नाम उनके उत्कृष्ट आत्मज्ञान का ही द्योतक है न?

परमपूज्य गुरुदेव का शास्त्रज्ञान अत्यन्त विशाल था। षड् भाषा व्याकरण, काव्य कोष, छंद, ज्योतिष, अलंकार शास्त्र आदि के वे विद्वान थे। इसी प्रकार श्वेताम्बर, दिगम्बर व अन्य दर्शनो का भी उन्होंने गहराई के साथ वाचन, मनन और चिन्तन किया था। वे विविध ग्रन्थों का वाचन जिज्ञासा पूर्वक करते। इसी वाचन के सन्दर्भ में परमपूज्य प्रभु 'श्रीमद् राजचंद्रजी' के ग्रन्थ के सम्पर्क में आये। उन्होंने इस ग्रन्थ का वाचन, मनन और

चिन्तन खूब गहराई से किया। अपने आत्मानुभव के आधार पर श्रीमद् राजचंद्र प्रभु के वचन उन्हे यथार्थ लगे और उन्हें अपने गुरुपद में स्थापित कर खुले आम निर्भयता पूर्वक उनका प्रचार व समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया।

परमपूज्य गुरुदेव के अनेक लब्धि-सिद्धियां प्रगट थीं, किन्तु वे इस ओर किंचित भी लक्ष नहीं देते। दादासाहब श्री जिनदत्त-सूरि जी आदि अनेक सम्यग्दृष्टि गुरुजनों के प्रति आपकी अनन्य भक्ति थी। दादा साहब ने इन्हे 'तू तेरा संभाल' यह ध्येय मंत्र दिया था और ये ही दादा श्री जिनदत्तसूरिजी परमपूज्य गुरुदेव के पथ-प्रदर्शक थे। अनेक दिगम्बर ग्रन्थों का उन्होंने पद्यानुवाद किया। नियमसार, समाधिमाला, समजसार, ज्ञान-मीमासा, परमात्म प्रकाशादि इसी संग्रह में प्रकाशित हैं। परम कृपालु श्रीमद् राजचंद्रजी की आत्मसिद्धि व अनेक वचनामृतों का आपने हिन्दी व गुजराती पद्यान्तर किया तथा षट् पद पत्र के रहस्य स्वरूप स्वतंत्र पद्य रचना की जो पाठकों के कर कमल स्थित इस ग्रन्थ में प्रस्तुत है।

श्रीमद् आनंदघनजी की चौवीसी के स्तवनों का आपने मन-नीय विवेचन व अर्थ संकलन किया है प्राकृत भाषा, संस्कृत, हिन्दी गुजराती में दादा साहब आदि के स्तोत्र-स्तवन-पद-चैत्यवंदन चौवीसी,स्तुति-चौवीसी आदि पद्य में प्राप्त सभी कृतियाँ इस प्रथम भाग में प्रकाशित हैं। प्राकृत व्याकरण एवं सरल समाधि नामक दो कृतियां गुफावास की एकाकी भावना तथा तीव्र

वैराग्यवश अप्राप्य कर दी। श्रीमद् राजचन्द्र ग्रन्थ में से संकलित 'तत्व-विज्ञान' ग्रन्थ का प्रकाशन हो चुका है।

इस प्रकार के ज्ञानी पुरुष की इस काल में प्राप्ति होने पर भी हम अपनी आत्मा का उद्धार न कर सके तो पुण्यहीनता के सिवा अधिक क्या कहा जाय ? क्योंकि प्रभु तो विश्वास-पूर्वक कहते थे कि—"इस काल में, इस क्षेत्र में आत्मज्ञान-निर्मल ज्ञान नहीं होता यह कथन कायरों का—नपुंसकों का काम है, पुरुषार्थी वीरों के लिए कुछ भी असंभव या दुष्प्राप्य नहीं" सम्राट नेपोलियन ने कहा है कि-असंभव (Impossible) शब्द मेरे शब्द-कोश में नहीं है। पुरुषार्थी के लिए सब कुछ सुलभ है। "जिसे आत्म साक्षात्कार करना हो वह यदि मेरे कथनानुसार वर्त्तन करे तो मात्र छः मास में ही उसे आत्म साक्षात्कार कराउं।"

परमपूज्य प्रभु के इन छाती ठोककर कहे हुए टंकशाली विश्वास युक्त वचनों को समादृत कर इस भारत क्षेत्र में कोई भी भव्यात्मा तैयार नहीं हुआ। ज्ञानियों ने कहा है कि '-ज्ञानी तो मात्र अंगुली निर्देश कर बतावेंगे कि भाई, यह मोक्ष-मार्ग है। किन्तु चलना तो अपने को ही पड़ेगा।' परम-कृपालुदेव ने कहा है कि—"पामेला थी पमाय' प्रज्वलित दीपक से बुझा हुआ दीपक भी जलाया जा सकता है।

'बहुरत्ना वसुन्धरा' परम पूज्य प्रभु ऐसे ही एक रत्न थे। उन ज्ञानी नर-रत्न के नश्वर देह का मोह तो था ही नहीं। इसी लिए वेदनीय कर्म के उदय होने पर भी शरीर पर लक्ष किए

विना वे अपनी आत्म-साधना मे ही लीन रहते थे। ज्वर, सर्दी तथा अर्श जैसे रोगों की कृपा होती तब कर्म भोगने की दृष्टि से उनका हार्दिक स्वागत करते और औषधादि नहीं लेने का आग्रह रखते। उदय में आये हुए कर्मों को खपाकर किस प्रकार शीघ्र स्वधाम-मोक्ष प्राप्त किया जाय। यही उनका ध्येय था तीव्र व्याधि के उदयकाल में भी वे उत्कृष्ट ध्यान समाधि मे लीन आत्मस्थ रहते। जिन्हे देहाध्यास न हो और आत्मा की अलौकिक ज्योति जगमगाती हो, उन्हें शरीर के प्रति लक्ष ही कहा से हो सकता है।

सं० २०२७ मे अर्श रोग का कष्ट बढ़ गया। देशी प्रयोग द्वारा वाह्योपचार से अर्श-मस्सों का आपरेशन किया गया। किंतु प्रभु पर तो वेदनीय कर्म की चिर कृपा थी, आपरेशन से व्याधि को प्रोत्साहन मिला और उल्टियाँ चालू हो गई। किन्तु आत्म-रमण में तल्लीन होने के कारण तथा शरीर के प्रति निर्मोही वृत्ति से औषोधोपचार के उपयुक्त अभाव के कारण अशक्ति बढती ही गई, क्योंकि दिन भर में २०-२५ उल्टियाँ हो जाती, किन्तु ठाम चौविहार का नियम होने से उल्टी होने पर कुल्ला तक करने के लिए भी आपने दूसरी वार मुंह मे पानी नहीं डाला। गुरुदेव इस प्रकार के दृढ़ निश्चयी थे। सं० २०२७ के पर्यूषण पर्व में देह-व्याधि का ख्याल न कर भक्त मण्डल को प्रवचन द्वारा अपनी अद्भुत वाणी में तल्लीन कर देते। व्याख्यान के समय उनका शरीर के प्रति लक्ष नहीं रहता। व्याख्यान समय पूर्ण होने पर

और उनकी अस्वस्थता के कारण कोई भक्त उन्हें व्याख्यान पूर्ण कर देने की ओर ध्यान खींचता तो तुरंत उत्तर मिलता कि-तुम मेरी धारा को मत तोड़ो। शरीर क्या है? इसकी चिंता मत करो! तुम्हे पता है अभी कौन बोल रहा था? इस प्रकार व्याख्यान देते समय उनकी जिह्वा पर शाश्वत सरस्वती का निवास था।

पर्यूषण पर्व के पश्चात् भाद्रपद शुक्ल १५ के बाद उनका शरीर एकदम कमजोर हो गया। उल्टियों ने शरीर का सारा सत्त्व खींच लिया। लगभग सवा महीने तक समाधि दशा में-आत्म रमणता में लीन रहे और निजात्मानंद में मस्त रहे। जब उन्हें सुख शाता पूछी जाती तो उत्तर मिलता—मैं तो अपनी मस्ती में लीन हूं, तुम लोग सब क्यों इस शरीर की इतनी चिन्ता करते हो! शरीर को श्मशान की मिट्टी समझ कर उस ओर कभी उन्होंने मोह नहीं किया। उन्होने स्वरचित पद लिखा है कि—

"हुं तो आत्म छुं, जड शरीर नथी
शरीर मसाण नी राख नो ढगलो, पलमा विखरे ठोकर थी···"

सचमुच ही आपने इन पंक्तियो को सार्थक बताया।

ऐसे ज्ञानी सद्गुरु का वियोग असमय में ही अनभ्र वज्रपात की भाँति आ पड़ा। मिती कार्त्तिक शुक्ल २ सं० २०२७ रविवार की रात्रि में २-२५ बजे इन जगत्पूज्य महात्मा ने नश्वर देह का त्याग कर स्वधाम की ओर महा प्रयाण किया। महाविदेह में विराजमान हुए। इन्होंने स्वयं अपने एक पद में लिखा है—

"शेष आयु वितावी तारी भक्ति मां हो राज
आयु अंत आवीश तुझ पाज रे……
भवना समुद्र ने काठड़े……

निर्वाण के समय प्रभु के शरीर का तौल मात्र २२ किलो ही रह गया था। भक्त लोग कहते कि "शरीर कितना कृश हो गया है? "तो परमपूज्य प्रभु उत्तर देते "भार कम उठाना पड़ेगा!" यह उक्ति सत्य ही प्रमाणित हुई। ऐसे दुष्प्राप्य आत्मज्ञानी सद्गुरु का असह्य विरह पुण्योदय के अभाव में ही सभी मुमुक्षु भक्त गण को सहना पड़ता है—विधि का वैचित्र्य!

प्रभुकी अमर, अनन्तज्ञानी आत्मा के पास यही प्रार्थना है कि—

"हमें शीघ्र आत्मज्ञान हो।"

"नहीं मांगु प्रभु राज ऋद्धिजी, नहीं मागुं गरथ भंडार,
हुं मांगुं प्रभु अेटलुं जी, तुम पासे अवतार!"

प्रभु! हम बालकों पर दया-दृष्टि-कृपादृष्टि रखें! यही प्रार्थना! यही अभ्यर्थना!

संत चरणरज
कुमारी चंदना काराणी

श्रद्धांजलि

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी के संस्थापक परम वंदनीय श्री सहजानंद जी महाराज भारतीय संस्कृति के एक अत्यन्त उच्चकोटि के संत-महात्मा थे। उनका त्याग व तपोमय जीवन, सदा आनन्दी स्वभाव व आत्मा व देह का भेद-विज्ञान उनकी आकृति से ही स्पष्ट झलकते थे, और सब लोग बड़े प्रभावित होते थे।

उनकी वाणी का एक-एक शब्द करोडों रुपयों का था और चिन्तन करने के योग्य था। ऐसे महापुरुषों की एक घड़ी की संगति कई वर्षों के अध्ययन से ज्यादा लाभदायक होती है।

पिछले कई महीनों से आपकी तबियत अस्वस्थ रही। व्याधि का भयंकर प्रकोप रहा, मगर आपने जिस अपूर्व समता व सहनशीलता के साथ उसका मुकाबला किया वैसे करने वाले संसार में विरले ही होंगे। आपकी कई चिट्ठियों में जो मेरे पास उन दिनों में आया करती थी, ये ही लिखा था कि "शरीर पर तो व्याधिदेव की कृपा है जिससे अस्वस्थ है मगर मेरी आत्मा तो सदा स्वस्थ व प्रसन्न है।

आपने इस बीमारी में श्रीमद्राजचंद्र का निम्न लिखित पद Practical रूप से चरितार्थ करके दिखला दिया था—

"देह छतां जेनी दशा, वर्त्ते देहातीत
ते ज्ञानी ना चरणमां, हो वंदन अगणित"

आज आपका भौतिक शरीर तो संसार में नहीं रहा, मगर उनका आध्यात्मिक शरीर कायम है और कायम रहेगा और संसारी जीवों को प्रकाश-स्तम्भ की तरह प्रेरणा व मार्ग-दर्शन युगों युगों तक देता रहेगा।

इतनी उच्चकोटि की महान् आत्मा को श्रद्धाजलि के रूप में मेरे वारंवार नमस्कार!

मगरूपचन्द भण्डारी

ता० १४।२।७१ — रिटायर्ड डिस्ट्रिक व सेसन्स जज
मोती चौक, जोधपुर, — जोधपुर,

अज्झत्त तत्तस्स सुपारगामी एगावयारी पूइय सुरिंदो।
मुणींद मउडो सुजुगप्पहाणो गुरुवरो सहजाणंद णामो ॥१॥
निव्वाणपत्तो सुसमाहिजुत्तो कत्तीय धवले बीया तिहीए।
निच्छत्त जाओ इय भरहखित्तो धम्मस्सएगो सायार रूवो॥२॥
खेयेण खिन्नो सुसुमुक्खु संघो जाओ निरालंब समग्ग लोओ।
विदेह खित्तट्ठिय ते महप्पा भत्ताण देहिं निव्वुइ सुसत्ती ॥३॥

—भँवरलाल नाहटा



योगीन्द्र-युगप्रधान महामहिम

श्री सहजानंदघन गुरुदेवाष्टकम्

भद्र. सद्गुरु वर्य पूज्य सहजानंदः सदा राजत
आत्मज्ञो निखिलार्थ बोध निपुण. कारुण्यमूर्त्तिमहान्
देवै. पूजित पादपद्म विमलश्चेन्द्रादिभिः सर्वशो
वन्देऽहं विनयेन तं गुरुवरं श्री भावितीर्थङ्करम् ॥१॥
मान्योय. शुभकच्छ देश विषये डुम्राभिधे मण्डल
ऊकेशे परमार वंश सुवरे श्री नागजी श्रेष्ठिनः
गेहे श्री नयनोदरान्नु समुत्पन्नो वरेण्यः प्रभुः
वन्देऽहं विनयेन तं गुरुवरं श्री भावि तीर्थङ्करम् ॥२॥
प्राग्जन्मार्जित साधना स्मृति वशाच्छ्री सोहमय्यापुरि
घोषेणाब्धि विमोहकेन गगनाज्जातेन य. प्रेरित.
त्यागेप्सुर्जिनरत्नसूरि गुरुणा सौम्येन संदीक्षितो
वन्देऽहं विनयेन तं गुरुवरं श्री भावितीर्थङ्करम् ॥३॥

ज्ञानालोक युतेन लब्धिमुनिना ज्ञानाम्बुधौ स्नापितो
वर्ष द्वादशकं च यो गुरुवरैः सार्द्धं सदाराजितः
नाना क्लेश युतेच घोर तपसा पश्चाद्गिरौ संस्थितो
वन्देऽहं विनयेन तं गुरुवरं श्री भावि तीर्थङ्करम् ॥४॥
आमेटेडर पह्नि मुल्कलसरपींकेश पावापुरी
गोकाकेषु च कन्दरासु कठिनं मौनं सुतप्तं तपः
वर्षाणां त्रितयं च येन मुनिना स्तुत्येन मान्येन वै
वन्देऽहं विनयेन तं गुरुवरं श्री भावितीर्थङ्करम् ॥५॥
ऊणं श्री शिववाटिकोदयसर ग्रामेषु वै वोरडौ
धर्मोद्योत करेण येन च मुदा यात्रा कृता पावनी
श्री सीमंधर नोदितैर्युगवरोपाधि. प्रदत्तः सुरै
येस्मैतं प्रणमामि भक्ति भरितः श्री भावि तीर्थङ्करम् ॥६॥
प्राप्ते पावन रत्नकूट विदिते कर्णाट देशे नगे
स्थाने सद्गुरु पूर्व जन्म विदिते दिव्ये शुभे भूषिते
श्री मद्राज विराजितेन्दु विमलः संस्थापितो ह्या प्रभो
वन्देऽहं विनयेन तं गुरुवरं श्री भावि तीर्थङ्करम् ॥७॥
अब्दे पाण्डव युग्म विंशति शते श्री पौषमासे शुभे
पूर्वार्द्धे सुखदे त्रयोदश दिने भौमेच वारे वरे
अल्पज्ञ भ्रमरेण ह्यष्टक मिदं भक्त्या प्रणीतं मुदा
भव्येभ्यः परितोषदं प्रियकरं पुण्यैक सम्वर्द्धनम् ॥८॥

—:०:—

युगप्रधान सद्गुरु स्मृति गीत

हम्पी के योगी कहा तुम गये हो,
आत्मा का दर्शन कराते-कराते ॥

क्रिया जड़ बना जो तीर्थप का शासन
मार्ग से कोशों भटक के विपथग
उन्हें राह सम्यक् दिखाने के हेतु
हुए अवतीर्ण हे युग के प्रवर्त्तक

करी दीर्घ साधना गिरि कन्दरा में
आत्मा की ज्योति जगाते-जगाते ॥१॥

ज्ञाता द्रष्टा महाव्रत संयुत
भव भव में साधन किया संयमरत
लब्धि सिद्धयादि अतिशय धारी
रहे जिनके चरणों में देवेन्द्रादि भी नत

केवल तपःपूत साधन प्रयोगी
शान्त-सुधारस नहाते नहाते ॥२॥

इन्द्रिय मनका भावात्म निग्रह
नहीं साम्प्रदायिक भेदादि आग्रह
अध्यात्म ज्ञान की कुंजी के धारक
कर्मक्षयार्थ किया था अभिग्रह

कठिन तप ध्यानादि में रत अहर्निश
प्रेम की गंगा बहाते-बहाते ॥३॥

सीमंधर प्रभु युगप्रवर पद
क्षयोपशम से गहन ज्ञान संपद
गुरुराज जिनदत्त आदि से प्रेरित
तू तेरा संभाल मंत्रैक सुविशद

आत्मिक प्रसादी लगे बांटने जो
अतिशय वाणी सुनाते सुनाते ॥४॥

न सोचा था इतनी जल्दी करोगे
महाविदेह जाने की तैयारी
पंचमकाल के हम हैं अभागे
पाया न तुमको हे आत्म-विहारी

समता से कष्ट सहे आत्मानंदी
विदेही गुणों में समाते समाते ॥५॥

बनो हमारे सहायक प्रभु तुम
अनंत गुणों का अंश पावें हम
कृपालु तुम्हारी कृपा जो रही है
अनंत आशीर्वच यद्यपि अपात्र हम

निकालो 'भँवर' से नैया हमारी
समकित पतवार दो ज्यों पार पाते ॥६॥

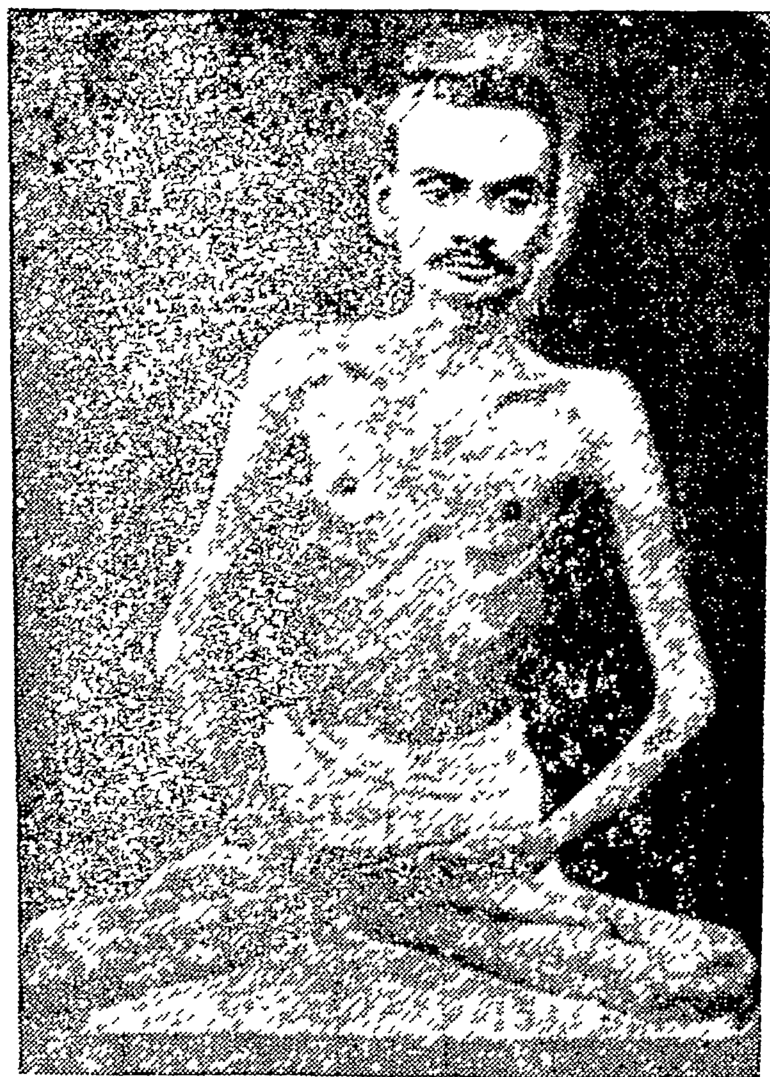


नियमसार-रहस्य का समर्पण

आ कालमां जेमनुं अवतरण अगियारमा 'अच्छेरा' रूप हतुं जेओ
मुमुक्षुओना त्रिविध-तापने हरवामा साक्षात् 'अमृतसागर' हता,
जेओ दुषम-कालना साधकोना दुर्भाग्य ने दूर करवा मां
साक्षात् 'कल्पवृक्ष' हता, प्रवर्त्तमान श्री वीर-मार्ग
जिन-मार्ग नो उद्योत करवा मा साक्षात् 'महावीर'
हता, आश्रितोनी चित्तवृत्ति ने
विश्राम आपवामा जेओ साक्षात्
'श्रीराम' हता, जेओ व्यवसाय
मां होवा छतांय
विदेही हता;
लब्धि स्वरूप
जेओना परमागमना
मनन थी अगम एवो
अनुभव-मार्ग आ पतित पामर ने
सुगम थयो, स्व-स्वरूप प्रत्ये अनन्यभक्ति
उपजी, ते सहजात्म-स्वरूप परम गुरु शुद्ध
चैतन्य स्वामी ज्ञानावतार श्रीमद् राजचंद्रदेव ना पतित-
पावन चरणारविंदमां निष्कपट-उल्लसित-अनन्य-भक्तिए आ
नियमसार-रहस्य मयी भाव-पुष्पांजलि समर्पणहो, ॐ शांतिः ३
ॐ आनंद आनंद आनंद

सहजानंद

प्रकट सत्पुरुष परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी



[जिनके पद पृ० ५६ से ६६ व अनुवादादि पृ० ७० से १०२]

गुरुदेव श्री सहजानन्दघन जी महाराज के पथ प्रदर्शक

"तू तेरा सम्भाल"



योगीन्द्र युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरि जी

[जिनके स्तोत्र स्तवनादि पृ० ४२ से ४६ तक]

सम्पादकीय

अध्यात्म जगत् के महान् ज्योतिर्धर, विश्ववंद्य, परमपूज्य, प्रात. स्मरणीय, महोपकारी योगीन्द्र-युगप्रधान सद्गुरु-शिरोमणि, अखण्ड आत्मोपयोगी, संत-श्रेष्ठ श्री सहजानन्दघन जी महाराज भारतीय अध्यात्मिक परम्परा की एक विरल विभूति थे। स्वरूप प्राप्ति की उत्कट तमन्ना वाले प्रयोग-वीर पुरुषार्थी, त्याग वैराग्य की साकार मूर्त्ति, आप जैसे महापुरुष सैकड़ों वर्षों में इने-गिने ही उत्पन्न होते हैं, जिनके वल पर आर्यावर्त्त को जगद्गुरु पद पर प्रतिष्ठित होने का सौभाग्य प्राप्त है। महापुरुषों के योगवल से ही विश्व तंत्र संचालित-संरक्षित रहता है। आपके महाप्रयाण से अध्यात्मिक जगत् की एक अपूरणीय क्षति हुई है।

आपने अपना साधनाकाल भारत के विभिन्न प्रान्तों के जंगल-पहाड़ो में विताया और लोक-प्रसिद्धि से दूर रहे। रूढ़ि-वादी दुषमकाल में उन्हें थोड़े ही व्यक्ति पहिचान पाये क्योंकि आप सम्प्रदायातीत महापुरुष थे। गत वीस वर्षों में मुझे अनेक-वार आपके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैंने समय-समय पर आपकी अभिव्यक्तियों को संग्रह करने की चेष्टा भी की है। रचनाओं के साथ साथ सैकड़ों पत्र एवं मौनकाल में लिख कर दी हुई विकीर्ण पत्राङ्कित पंक्तियों को भी अमूल्य निधि

की भाँति संभाल कर रखने का प्रयत्न किया है। कुछ प्रवचन भी नोट किए जिन्हें 'कुशलनिर्देश' में निकाले एवं 'अनुभूति की आवाज़, नामक एक अपूर्व कृति को भी इसी में धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। अवशिष्ट कृतियों के साथ-साथ प्रभु के जीवन वृत्त को विस्तार पूर्वक मुमुक्षु जनता के समक्ष रखने की प्रबल भावना होते हुए भी जब अपनी अयोग्यता की ओर ध्यान देता हूँ तो लेखनी कुण्ठित हो जाती है, कहाँ वे सर्वोच्च महापुरुष और कहाँ मैं पामर प्राणी, फिर भी इन्हीं से परमपूज्या आत्मज्ञानी योग-लब्धि-संपन्न महिमामयी माताजी के आशीर्वाद व प्रेरणा से इस ओर प्रवृत्ति हुई है। गुरुदेव के अनन्य भक्त पूज्य काकाजी शुभैराजजी, मेघराजजी व अगरचंदजी नाहटा की निरन्तर प्रेरणा से ही संग्रहगत कृतियों में से पद्य विभाग को "सहजानंद-सुधा" के प्रथम भाग रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

मुख्य कार्य तो गुरुदेव के पावन जीवनचरित्र को विस्तार से प्रकाश में लाने का है। जो परमपूज्या माताजी के कृपापूर्ण आशीर्वाद व शक्ति प्रदान करने पर ही संभव होगा। इस ग्रन्थ के साथ गुरुदेव का सार-गर्भित संक्षिप्त जीवन परिचय जो आदरणीया विदुषी कुमारी चन्दना बहिन काराणी M. A. Lib Sc. द्वारा गुजराती में लिखित है, का हिन्दी भाषान्तर प्रकाशित किया जा रहा है।

गुरुदेव की गद्य रचनाएँ, प्रवचन संग्रह, पत्र सदुपदेश और दिव्य वाणी का संग्रह दूसरे भाग मे देने की भावना है।

गुरुदेव की प्राथमिक रचनाएँ, जब वे साधु-समुदाय के साथ विचरते थे, तब सं० २००० में 'भद्र पुष्पमाला' नाम से व सं० २००३ में गुजराती 'पंच प्रतिक्रमण सूत्र' में पर्यूषणादि के स्तवन एवं दादा-साहब का मंत्र-गर्भित प्राकृत स्तोत्र पूज्य गणिवर्य श्रीबुद्धिमुनिजी महाराज ने प्रकाशित करवाये थे। श्री जिनरत्नसूरि जी की जीवनी 'रत्नप्रभा' एवं उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी की जीवनी मे भी आपकी कुछ कृतियाँ छपी हैं। चैत्यवन्दन चौवीसी तथा कुछ फुटकर पदादि कई पुस्तकों में प्रकाशित हुए थे। हमने कुछ पद 'जैनभारती' मासिक में एवं आत्मसिद्धि शास्त्र के गुरुदेव कृत हिन्दी पद्यानुवाद के साथ कुछ पद सं० २०१४ में प्रकाशित किए। श्री केशरीचंदजी धूपिया ने कुछ पद, चैत्यवंदन 'आत्म जागृति' में एवं नियमसार-रहस्य को नवपद तप आराधन विधि में प्रकाशित किए हैं।

सं० २०१० में जब पूज्य गुरुदेव पावापुरी में चातुर्मास स्थित थे तब कुमारी सरला (जिसका पावापुरी में समाधिमरण हुआ) के लिए समाधि-शतक की रचना की थी। मैंने गुरुदेव की आज्ञा से 'जैन भारती' मे प्रकाशित करवाया था। इस संग्रह मे पूज्य गुरुदेव के निर्देशानुसार उसका नाम 'समाधिमाला' रखा गया है।

मैंने इस ग्रंथ की प्रेस कापी दो वर्ष पूर्व तैयार कर ली थी, फिर माताजी ने कुमारीचंदना द्वारा गुजराती में की हुई प्रेस कापी भेजी पर मेरी प्रेस कापी में सारी कृतियाँ थी ही अत. उसे ही प्रेस दे दिया। इसके प्रकाशन क्रम में पहिले चैत्यवन्दन, स्तुति,

स्तवन, दादासाहब व गुरुजनों के स्तवन, परमकृपालु देव श्रीमद् राजचंद्रजी के प्रति गुंफित भक्तिपद, उनकी वाणी के पद्यानुवाद आत्मसिद्धि (हिन्दी), षट्पद रहस्य पद व फुटकर पद संग्रह देने के पश्चात् श्री जिन रत्नसूरि गहूँली आदि छूटी हुई कृतियाँ देकर अन्त में समजसार, ज्ञान-मीमासा, परमात्म-प्रकाश-जिनकी अपूर्ण रचनाएँ जिस रूपमें मेरे पास थी, दे दी गई है। अन्त में समाधि-माला व नियमसार-रहस्य दिया गया है। इन सब में नियमसार-रहस्य एक उत्कृष्ट रचना है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में गुरुदेव की समस्त उपलब्ध पद्यबद्ध रचनाएँ प्रकाश में आ गई हैं। पर कई कारणों से क्रम ठीक नहीं रह सका।

पूज्यगुरुदेव ने श्रीमद् देवचंद्रजी की कुछ अप्रकाशित कृतियों को बहुत वर्ष पूर्व गुजराती में प्रकाशित करवाया था। फिर श्रीमद् राजचंद्र जी के विशिष्ट वचनामृतों का संकलन 'तत्त्वविज्ञान' के नाम से एवं 'उपास्य पदे उपादेयता' भी लिख कर प्रकाशित करवाई। पूज्य श्री ने श्रीमद् आनंदघनजी महाराज कृत चौवीसी का महत्त्व-पूर्ण भावार्थ लिखा व उनके पदों की अर्थ संकलना भी प्रारम्भ की थी। श्रीमद् देवचंद्रजी की सभी कृतियों को सुसम्पादित कर प्रकाशित-प्रचारित करने की प्रवल प्रेरणा की एवं उसे स्वयं देखकर संशोधित कर देने की कृपा पूर्वक स्वीकृति के साथ मंग-वाया पर शारीरिक अस्वस्थता के कारण वह कार्य सम्पन्न न हो सका। हमारी 'ज्ञानसार ग्रन्थावली' का प्रकाशन भी आपकी ही प्रेरणा का सुफल है। दादा श्रीजिनदत्तसूरिजी कृत 'उपदेश कुलक'

—जिसे हमने उसलमेर ज्ञान-भण्डार से लाकर प्रकाशित किया था-आपको बड़ा प्रिय था। उससे आपके विचारों को बड़ा बल मिला, उस ग्रन्थ का अनुवाद भी आपने करवाया था।

गुरुदेव अपने सम्बन्ध में किसी को कुछ लिखने नहीं देते थे, माताजी को भी मनाई थी। सं० २०२२ के पर्युषणों में मैंने माता जी की आज्ञा प्राप्त कर कुछ पद्य रचनाएं की जिन्हें तत्काल 'सहजानन्द-संकीर्त्तन' नाम से प्रकाशित कर दीं। उनके महाप्रयाण के पश्चात् श्री प्रतापकुमार टोलिया ने अंग्रेजी "जैन जर्नल" में, अगरचंदजी नाहटा ने जैन-जगत् में, कुमारी चंदना वहिन ने जोधपुर के पार्श्वनाथ मन्दिर की स्मारिका में व मैंने मणिधारी श्री जिनचंद्रसूरि अष्टमशताब्दी स्मृति-ग्रन्थ में प्रकाशित "खरतर गच्छ की क्रान्तिकारी और अध्यात्मिक परम्परा" लेख में उनका कुछ परिचय प्रकाशित किया। अहमदाबाद के परमभक्त साक्षरवर्य श्री लालभाई सोमचन्द शाह ने "सहजानन्द-विलास" नाम से वृहद् ग्रन्थ लिखा है जिसमें गुरुदेव के प्रवचन, पत्र, संस्मरण और वाणी का विशद संग्रह है। इसकी पाण्डुलिपि ता० २५-३-७१ को लिखी हुई अवतक अप्रकाशित है।

प्रस्तुत 'सहजानंद-सुधा' का प्रथम भाग परमपूज्या प्रातः स्मरणीया माताजी की आज्ञा से श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हम्पी द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। आश्रम के मंत्री श्री घेवरचंद जैन एवं गुरुदेव की वाणी के रसिक श्री विजयकुमारसिंह जी बडेर, श्री सुन्दरलालजी पारसान, श्री केशरीचंदजी धूपिया,

श्री रतनलालजी वदलिया, श्री कान्तिलाल नेमचंद, राजवैद्य श्री जसवन्तराय जी जैन आदि कलकत्ता एवं श्री अनोपचंदजी झावक, श्री प्रतापकुमारजी टोलिया आदि भक्तजन जो इस ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशन के हेतु चिरप्रेरणा करते आये हैं, धन्यवाद के पात्र हैं। पूज्य काकाजी श्री मेघराज जी व श्री अगरचंदजी नाहटा की सतत् प्रेरणा व अमूल्य सहयोग इसके प्रकाशन में मुख्य कारण हैं। गुरुदेव के अनन्य भक्त जोधपुर निवासी माननीय श्री मगरूपचंद भंडारी (रिटायर्ड डिस्ट्रिक व सेसन्स जज, जोधपुर) महोदय की श्रद्धांजलि सादर प्रकाशित की जा रही है। परमपूज्या माताजी के आशीर्वाद से इसका दूसरा भाग व विस्तृत जीवनी भी शीघ्र प्रकाश आवे, ऐसी भावना है। दृष्टि-दोष से प्रस्तुत ग्रन्थ में रही अशुद्धियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूं। पाठक गण अन्त में दिये गए शुद्धि पत्रक से संशोधन कर पढ़ने का कष्ट करें।

महापुरुषो की दिव्य अध्यात्मिक जीवनी, अपूर्व वाणी तथा अलौकिक घटनाओं का जो उल्लेख इस ग्रन्थ, जीवनी तथा श्रद्धांजलि रूप में प्रस्तुत है, अनुभूति के मार्ग में प्रवेश के विना या श्रद्धान्वित हुए विना उसे हृदयंगम करना कठिन है। अतः मेरा अनुरोध है कि जिन्हें उस पर विश्वास न हों वे तटस्थ रहें, क्योंकि ज्ञानी की विराधना से चिकने कर्म-बंध होते है।

यह ग्रन्थ प्रकट-महापुरुष की सबीज वाणी है, इसका स्वाध्याय, मनन मुमुक्षुओं को आत्म-बोधकारी हो, यही शुभ-कामना! इस ग्रन्थ का प्रकाशन व्यय स्वर्गीय श्री धन्नूलाल जी पारसान की स्मृति में उनके सुपुत्रों पारसान-बन्धुओ ने वहन किया है अतः उन्हें अनेकश. साधुवाद!

—सद्गुरु चरणोपासक
भँवरलाल नाहटा

—समर्पण—

योगीन्द्र युगप्रधान प्रकट संत सद्गुरु शिरोमणि परमपूज्य
श्री सहजानन्दघनजी महाराज की अनन्य सेविका,
श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम हम्पी की संचालिका,
जाग्रत ज्योति आत्मज्ञानी परमपूज्या माताजी के
कर कमलों में
परमपूज्य गुरुदेव
की अनुपम वाणी रूप यह ग्रन्थ
गुरुदेव के परम भक्त हम्पी आश्रम
में समाधिमरण प्राप्त परम सरल स्वभावी
धर्मनिष्ट हमारे परमपूज्य पिताजी
श्री धन्नूलालजी पारसान की पावन स्मृति में
सादर समर्पित

—पारसान बन्धु—

श द ख्व ग अ ता न ह्य ग स्म सी

म
२३

हि ठ ठ य भ्र श न न ति हि

जि च र त य म भ ज वि ज्ञा

न
२३

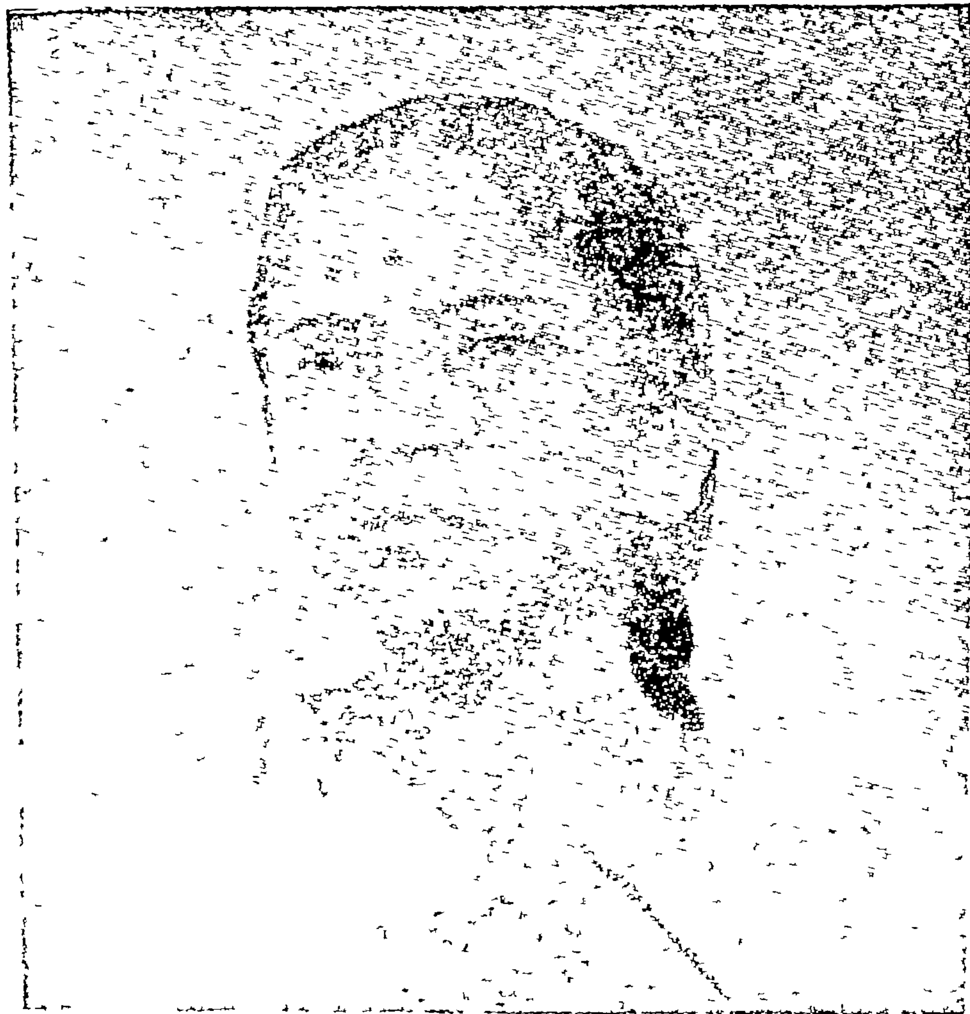
अ रि व ख ह श्र र ध ध र त ज्ञा

 पृ० १५५ में प्रकाशित दो चित्र काव्य



परमपूज्या आत्मज्ञानी माताजी श्री धनदेवी

माताजी को गुरुदेव के चरणों में लाने में प्रेरक
सं० २०१० पावापुरी में समाधिमरण प्राप्त



कुमारी सरला (सच्चिदानन्द कुमार देव)
सुपुत्री पुरुषोत्तम प्रेम जी पौंडा वकील, दहाणुं

—अनुक्रमणिका—

०४

शुद्धि पत्रक

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	६	वरवाण	वखाण
१६	११	सछहे	सद्दहे
१६	१३	जिनेश्चर	जिनेश्वर
३०	१६	परमे	पामे
३०	२१	शुदे	शुद्धे
५३	३	वीजिन	वीरजिन
५४	१	शिल्य	शिष्य
५४	१३	तल्लंघवी	उल्लंघवी
५५	८	श्रुणे	थुणे
६०	१४	१-८-७३	१-८-६३
६६	१३	दथालु	दयालु
७०	२२	३३४	६३४
७१	१०	गुरुराज	अहो गुरुराज
७२	१	हच्छा	इच्छा
७२	२	अशा	(अधिक है)
७६	२	अतन्त	अनन्त
७७	२२	रामचन्द्र	राजचन्द्र

७६	६	समर्शिता	समदर्शिता
८०	१२	निपेक्ष	निरपेक्ष
१०६	६	मवो	भवो
१०८	१	र्णवा	वर्ण
१०९	१२	व्चाकरणी	व्याकरणी
१११	५	खजन	स्वजन
११३	३	खया	खाय
११४	४	ध्यान	ध्यान न
१४३	१६	अप्रिह	अप्रिय
१६६	१३	ध्याख्यानी	व्याख्यानी
१६७	१६	—र्म	धर्म
१८६	८	धाय	थाय
१८८	४	जणो	जाणों
१९१	१०	चेतत	चेतन
१९२	१२	कर्न	कर्म
१९८	१९	रकपू	पूरक
२०१	१६	मविष्य	भविष्य
२३९	११	रही	(अधिक है)
२३९	२१	जनाकर	जलाकर
२४०	४	भविमां	भाविमां

ॐ

सहजानन्द सुधा

भाग—१

सहजानन्द पदावली

चैत्य-वन्दन—चोवीसी

सं० २००४ चैत्री विक्रम
मोकलसर गुफा०

ऋषभ चै० १

सिद्ध-ऋद्ध प्रगटाववा, प्रणमुं आदि-जिणंद,
अशुद्ध योगो त्रय तजी, प्रशस्त-राग असंद· १
केवल अध्यातम थकी, तप जप किरिया सर्व,
भवोपाधि भ्रम नवि टले, वधे शुष्कता गर्व···२
कारण-कर्त्तारोप थी, पराभक्ति प्रगटाय,
दोष टले दृष्टि खुले, सहजानंदघन थाय· ३

अजित चै० २

अजित शत्रु-गण जीतवा, अजितनाथ प्रतीत,
विलोकुं तुझ पथ प्रभो। यूथ-भ्रष्ट मृग-रीत···१

अंध परंपर चर्म-दृग, आगम तर्क विचार ;
तजी भाव-योगी भजत, प्रगट बोध निरधार· ·२
तीर्थंकर ने संत मां, ध्येये भेद न कोय ;
सत्पुरुषार्थे सेवतां, सहजानंदघन होय· · ·३

संभव चै० ३

स्व-स्वरूप प्रगटाववा, सेवुं संभव देव ;
सतत रोमांचित थिर-मने, सत्पुरुषारथ टेव · ·१
सदा सुसंताधीन करी, कार्य देह-मन-वाक् ,
सेवन थी सहेजे सधे, भवस्थिति नो परिपाक· · ·२
ध्येये ध्यान एकत्वता, बीजी आश निराश ,
असंभव रही संभवे, सहजानंदघन वास· · ·३

अभिनन्दन चै०

लहुं केम स्याद्वाद मय, अनेकान्त शिव-शर्म ,
स्वानुभूति कारण परम, अभिनंदन तुझ धर्म· · ·१
नय-आगम-मत-हेतु-विख,-वाद थकी नवि गम्य,
अनुभव संत-हृदय वसे, तास सुवास सुगम्य· · ·२
असंत-निश्रा भ्रान्तिदा, टाली सकल स्वच्छंद ;
संत कृपाए पामिए, सहजानंदघन कंद· · ·३

सुमति चै० ५

आतम अर्पणता करूं सुमति चरण अविकार ;
वामादिक गुरु-अर्पणा धर्म-मूढता धार· · ·१

इन्द्रिय नोइन्द्रिय थकी, पर-उपयोग प्रसार ;
प्रत्याहारी स्थिर करो, संत स्वरूप विचार ··२
आत्मार्पण सद्रुपाय छे, सहजानंदघन पक्ष ,
सहज-आत्म स्वरूपए, परमगुरु थी प्रत्यक्ष · ३

पद्मप्रभ चै० ६

सत्ताए सम ते छता, तुझ-मुझ अंतर केम ,
अहो **पद्मप्रभु** ! कहो, स्हेजे समजुं तेम···१
व्यतिरेक-कारण गही, तूं भूल्यो निज भान ,
अन्वय-कारण सेवता, प्रकटे सहज निधान·· २
अन्वय-हेतु ज्या प्रगट, ते संताधिन सेव ,
अनहद ज्योति जगमगे, सहजानंदघन देव·· ३

सुपार्श्व चै० ७

सहज सुखी नी सेवना, अवर सेव दुख हेत ,
घन-नामी सत्ता अहो ! **सुपारस** संकेत···१
पारस मणिना फरस थी, लोहा कंचन होय
पण पारसता नहिं लहे, संत मणि न सम दोय··२
सुपारस प्रभु सेव थी, सेवक सेव्य समान ,
अनुभव गम्य करी लहो, सहजानंदघन थान···३

चन्द्रप्रभ चै० ८

सुण अलि शुद्ध चेतने ! चन्द्र-वदन **जिन-चन्द्र** ;
तुं सेवे सर्वांगता, निशि-दिन सौख्य अमंद···१

काल अनादिय मूढ-मति, पर-परिणति-रतिलीन,
संत-प्रभुनी सेवना न लही सुदृष्टि-हीन ···२
सखि ! कृपा करी प्रभु तणा, कराव दर्शन आज ;
योगावंचक करणी ए, सहजानंदघन राज· ·३

सुविधि चै० ६

उभय शुचि भावे भजी, पूजत सुविधि जिनेश ,
प्रसन्न चित्त आणा सहित स्व-स्वरूप प्रवेश · १
अंग अग्र ए निमित्त छे, उपादान छे भाव ,
प्रतिपत्ति-पूजा तिहां, प्रगटे शुद्ध स्वभाव·· २
शुद्ध स्वभावी संतनी, सेव थकी लही मर्म ;
स्वरूप सेवन थी लहो, सहजानंदघन धर्म···३

शीतल चै० १०

भासे विरोधाभास पण, अविरोधी गुण-वृन्द ;
शीतल हृदये ध्यावतां, नाशे भव भ्रम फंद···१
स्वरूप रक्षण कारणे, कोमल तीक्ष्ण भाव ,
उदासीन पर-द्रव्य थी, रहिअे आप स्वभाव···२
स्वानुभूति अभ्यास ना, अनन्य कारण संत ,
सहजानंदघन प्रभु भजी, करो भवोदधि अंत· ·३

श्रेयांस चै० ११

भाव अध्यातम पथमयी, श्रेयांस सेवा धार ;
हठ योगादिक परिहरी, सहज भक्ति-पथ सार···१

देह-आत्म-क्रिया उभय, भिन्न म्यान असि जेम,
जड किरिया अभिमान तज, संवर किरिया प्रेम · २
ज्ञानादि गुण वृन्द पिण्ड, सोहं अजपा जाप,
संत कृपा थी पामिए, सहजानंदघन आप · ३

वासुपूज्य चै० १२

वासुपूज्य-जिन सेवना, ज्ञान-करम फल काज,
करम करम-फल-नाशिनी, सेवो भवोदधि पाज···१
निज पर शुद्धि कारणे, भजिए भेद विज्ञान,
निज-निज परिणति परिणम्ये, प्रगटे केवलज्ञान···२
स्वरूपाचरणी संत छे, भावलिंग विश्राम,
भेदज्ञान पुरुपार्थ अे, सहजानंदघन ठाम·· ३

विमल चै० १३

झगमग ज्योति विमल प्रभु, चढी अलोके आज,
हृदय-नयण निरख्या अहो ! भांग्यो विरह समाज ..१
दिव्य-ध्वनि अनहद सुणी, अति नाचत मन मोर;
सुधा-वृष्टि पाने छक्यो, करत पपैयो शोर ··२
उछलत सुख सायर तरल, लीन थयो मन-मीन,
संत-कृपा सहजे सध्यो, सहजानंदघन पीन···३

अनन्त चै०-१४

अनंत चारित्र-सेवना, आत्म वीर्य-थिर रूप,
टके न ज्या सुरराय के, भेखधारी नट-भूप ··१

मत-मठधारी लिंगिया, तप जप खप एकान्त,
गच्छधर जैनाभास पण, पर रंगी चित्त-भ्रान्त…२
टक्या सन्त कोई शूरमा, तास सेव धरी नेह ;
अनेकान्त एकान्त थी, सहजानंदघन रेह… ३

धर्मनाथ चै० १५

धर्म-मर्म जिनधर्म नो, विशुद्ध द्रव्य स्वभाव,
स्वानुभूति वण साधना, सकल अशुद्ध विभाव…१
तप जप संयम खप थकी, कोटि जन्मो जाय,
ज्ञानाजन अंजित नयन, वण नवि ते परखाय…२
दिव्य नयन धर सन्तनी, कृपा लहे जो कोइ ;
तो सहेजे कारज सधे, सहजानंदघन सोई…३

शान्तिनाथ चै० १६

सेवो शान्ति जिणंद भवि, शान्त सुधारस धाम,
अवर रसे आधीन जे, तेथी सरे न काम…१
शान्तभाव वण ना लहे, शुद्ध स्वरूप निवास,
लवण-महासागर जले, कदी न बूझे प्यास…२
तेथी शांति-स्वरूप नो, सतत करो अभ्यास ;
सहजानंदघन उल्लसे, सन्ताश्रयणे खास… ३

कुन्थु-चै० १७

कुंथु-प्रभु ! मुझने कहो, मन वश करण उपाय,
जे वण शुभ करणी सही, तुस-खंडन सम थाय… १

अजपा जाप आहार दई, सास दोरडे बांध,
निश दिन सोवत जागते, एज लक्षने साध ...२
अथवा संताधीन था, अवर न कोई इलाज;
गुरुगम सेवत पामिए, सहजानंदघन राज ...३

अरनाथ चै० १८

उभय नय अभ्यासी ने, द्रव्य-दृष्टि धरी लक्ष,
तदनुकूल पर्यय करी, अर-प्रभु धर्म प्रत्यक्ष ...१
भेद-दृष्टि व्यवहारी ने, थइ अभेद निज द्रव्य;
निर्विकल्प उपयोग थी, परमधर्म लहो भव्य २
परम धर्म छे ज्यां प्रगट, सद्गुरु संत नी सेव;
सहजानंदघन पामवा, पुष्टालंबन देव ...३

मल्लिनाथ चै० १६

घाती-घातक मल्लि-जिन, दोप अढार विहीन;
अवर सदोपी परिहरी, थाओ जिन-गुण लीन ...१
जिन-गुण निज-गुण एकता, जिनसेव्ये निज-सेव,
प्रगट गुणी सेवन थकी, प्रगटे आतम देव २
दोपी अदोपी परखिए, संताश्रय धरी नेह,
तो सहेजे निपजाविअे, सहजानंदघन गेह ३

मुनिसुव्रत चै० २०

आतम धर्म जणाय छे, मुनिसुव्रत जिन ध्याइ;
बीजा मत दर्शन घणा, पण त्यां तत्त्व न भाइ ...१

सत्संगी संगी थई, धरिये आतम-ध्यान,
सत्-श्रद्धा लयलीन थई, तो प्रगटे सद्-ज्ञान…२
दृग्-ज्ञाने निज रूप मां, रमतां आतम राम;
रत्नत्रयी नी एकता, सहजानंदघन स्वाम ३

नमि जिन चै० २१

कुल धर्म नास्तिक थई, सत् समझ अनेकान्त;
चिद्-जड-सत्ता नियत छे, सांख्य-योग सिद्धांत · १
अथिर-पर्यय द्रव्य-थिर, नियत सुगत-वेदान्त;
लोक-प्रपंच तजी भजो, अलोक आत्म अभ्रान्त·· २
नमि जिनवर उत्तमांग मा, षट् दर्शन षट्-द्रव्य,
गुरु गम थी आस्तिक बने, सहजानंदघन भव्य ··३

नेमिनाथ चै० २२

वीतरागता पामवा, नेमि-चरण सुविचार,
राग ऋणे-जाने चढ्या, पछी चढ्या गिरनार · १
एक वार रागे बंध्या, छूटे विरला कोय,
माटे राग न कीजिए, वीतराग बण लोय २
काम-स्नेह-दृग्-राग-क्षय, भगवद्-भक्ति पसाय,
सहजानंदघन दम्पति, सति-पति प्रणमुं पाय ३

पार्श्वनाथ चै० २३

चेतन चेतना फरसता, पूर्ण ध्रुव तद्रूप;
चिद्घन मूर्त्ति पार्श्व-प्रभु, केवलज्ञान स्वरूप···१

जगतज्ञान सवज्ञता, ते सर्वावधि ज्ञान ;
तदतिक्रान्त केवल दशा, ए परमार्थ विज्ञान ··२
ए केवल अवलंबने, प्रगटे स्वरूप ज्ञान ;
संत कृपाए विरल ने, सहजानंदघन भान···३

वीरप्रभु चै० २४

आत्म प्रदेश ने स्थिर करे, ते अभिसंधि-वीर्य ,
कषाय वश थी वीर्य ते, अनभि संधि अस्थैर्य···१
अभिसंधि बल फोरव्ये, वीर पणुं मन-मौन ,
उदय अव्यापकतन-वचन, क्रिया थाय ज्यागौण···२
साढा बार वरस लगी, वीर पणे विचरंत ,
वंदु श्रीमहावीर ने, सहजानंदघन संत·· ३

कलश

निज अलख गुण लखदा भणी, धरी लक्ष तजी सहु पक्षने ,
गिरिकन्दरा मोकल चोमासे, साधवा मन अक्ष ने ,
आनंदघन चोवीसी[1] लक्षे, चैत्यवंदन ए स्तव्या ,
गति-नभ-ख-बंधन (२००४) विक्रमे, शुद्ध सहजानंदघन पद ठव्या १

१—आनदघनजी की चौवीसी पर्याप्त प्रसिद्ध और भावपूर्ण रचना है। उसके योग्य चैत्यवन्दनो की कमी अनुभव कर आपने उन्हीं भावों को लेकर यह चैत्यवन्दन चौवीस गुम्फित की है।

(२) वर्त्तमान चतुर्विंशति जिन स्तुतयः *

ता० २८-११-६०

ऋषभ जिन स्तुति १

प्रीति अनुष्ठाने प्रेम ऋषभ-पद जोड़ी;
प्रभु-छवि चित्त झलक्ये पराभक्ति पथ दोडी ;
प्रभु आज्ञा तत्पर दृष्टिमोह गढ़ तोड़ी ;
जीत-क्षोभ असंगे सहजानंद रंग रोली···१

अजित जिन स्तुति २

दिशिपूर्वे अजीत-पथ चित्प्रकाश-ज्योत ;
दृग्-दृश्य विछोड़ी जोडी द्रष्टा-पोत ,
जगी अन्त. ज्योति त्या दृष्टि-अंधता-मोत ;
लगी ज्ञान निष्टा ज्यां सहजानंदघन स्रोत···२

संभव जिन स्तुति ३

परिग्रह-मूर्च्छा त्यां भय वली दंभाचार ;
संताज्ञा-अवज्ञा सत्मारग तिरस्कार ;
टले अपात्रता ए अनंत-कषाय प्रकार ;
संभव-प्रभु शरणे सहजानंदघन सार···३

---

* चैत्यवन्दन के बाद स्तवन और अन्त में स्तुति बोली जाती है। अतः चौवीस जिन के चैत्यवन्दनों की रचना के बाद उस क्रम की पूर्ति रूप में यह स्तुति चोवीसी रची गई है।

अभिनंदन स्तुति ४

थई संत-कृपा ज्यां अभिनंदन-श्रुति-धोध ;
जागे सुमति त्या प्रगटे चिद्-जड-बोध ;
ध्येय-ध्यान एकता रूप ध्याति अविरोध ;
खुले दृष्टि दर्शन सहजानंदघन शोध···४

सुमति जिन स्तुति ५

ज्ञायक सत्ता हूँ सुमति-प्रभु-पद-बीज ;
अर्पित उपयोगे अंतरात्म-रस-रीझ ;
छूटे जड-सत्ता-मोह रीझ नें खीज ;
बीज-वृक्ष न्यायवत् सहजानंदघन सीझ···५

पद्मप्रभ जिन स्तुति ६

संग युंजन करणे चित्-प्रकाश-त्रिकर्म ,
गुण करणे शमावी ज्योति-ज्योत स्वधर्म ;
जल-पंकथी न्यारा पद्मप्रभु गत भर्म ;
निज-जिन पद एकज सहजानंदघन मर्म···६

सुपार्श्व जिन स्तुति ७

नभ-रूप-विविधता ज्यां लगी पर्यय-दृष्टि ;
पण द्रव्य दृष्टिए अेक अखंड समष्टि ,
प्रभुता अवलंब्ये प्रगटे निज गुण सृष्टि ;
सुपार्श्व शरण थी सहजानंदघन वृष्टि ,

चंद्रप्रभ जिन स्तुति ८

सत्संग सुपात्रे योग-अवंचक नेक ;
स्वरूपानुसन्धाने क्रिया अवंचक टेक ,

मोह-क्षोभ विनाशे अवंचक फल एक,
प्रभु-चंद्र प्रकाशे सहजानंद विवेक ८

सुविधिजिन स्तुति ९

जिन-मंदिर-तन मंदिर अनुभव-संकेत;
अनहद अमृत रस ज्योति आदि समवेत,
अष्ट द्रव्य मिसे अे अनुभव-क्रम अभिप्रेत;
सुविधि-प्रभु पूजत सहजानंदघन लेत···९

शीतलजिन स्तुति १०

नय भंग निक्षेपे करीअे तत्त्व विचार,
त्या अस्ति नास्ति अवक्तव्य आदि प्रकार,
अविरोध सिद्धि ए स्याद्वाद-चमत्कार,
शीतल - सिद्धान्ते सहजानंदघन सार···१०

श्रेयांसजिन स्तुति ११

कर्तृत्वाभिमाने कर्म शुभाशुभ - बन्ध,
सधे ज्ञप्ति क्रिया थी बोधी-समाधि अबन्ध;
कर्त्ता न कदापि चेतन पर जड़-धंध,
श्रेयांस-बोध ए सहजानंद सुगंध···११

वासुपूज्यजिन स्तुति १२

कर्त्ता पद-सिद्धि व्याप्य-व्यापक न्याये;
तत्स्वरूप न जुदा कर्त्ता-कर्म-क्रियाए,

परिणति परिणामी परिणाम एक ध्याये ;
सहजानंद रस प्रभु वासुपूज्य गुण न्हाये ··१२

विमलजिन स्तुति १३

सजीवन मूर्ति करी माथे समर्थ नाथ ,
पछी शत्रु दल थी करीअे बाथम्बाथ ,
प्रभु विमल कृपाथी विजय लक्ष्मी करि हाथ ,
त्यां सहजानंदघन थाय त्रिलोकीनाथ · १३

अनंतजिन स्तुति १४

करी विविध क्रिया ज्या आश्रव वंध प्रकार ;
नोय माने हुं साधु समिति-गुप्ति व्रत धार ;
निज लक्ष-प्रतीति-स्थिरता नहिं तिल भार ,
केम पामे अनंतप्रभु ! सहजानंद पद सार·· १४

धर्मजिन स्तुति १५

दृग्-स्नेह-काम वश दूपित प्रेम-प्रवाह ,
प्रत्याहारी प्रभु धर्म-पदे शुद्ध राह ,
चित्त कमले ध्यावो प्रभु छवि धरि उत्साह ,
खुले परम खजानो सहजानंद अथाह··१५

शान्तिजिन स्तुति १६

परिस्थिति वश जे-जे उठे चित्त-तरंग ,
ते भिन्न तुं भिन्न अत. क्षुभित न हो अन्तरंग ,
ठरो शान्त रसे तो प्रगटे अनुभव-गंग ,
प्रभु शान्ति पसाये सहजानंद अभंग · १६

श्रीकुन्थुजिन स्तुति १७

अररर ! भ्रम-भ्रम !! छी !!! जड़ मन नो शो दोष ?
चेतन निज भूले करे रोष न तोष ;
शुद्ध भाव रमे जो मन-विलीन निज-कोष ,
प्रभु कुन्थु कृपाथी सहजानंद-रस पोष...१७

श्री अरजिन स्तुति १८

सम् अयति-द्रव्य सौ अने चेतन निरधार ,
चित्त त्रिविध कर्म स्थित ते पर समय विकार ,
ज्ञायक सत्ता स्थिति चेतन स्वसमय सार ,
अर धर्म-मर्म अे सहजानंद अविकार ..१८

श्रीमल्लिजिन स्तुति १९

चिद्-जड अभान त्यां सुषुप्त-चेतन अंध ;
केवल जड भाने स्वप्न सृष्टि सम्बन्ध ,
निज-पर विज्ञाने जाग्रत भेदक संघ ,
प्रभु मल्लि उजागर केवल ज्ञानानंद···१९

मुनिसुव्रत स्तुति २०

भिन्न-भिन्न मत दर्शन अेक-अेक नयवाद ;
निरपेक्ष दृष्टिए वध्यो धर्म विपवाद ;
टाले मुनिसुव्रत समन्वय स्याद्वाद ,
सापेक्ष दृष्टिए सहजानंद रस-स्वाद...२०

नमिनाथजिन स्तुति २१

नमिनाथ प्रभु-पद सांख्य-योग बे ख्यात ;
वली बौद्ध-वेदान्ती कर स्थाने करे वात ;
निज प्रतीति पूर्व चार्वाक् हृदय उत्पात ,
शिर जैन प्रतापे सहजानंद सुहात...२१

नेमिजिन स्तुति २२

रागी रीझे पण केम रीझे वीतराग ?
एकांगी निष्प्रभ विनशे साधक-राग ,
नेमनाथ आलंबी राजुल थाय विराग ,
नमुं सहजानदघन ते दम्पति महाभाग २२

पार्श्वजिन स्तुति २३

षड् गुण-हानि वृद्धि प्रति द्रव्य मा थाय ,
तोय न्यूनाधिक ना अगुरुलघु गुण क्षाय ,
छे नित्य द्रव्य पण ज्ञेय निष्टा दुख दाय ;
प्रभु-पार्श्व-निष्ठा तोय सहजानंद उपाय...२३

श्रीवीरजिन स्तुति २४

दर्शन ज्ञानादिक जे-जे गुण चिद्रूप ,
प्रतिगुण-प्रवर्त्तना वीर्य क्षायक रूप ,
तजी पर-परिणति सौ गुण शमाव्या स्वरूप ,
नमुं सहजानंद प्रभु महावीर जिन भूप...२४

श्री महावीर स्वामी छः कल्याणक चैत्यवन्दन

वीर जिनेश्वर वादी ने, आणी हृदय उल्लास।
तारूं कल्याणक ध्यावता, करिये कर्म नो नाश ॥१॥
सुर आयु पूरण करी, आव्या ब्राह्मणी कूख।
इन्द्रे अछेरूं जोइने, आण्युं मन मा दु:ख ॥२॥
श्रेय जाणी प्रभु वीरनुं, त्रिशला उदर मझार।
ठविया हरण गमेषीए, बीजुं कल्याणक सार ॥३॥
जन्म दीक्षा केवल इमे, उत्तराफाल्गुनी जाण।
पंच कल्याणक ए हुवा, छट्ठो स्वाति वखाण ॥४॥
छ कल्याणक वीरना, भाख्या सूत्र मझार।
सेवे सद्दहे जे भवि, रत्नत्रयी लहे सार ॥५॥

श्री महावीर जिन स्तुति

श्री महावीर जिनेश्वर मुझ भणी, सेवा फलो ताहरी।
षट् कल्याणक ताहरा श्रुत सुणी भ्रांति टली माहरी॥
जे निंदे अकल्याणक भूत तुझनो, उत्सूत्र भाषी सदा।
ते दण्डे निज आत्म निंदक जतो, पामे न बोधि कदा ॥१॥

---

(३) ऋषभदेव स्तवन

देवतत्त्व सामान्य पद   २०-१०-६९ विजयादशमी

देवाधिदेव पद एक, ऋषभ प्रभु तुझ मा घटे छे...
विश्वमा धर्मो अनेक, भिन्न भिन्न नामे रटे छे
विष्णु अवतार तुं आठमो ए, भागवत ग्रंथ आख्यान··ऋषभ प्रभु०
शंकरे तुझ रूपे अवतार धर्यो, शिव संहिताए व्यान.. ऋषभ० १
रत्नत्रयी त्रिशूले संहार्यो, अज्ञान अंधकासुर · ऋषभ०
खंभे तारे लटके अलकावलि, जटाधारी तपशूर·· ऋषभ० २
निर्वाण दिन एज महाशिवरात्रि, तूं सत् चित् आनंदी··ऋषभ०
अष्टापद कैलाश वासी तुंज, चरणे सन्मुख रहे नंदी...ऋषभ०३
विष्णु नाभीए ब्रह्मा थइ प्रगट्यो, ते तूं नाभिराय नंद·· ऋषभ०
समवशरण उपदेश चतुर्मुख, पिता तुं सरस्वती पंड...ऋषभ० ४
बाबा आदम ते तुंज आदिनाथ, मान्य इस्लामी धर्म...ऋषभ०
कान दाबी बाहुबलिए पोकार्यो, बांग विधिए मर्म...ऋषभ० ५
आदि बुद्ध तुं आदि तीर्थंकर, आदि नरेश समाज...ऋषभ०
आद्य संस्कृति नो तूं पुरस्कर्त्ता, सहजानंद पद राज...ऋषभ० ६



(४) ऋषदेभव तप स्तवन

अंतराय क्षय कारण विचरे, ऋषभदेव भगवान ।
राज समाज तजी व्रत धारी, सजी ने साध्य निशान ॥
निज साध्ये तन्मयता व्यापे, चार ज्ञान पण बोध न आपे ।
स्वजन शिष्य गण ममत तजी ने, बोले नहीं मुख वाण ॥ अं०॥१॥
यथा समय नित गोचरी जावे, अंतराय उदये नहिं पावे ।
रात दिवस रहे काउसग्ग मुद्रा, भूली जड़ तन भान ॥ अं० ॥२॥
हाथी घोडा मिल्कत सारी, कोई आपे निज प्रिय सुकुमारी ।
पण आहार न आपे जनता, दान विधान अजाण ॥ अं० ॥३॥
अणाहारी निज पद निश्चय थी, रहे अडोल क्षुधा परिषह थी ।
उदये अणव्यापकता साधी, धन्य मुनीश महान् ॥ अं० ॥४॥
वर्ष उपर कइ दिन वीते ज्यां, आहार विघन दल क्षीणथयुं त्या ।
अक्षयतृतीया पर्व मिले प्रभु, आव्या गजपुर स्थान ॥ अं० ॥५॥
देखत प्रभु रोम रोम उल्लासे, जातिस्मरण लाधुं कुंवर श्रेयासे ।
गतभव साध्वाचार स्मरी ने, जाण्युं दान विधान ॥ अं० ॥६॥
नमि विनवी प्रभु घर पधरावे, अदूषण इक्षुरस वहोरावे ।
प्रगट्या पंच दिव्य जन हरख्या, महिमा ए प्रभु दान ॥ अं० ॥७॥
प्रभु साधकता मर्म लहीजे, इच्छारोधन तप एम कीजे ।
कर्म दही तप अनले लीजे, सहजानन्द निधान ॥ अं० ॥८॥

---

(५) सिद्धक्षेत्र श्री कैलाश-अष्टापद

चलो हँस ! अष्टापद कैलाश, कर्म आठ हो नाश···चलो०
ऋषभ प्रभु निर्वाण-भूमि यही, हिम छायो चौ पास ;
सगर गंग नाले शुचि होकर, भव परिक्रमा खलास...चलो० १
पश्चिम दिशि नभ-मग चढ श्रेणि, आठ तला क्रम जास ;
सप्तम तल गढ फाटक हो चढ, पैड़ी आठ उल्लास···चलो० २
अष्टम तल सब चौदह मंदिर, मध्य श्री ऋषभ आवास ;
रत्न विंब मणि मंडित मंदिर, अद्भुत दिव्य प्रकाश*···चलो० ३
द्वार खड़े गजराज दुतर्फा, तरु एक प्रांगण तास ;
मंदिर चार विदिशि उत्तर दिशि, आठ एक पैड़ी पास···चलो० ४
सप्तम तल उत्तर दिशि दश मिल वर्त्तमान जिन वास ;
चत्तारि अट्ठ दस दोय मंदिर, अनुभव क्रम यही खास...चलो० ५
सप्तम पूरव दक्षिण श्रेणी, चौवीस चौकोर प्रास ;
पूर्व अतीत अनागत दक्षिण, दो चौवीसी दुपास...चलो० ६
जिनालय बहत्तर अरु मुनि, निर्वाण-स्तूप सुनिवास ;
पराभक्ति सह वन्दत पूजत, सहजानंद विलास...चलो० ७

ता० ७-५-६०



---

* ३ रत्न विंब चरण चिन्ह मण्डित, सिंहनिसादी खास ।

(६) श्री ऋषभ जिन स्तवन

(राग—आशावरी)

ऋषभजी अब मोहि पार उतारो, मैं रुल्यो गति चारो ॥ऋ०॥
कनकोपल वत् वस्यो निगोदे, काल अनन्त गमायो।
जाति पंचेन्द्री उग विगले, भ्रमण करी दुख पायो ॥ऋ०॥१॥
काम क्रोधादिक वश पडी ने, राग द्वेष वहु कीनो।
पुण्योदय तुझ दर्शन मही ने, चंपाश्रय से भीनो ॥ऋ०॥२॥
चारित्रमोह क्षय-उपशमी ने, पंच महाव्रत धार्यो।
द्यो आशीष मुझ महेर करी ने, जिम निज कारज सार्यो ॥ऋ०॥३॥
नाभिनंदन त्रिजगवन्दन, माता मरुदेवी जाया।
सिद्धाचल गिरि कर्म-निकंदन, पूर्व नवाणुं आया ॥ऋ०॥४॥
पूर्वे सिद्धा उणगिरि मुनिवर, तेम भविष्ये जेह।
रत्नत्रयी निजातम सुखकर "भद्र" नमे धरी नेह ॥ऋ०॥५॥

(७) चन्द्रप्रभ जिन स्तवन

राग-धन्याश्री

चन्द्रप्रभु! सुनिये अरज हमारी.. सुनिये...
दुख समुदाय सह्यो नहिं जावे, त्रिविध ताप संसारी।
मानवता सह दो प्रभु हमको, परा-भक्ति तुम्हारी।
माया-मोह-विकल इस मन की, बलि स्वीकारो मोहारि।
साहस दो रहूं शरण तुम्हारे, सहजानंद पद चारी॥
पावागिरि ऊन, ता० २४-७-५८

(८) नेमि राजुल स्तवन

राग-गरबो

एक वार आवो मुज घेर — जाओ मा वालमा
नेमि प्रभु वरसावो महेर — जाओ मा वालमा
पशुनी दया करी परमकृपालु, मुझ पर वरतावी केर...जाओ मा०
मानव करता तिर्यंच करुणा, जग जन कहेशे अंधेर...जाओ मा०
वासना विषमय नारी नागणीयो, मुझ मा एवुं न झेर.. जाओ मा०
सत्सुख साधक उत्तर साधक, धरसुं दाम्पत्य हर्ष भेर...जाओ मा०
थाशो श्रमण तो श्रमणी थईश हुं, आपनी छोडुं न केड...जाओ मा०
कर्मो खपावी मुक्त थशो तो, आवीश स्वरूप सहेर . जाओ मा०
भक्ति पराये राजुल विनवे, मांगुं सहजानंद लहेर...जाओ मा०

(९) पार्श्वनाथ स्तवन

(चाल—हु उजवुं पर्व दीवाली)

जिन मुद्रा धर पास, तजी पर आश, ऊभा निज ध्याने
अहिछत्रा नगर उद्याने .. जिनमुद्रा
शत्रु वट दस भवनी धरतो, मेघमाली क्रोधे झलहलतो
उपसर्ग करे जल धारे, रही नभ छाने ... अहिछत्रा०
तन्मय निज शुद्ध स्वभाव ढल्या, उपसर्ग नाशाग्र निमग्न छता न चल्या
रह्या देह विदेही भावे, खड्ग जेम म्याने ... अहिछत्रा०
आसन कंपे अहिपति आवे, ऊचकी फणा छत्र शिरे ठावे,
प्रिया युत प्रभु गुण गान करे एक ताने ... अहिछत्रा०
वंदक निंदक समभाव अहा, ज्ञाता द्रष्टा शुद्ध भाव महा,
उदये अणव्यापक साक्षी रह्या निज भाने ... अहिछत्रा०
छे विषम भाव संसार तती, समभाव धर्यो स्व स्वरूप अति,
कृतकृत्य थया सहजानंद दर्शन ज्ञाने ... अहिछत्रा०

(१०) सहस्रफणा पार्श्वनाथजी का स्तवन

(चाल—नागरवेल ओ रोपाव)

मैंने सहसफणा प्रभु पास, दर्शन पाया सूरत में।
मूर्त्ति मनहर मंगलवास, दर्शन पाया सूरत मे॥ (टेक)
शीतल जिनवर प्रासादे, प्रणमुं प्रभु अति आह्लादे।
भूमिगर्भ में निवास, दर्शन पाया सूरत में॥ १॥
उपसर्ग करे मेघमाली, वरसे वरसा विकराली।
निमग्न प्रभु आनास, दर्शन पाया सूरत में॥ २॥
प्रभु कष्ट निवारण भावे, धरणेन्द्र प्रिया युत आवे।
निश्चल ध्याने थिरता तास, दर्शन पाया सूरत में॥ ३॥
निज शिर प्रभु पद ठवेवी, वारी स्थिति पद्मादेवी।
करे भक्ति चित्त उल्लास, दर्शन पाया सूरत में॥ ४॥
अरु सहस्रफणा विकसावें, असुराधिप प्रभु शिर ठावे।
आतपत्र सुरम्य प्रकास, दर्शन पाया सूरत में॥ ५॥
अरे मूढ अकारज कीनो, प्रभु दुखी पातक लीनो।
तुझ उपगारी प्रभु पास, दर्शन पाया सूरत में॥ ६॥
नागेन्द्र बोधामृत पावे, मेघमाली शीश झुकावे।
याचे खामणा प्रभु पास, दर्शन पाया सूरत में॥ ७॥
इत्यादि वर्णन सारा, अति अद्भुत दृश्य चितारा।
दर्शक देखत ही विश्वास, दर्शन पाया सूरत में॥ ८॥

प्रभु दर्शन पूजन भावे, भवि नर नारी केई आवे।
पावे बोधि बीज विकास, दर्शन पाया सूरत में ॥ ९ ॥
अधिष्ठाता परचा पूरे, रोग शोक संकट सब चूरे।
अक्षय संपत लील विलास, दर्शन पाया सूरत में ॥ १० ॥
जिनरत्नसूरि सुपसाये, मुनि 'भद्र' प्रभु स्तव गावे।
थुणते अष्ट कर्म तृण नाश, दर्शन पाया सूरत मे ॥ ११ ॥

---

(११) श्री सहस्रफणा पार्श्वनाथ स्तवन

चाल—मेरी अरजी

तारो सहस्रफणा प्रभु पार्श्व मने (२)
रझली थाक्यो घनघोर संसार वने (आकणी)
इग विगल तिरि नर देव नारक, भज्या वेप अनंत में;
चोरासी लख चौटा भमी, आस्वाद्यो दुख अनंत में,
जाणो आप सहु मुझ वीतक ने ॥ तारो० ॥ १ ॥
पुण्योदये मानव पणे हुं, अवतर्यो आर्हत् कुले,
मोह जाल मा मुझाइ ने, विंधायो हुं संशय शुले,
वांछ्यो पुद्गल पोष तणा सुख ने ॥ तारो० ॥ २ ॥
छोडी निरंजन देव ने, पूज्या मिथ्यात्वी देव में,
चूकी चिन्तामणि रत्न हु, ललचायो कुमत काच में,
मूकी कल्प सेव्या आक बांवल ने ॥ तारो ॥ ३ ॥

हिंसा घणी कीधी प्रभु, वद्यो वदन थी झूठो घणो;
कूड आल तो दीधा घणा, कर्यो द्रोह बंधु सुजन तणो,
लीधी वस्तु अदत्त कुटील मने ॥ तारो० ॥ ४ ॥
छोडी स्वरूप निज भाव नो, होंसे रम्यो परभाव ने;
विषधर हलाहल विष समा, विषये वसावी ध्यान ने,
सेव्या क्रोध माया मद मत्सर नें ॥ तारो० ॥ ५ ॥
धन कुटुंब वैभव आदिमय, तृष्णा जले डूब्यो खरे,
आकाश कुसुम समूह अर्क, सुगंधी सुख सादन परे,
भूली आप दीधा दोषो पर ने ॥ तारो० ॥ ६ ॥
एहवा अकार्यो मुझ तणा, आलोचुं आप कने विभु;
ए कर्म पाश विदारवा, द्यो ज्ञान शक्ति हे प्रभु,
याचुं एहीज आप दयाल कने ॥ तारो० ॥ ७ ॥
तजी दोषमय पंचाश्रवो, सजी सर्वविरती त्रयावली;
"जिनरत्न"-त्रयी अवलंबी ने, प्रगटावुं निज रत्नावली,
"भद्र" भावे वरुं अक्षय पद ने ॥ तारो० ॥ ८ ॥

———

(१२) श्री वीर स्तवन

बाल पणे आपण साथी सौ, रम्या आमलकी केली,
लोभ फणी मद दैत्य ने पटकी, आप वरया शिव वेली...
हो प्रभु जी मुझ रंक ने भव ठेली – १

चालवो'तो आ बाल वीकण पण, मैत्री धरम अनुसारे
अेकलपेटा मौज उडावौ, छाना जई भव व्हारे...
हो प्रभु जी तुम विण मुझ कोण तारे ?—२

आप समान करे लक्षाधिप, मांडवगढ सुसाधरमी
क्षायिक नव निधि नाथ तमारे, आपो ने अंश अकरमी···
हो प्रभु जी थाऊं सद् दर्शन मर्मी···३

निष्कारण करूणा - रस - सागर, तारक विरुद वडेरो
जेवो तेवो पण साथी तमारो, नहिं छोडुं हवे केड़ो···
हो प्रभु जी मुझने झटपट तेड़ो···४

विरह खमाय न वीर तमारो, नयन वहे जल धारा
आप मल्या थी आप नी संगे, उजवुं हर्ष फुवारा···
हो प्रभु जी सहजानंद अपारा···५

(१३) महावीर स्तवन (कच्छी भाषा)

राग-भैरवी कच्छी

मुंके पण तार्यो तार्यो महावीर, भव धरीये जे तीर·· मुंके पण०
भव धरीये में आऊं रझडातो, जन्म मोतजा दुखडा दसातो;
धिल में जोऐं आं अधीर ·· मुंके पण० ··· १
राग द्वेष भरयो आऊँ पूरो, कूड कपट जंजाल में शूरो,
न छड्या मिथ्याती पीर ··· मुंके पण० ··· २
अेडा दुखडा दींशी ने ध्रु जांतो, तें जीयां आं अगिया चातो
तोड्यो भव जंजीर ·· मुंके पण ······ ३
आ जेडो व्यो देव न सुट्ठो, इत उत रझड़ी कोई न दिट्ठो
गुणे अयो गंभीर ··· मुंके पण ······ ४
सर्प चंडकोशिए तारया, कै जीवें के आंइ उगार्या
अेडा प्रभु शूरवीर · मुंके पण ······ ५
वाट वतायो मोक्ष विंझेजु, उज्ज भुख नांय वै कुरेजु
ओंजो भनायो भजीर ·· मुंके पण ······ ६
खायक समकित आश रखांतो, हत्थ जोडी ने डतरो मंगातो
'भद्र' नमाई शिर ··· मुंके पण ······ ७

---

(१४) श्री वीर षट कल्याणक स्तवन

ढाल—"हो चंद्रानन जिन !" ए राग

तुझ कल्याणक जेह रे, आगम मा थुण्या ;
ध्यावुं छुं धरि नेह, हो वीर जिनेश्वरु १
प्राणत कल्प थकी चव्या रे, गोत्र बंधन अनुसार ;
ब्राह्मणी कूखे अवतर्या रे, प्रथम कल्याणक सार हो वीर० २
ब्यासी दिवस वीते थके रे, शक्रेन्द्रे प्रभु दीठ ,
मन विमासण मां पड्युं रे, कारण एह अदीठ.. हो वीर० ३
ऊँच कुले धरूं एह छे रे, माहरो कुल आचार ;
जेह थकी प्रभु वीर नो रे, श्रेय हुवे निरधार.. हो वीर० ४
राणी सिद्धारथ रायनी रे, त्रिशला उदर मझार ,
ठविया हरणगमेषीए रे, बीजुं कल्याणक सार . हो वीर० ५
जन्म दीक्षा केवल हुवा रे, उत्तराफाल्गुनी जेह ;
स्वाति मोक्ष सिधाविया रे, छट्ठुं कल्याणक एह.. हो वीर० ६
सर्व तीर्थंकर आश्रिता रे, पंच कल्याणक कीध ;
हरिभद्र पंचाशकं रे, अर्थ प्रगट ए लीध.. हो वीर० ७
आचारांग ठाणाग जी रे, कल्पसूत्र मनोहार ,
छए कल्याणक वीर नां रे, प्रगट पणे अधिकार.. हो वीर० ८
जन्म दीक्षा केवल थये रे, उद्योत हुवे तीन लोक ,
मोक्ष गये तम ऊपजे रे, त्रीजो अंग आलोक.. हो वीर० ६
च्यवन रहित सुरनर करे रे, महोत्सव रूड़ी प्रकार ;

निश्चित काय न च्यवन मा रे, भगवती अे निरधार··हो वीर० १०
क्षत्रिय कुल मां संक्रम्या रे, कार्य उत्तम छे जेह ;
अधम कहे प्रभु वीर ने रे, अधम पणुं लहे तेह··हो वीर० ११
ब्राह्मणी कूखे जेह्नो रे, कल्याणक कहेवाय ;
त्रिशला कूखे तेह्नो रे, केम अकल्याणक थाय··हो वीर० १२
स्वप्न उतारादि क्रिया रे, वर्त्तमान मा जेह ;
त्रिशला गर्भ ओच्छव करे रे, श्रेय जाणी सहुतेह··हो वीर० १३
पुरुष वेदे ऊपजे रे, सर्व तीर्थंकर जेह ;
तेम मानो प्रभु मल्लि ने रे, थयुं अच्छेरुं एह··हो वीर० १५
स्त्री वेदे स्वीकार छे रे, मल्लि तीर्थंकर जेम ;
गर्भ थी गर्भ पणे हुआ रे, चरम तीर्थंकर तेम··हो वीर० १५
अक्षर एक उत्थापतां रे, अनंत संसारी थाय ;
जिन आणा युत वचन थी रे, निकट भवी ते प्राय··हो वीर० १६
श्रद्धा जिन आणा तणी रे, समकित फल देनार ;
सूत्र अर्थ प्ररूपणा रे, भव भय टालनहार·· हो वीर० १७
कल्याणक स्तवना करूं रे, वीर तणां छए आज ;
भवभीरुता हैडे धरूं रे, सिद्धा वंछित काज...हो वीर० १८
गणिवर रत्नमुनीश्वररू रे, रत्नत्रयी दातार ;
प्रेमे थुणतां नीपजे रे, "भद्र" हृदय मनहार··हो वीर० १९

———

सामान्य जिन स्तवन

(१५)

चाल—वेर वेर नहीं आवे, अवसर

अवलंवन हितकारो प्रभुजी तेरो (२)

पावत निज गुण तुम दर्शन सें, ध्यान समाधि अपारो ॥प्र०॥ १ ॥

प्रगटत्त पूज्य दशा पूजन से, आत्म रमण विस्तारो ॥ प्र० ॥ २ ॥

भावत भावना तन्मय भावे, अड्ढ पुग्गल निस्तारो ॥ प्र० ॥ ३ ॥

रोग सोग मिटत्त तुह नामे, त्रूटत्त कर्म कटारो ॥ प्र० ॥ ४ ॥

श्रीजिनरत्न-त्रयी प्रगटावत, भद्र तया भव पारो ॥ प्र० ॥ ५ ॥

(१६)

चाल—वेर वेर नहीं आवे, अवसर

चाहुं शरण तुम्हारो हो जिनवर (२)

भव अटवी मा काल अनादि, पाम्यो दुख अपारो ॥ चाहुं० ॥ १ ॥

दृढतर ध्याने श्रेय विचारत, सुखद मार्ग तुमारो ॥ चाहुं० ॥ २ ॥

मुक्तिपुरी साधन संपादन, सर्वविरति स्वीकारो ॥ चाहुं० ॥ ३ ॥

निर्मल ध्याने कर्म खपावत, भ्रमण मिटत्त गति चारो ॥चाहुं०॥४॥

जीव अमलना रत्नत्रयी संग, सादि अनंत अपारो ॥ चाहुं० ॥ ५ ॥

---

(१७) श्री सीमंधर स्तवन

उदरामसर धोरा गुफा—बीकानेर [ता० २-१-६०

हंसा ! महाविदेह तू जा जा (२)
सीमंधर प्रभु के चरणों में, प्रतिदिन यात्रा किये जा ;
अवधि मन.पर्यव-केवलीजिन, दर्श स्पर्श सुख लेजा··· हंसा० १
मानसरोवर शुचि मुक्ताफल, चंचु भर भर के जा ;
समवशरण में प्रभुजी के आगे, स्वस्तिक भरत भरेजा ·· हंसा० २
भूचर-खेचर-तिरि-नर देवा, संघ सेवा निवहेजा ;
बोध-सुधा-पय पीवत पीवत, नित्य कर तृप्त कलेजा· हंसा
जीवन साथी सहजानंदघन, हंसो सोहं रमेजा ;
परम कृपालु देव आशीस ले, शीघ्र सिद्ध पद पै जा··· हंसा० ४

ज्ञान आराधना पद

राग—हमीर कल्याण

ज्ञान भणो इक तान...हो भविआं (२)
भणी ने प्रगटावो निज भान हो भवि०

ज्ञान विना शुद्ध तत्त्व न परखे, जीव अजीव पिछान ॥ भ० ॥ १ ॥
बंध उदय उदीरणा सत्ता, आठ करम नी तान ॥ भ० ॥ २ ॥
शुद्ध देव गुरु धर्म तणी जो, जाण नहीं विण ज्ञान ॥ भ० ॥ ३ ॥
तेह थी सूत्र मां ज्ञान वखाण्युं, केवल दरसन वान ॥ भ० ॥ ४ ॥
पंच एकावन भेद प्रभेदे, विधि पूर्वक अनुष्ठान ॥ भ० ॥ ५ ॥
त्रिकरण शुद्धे ज्ञान अराधो, मूकी जूठ गुमान ॥ भ० ॥ ६ ॥
श्रीजिनरत्नत्रयी प्रगटावी, 'भद्र' धरो नित ध्यान ॥ भ० ॥ ७ ॥

(१८) सिद्धान्त रहस्य गर्भित श्री तीर्थवन्दना स्तुति

मोकलसर गुफा

दोहा-छंद

सिद्धपद[1] निज[2] सस[3] अछे, व्यक्त[4] गुणी छे सिद्ध ।
निजपद शक्ति[5] व्यक्तता, निमित्त[6] कारण जिन[7] ऋद्ध[8] ॥ १ ॥
उपादान[9] कारण सजी, ध्यावुं सिद्ध स्वरूप ।
पण ते अलख[10] लखाय ना, रूपातीत[11] अनूप[12] ॥ २ ॥
तेज निधि[13] छे व्यक्त ज्या, रूपस्थ[14] श्री अरिहंत ।
ऋषभ वीर प्रमुख हता, छे विदेह[15] विचरंत ॥ ३ ॥
मोह[16] ग्रंथि विहीन[17] जे, क्षायक[18] दृष्टि सुसंत[19] ।
श्रेणिक कृष्ण प्रमुख ते, भावी[20] तीर्थ महन्त[21] ॥ ४ ॥
तस[22] विरहे[23] तस थापना,[24] अभिन्न[25] श्रद्धा धार ।
कारण[26] कर्त्तारोप[27] थी, नैगम नय[28] अनुसार ॥ ५ ॥
निश्रा[29] अनिश्रागत[30] अछे शास्वत[31] मंगल[32] सार ।
भक्ति[33] ए पंच भेद थी, जिनठवणा[34] अधिकार ॥ ६ ॥
देव सुभवन विमानसा, मेरु आदि गिरि शृंग ।
नंदीश्वर द्वीपादि ए, शास्वत चैत्य उत्तुंग ॥ ७ ॥
अष्टापद शत्रुंजयो, समेतशिखर गिरनार ।
आबू तारंगा प्रमुख ते, भक्ति सुचैत्य उदार ॥ ८ ॥
मंगल-गृह-द्वारो परे, शेष भेद वे जेह ।
पावा चंपा वनारसी, ग्राम नगर वन तेह ॥ ९ ॥

अंतरदृष्टि[35] लीन थई, वहिरातमता[36] खेह[37] ।
आतम[38] अर्पण भाव थी, वंदूं पूजुं तेह ॥ १० ॥
संताश्रय[39] श्रुतज्ञान लई, धरूं सालंवन[40] ध्यान[41] ।
लखूं[42] रूप[43] भिन्न देह थी, जेम खडग ने म्यान ॥ ११ ॥
स्वालंवन[44] थिर ज्योति[45] ते, सुधा[46] वृष्टि पय पीन[47] ।
दिव्यध्वनि[48] अनहद सुनी, अवाध्य[49] सुख मन लीन ॥ १२ ॥
स्व स्वरूप[50] एकत्वता, पराभक्ति[51] सदुपाय[52] ।
कर्मो[53] संवर[54] निर्जरे,[55] सहजानंद[56] पद राय[57] ॥ १३ ॥

स्वोपज्ञ संक्षिप्त टिप्पण

[सं० २००३ में प्रकाशित "पंच प्रतिक्रमण-सूत्र" से अनूदित]

१ सिद्ध-कर्म रहित शुद्ध जीव द्रव्य-मोक्ष के जीव, पद-पदवी, २ निज-(कर्म सहित अशुद्ध जीव-द्रव्य संसारी जीव, उसका) अपना, ३ समान ४ प्रगट ५ विद्यमान गुण समूह का अप्रगट सत्ता में रहने के भाववाची 'शक्ति' शब्द का यहाँ ग्रहण हुआ है। ६ जिन पदार्थों का स्वयं कार्यरूप में परिणमन नहीं होता किन्तु जो कार्योत्पत्ति में सहायक होते हैं, जैसे—घडे की उत्पत्ति मे दण्ड चक्र आदि, ७ राग-द्वेष जीतने वाले वीतराग परमात्मा, ८ ज्ञानादि अनन्त गुण मय स्वाभाविक स्वरूप संपत्ति, ९ जो पदार्थ पहले कारण रूप होकर स्वयं कार्य रूप में परिणत हो जांय जैसे—घड़े की उत्पत्ति में मिट्टी अनादिकाल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चल रहा है, उसमें अनन्तर पूर्व क्षणवर्त्ती

पर्याय को उपादान कारण कहते हैं और अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय कार्य कहलाता है। १० ज्ञान-चक्षु के विना मात्र चर्म चक्षु से जो न पहचाना जाय वह, जैसे भगवान आनन्दघनजी ने कहा है—"वरपा वुन्द समंद समाने, खवर न पावे कोइ, आनंदघन ह्वै ज्योति समावै, अलख कहावै सोई" ११ अरूपी १२ अनुपम, उपमारहित १३ अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत सुख, अनंतदान, अनतलाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग और अनंत वीर्य ये नौ क्षायिक लब्धि रूप नौ निधान १४ देहधारी १५ महाविदेह क्षेत्र में, १६ जिसके उदय से स्व-पर पदार्थों की विपरीत श्रद्धा हो जाय, परिणामत. ज्ञान और आचरण उल्टा होकर संसार मे चिर स्थिति हो जाय, ऐसे आत्म परिणाम विशेप की उलझी हुई सघन मिथ्यात्व-गाँठ, १७ रहित १८ क्षायिक सम्यक्त्वी—निज स्वभाव ज्ञान में केवल उपयोग से आत्मा का तन्मयाकार सहज स्वभाव में निर्विकल्प परिणमन हो उसका नाम है सम्यक्त्व। निरंतर वह प्रतीति वनी रहे उसका नाम है क्षायिक सम्यक्त्व, वह जिन्हें प्रगट हुआ है वे। इसकाल में भी क्षायिक सम्यक्त्व होता है। यथा—"खाइग सम्मदिट्ठि जुगप्पहाणागमं च दुप्पसहं" आर्य सुधर्म प्रभृति दुप्पसहसूरि पर्यंत जो २००४ युगप्रधान हैं, वे सव क्षायिक सम्यक्त्वी ही हैं, "तं तह आराहेज्जा, जह तित्थयरे य चउव्वीसं।" "जुगप्पहाणो जिणव्व दट्ठव्वो" उन प्रत्येक क्षायकदृष्टि युगवरों को जिनेश्वरवत् देखना-

आराधन करना चाहिये, उनकी और वैसे ही उनके वचनों की चौवीसों-तीर्थंकरों की भाँति आराधना करना (श्री श्रेणिकादि-वत् शेष तीर्थंकर नाम कर्म रहित अत्यागी क्षायिक दृष्टि वाले भी "भावी सामान्य केवली" पने आराध्य हैं इसी कारण से युगवरों के अनेक स्थानों में स्तूपादि विद्यमान हैं किन्तु अज्ञ साधक वर्ग, लौकिक दृष्टि से उनकी आराधना करते हैं वह मिथ्या है। "महानिसीहाओ भणिय" ऐसा महानिशीथ सूत्र की साक्षी से, बारहवीं शती के सुविख्यात युगप्रधान श्रीजिन-दत्तसूरिजी ने 'उपदेशकुलक' (गा० २०-२६) में कहा है। (देखो अगरचंदजी नाहटा प्रकाशित 'युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि ग्रन्थ पत्रांक ६३) १९ सत्पुरुष—महात्मा २० भविष्य में होने वाले तीर्थंकर, २१ (उसी प्रकार भविष्य में होनेवाले) सामान्य केवली, उक्त अर्थवाची महंत शब्द को यहाँ ग्रहण किया गया है। २२ उनके २३ अविद्यमान काल में २४ साकार अथवा निराकार पदार्थ मे 'वे ये हैं', इसप्रकार अवधान करके स्थापन-निवेश करना उसे स्थापना निक्षेप कहते हैं, जैसे पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा को पार्श्व-प्रभु कहना, २५ भेदभाव रहित २६-२७ (स्थापना जो निमित्त कारण है उस) निमित्त कारण में कर्त्तापन का आरोपण करके, उनका ध्यान करने से ध्येय—स्वस्वरूप की प्राप्ति होती है। कर्त्तारोप के विना भक्तिभाव उल्लसित नहीं होता। उसी प्रकार देहादि परपदार्थों के प्रति अहं-ममत्व नहीं

घटता, इसी न्याय अपेक्षा से ईश्वर कर्तृत्व स्वीकार कर सिद्धान्तकारों ने भक्ति-मार्ग का उपदेश किया है। यह आत्म साक्षात्कार का सुखद उपाय है। २८ दो पदार्थों में से एक को गौण और दूसरे को प्रधान कर भेद अथवा अभेद के विषय में करने-जानने वाला एवं पदार्थ के संकल्प आरोप व अंश-ग्राही ज्ञान को नैगम नय कहते हैं। जैसे संकल्प उदाहरण—रसोई के लिये चावल वीनती हुई स्त्री को किसी ने पूछा—वहिन! क्या करती हो? वह कहती है मैं भात वना रही हूँ। यहाँ चावल और भात की अभेद विवक्षा है अथवा चावलों में भात का संकल्प है। आरोप उदाहरण—मित्रमण्डली में एक ने कहा—आगामी कल महावीर भगवान का मोक्ष-कल्याणक है। दूसरे ने कहा—पद्मनाभ स्वामी का है, यहाँ प्रथम कथक का वर्तमान काल में भूतकाल का, दूसरे का वर्तमान काल में भविष्य काल का आरोप पूर्वक कथन है। इसी आरोपित नैगम नय से जो हो गये हैं, होनेवाले हैं और विचरते हुए तीर्थंकरों तथा सामान्य केवलियों का उनकी प्रतिमा में अभेदपन आरोप करके ध्येय रूप से ध्याते हुए स्व स्वरूप प्राप्ति होती है। अंश उदाहरण—आत्मा के अनन्त गुणों में से एक सम्यक्त्व गुण प्रगट होने पर आत्म-साक्षात्कारता स्वीकार की जाती है। जिसमें एक अंश की प्राप्ति से सर्वांश का स्वीकार है। २९ निश्रागत चैत्य—व्यक्तिगत स्वामित्व का जिनमन्दिर। ३० अनिश्रागत चैत्य···विना व्यक्तिगत

स्वामित्व वाला सर्व साधारण जिनमन्दिर। ३१ उत्पत्ति विनाश रहित अनादि अनंत भंग से स्वाभाविक जिनमंदिर। ३२ मंगल चैत्य—व्यवहार प्रवृत्ति में भी स्वरूप जागृति सुरक्षित रखने के लिये प्रत्येक जैन गृहस्थ द्वारा ध्येय के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति से अपने गृहद्वार पर आलेखित की हुई जिनप्रतिमा। जिसकी अज्ञता के कारण वर्त्तमान मे प्रायः इस रीति का विच्छेद हो गया है। ३३ भक्ति चैत्य—श्री रावण की भांति ध्येय मे तदाकार चित्त से ध्यानारूढ होने के लिये एकान्त प्रशान्त निर्जन स्थान मे वनाये हुए जिनमन्दिर। इसीलिये गहन पहाडों के शिखर पर वर्तमान में उक्त चैत्यों का अस्तित्व है। ३४ जिनेश्वर की स्थापना, जिन प्रतिमा। ३५ ब्रह्मरंध्र में आसन जमाकर स्वरूप लीन होने पर जिसकी यह दशा हो जाय कि यह सजीव है या निर्जीव? इसकी परीक्षा मे श्वास रूधिरादि से शरीरादि का साक्षीत्व भाव यथार्थ भेदज्ञानी, चौथे से वारहवें गुणस्थानवर्ती अंतरात्मा। ३६ औदयिक भाव कर्मजनित शरीरादि को आत्मा मानने रूप परिणाम वहिरात्मता है। ३७ नाश। ३८ वहिरात्मभाव ध्वंश करके अन्तरात्म स्थिर स्वभाव से परमात्म स्वरूप को अपनी आतमा में अभेदलक्ष से ध्यान में लयलीनता ही आत्म अर्पण है। ३९ शुद्ध आत्मानुभवी, स्वरूप-लीनता मे सदा विचरणशील, देहधारी होने पर भी विदेही दशा प्राप्त महात्माओं की चरण सेवना में रहकर। ४० आलंवन सहित

४१ ध्येय रूप बनने के लिए ध्याता की प्रवृत्ति विशेप। ४२ जानूं ४३ चैतन्यमूर्त्ति, निज आत्म-प्रतिभास। ४४ अपना आलंबन (रूप निर्धारित कर उसमें लीन होना) ४५ दशमद्वार में सहस्रदल कमल पर रहा हुआ अचल अनुपम दिव्य प्रकाश। ४६ सहस्रदल कमल मकरंद-विस्रस चैतन्य रस की वृष्टि। ४७ (उस रसपान से व्याप्त अखण्ड मस्ती से स्व-स्वरूप) पुष्टता। ४८ श्रवणेन्द्रिय विषयातीत, ब्रह्मरन्ध्र में सहज उद्भूत अलौकिक मधुरतम ॐकार नाद, उस नादजन्य अनेकानेक राग-रागिणी मिश्रित, तालवद्ध विविध वाजित्र ध्वनि-ध्वनित, अगम अगोचर रेडिया। ४९ पूर्वोक्त कारणों से उद्भूत, शाता आशाता के अवेदन रूप अतीन्द्रिय सहज सुख। ५० पृथग्वर्त्ति समुद्भूत चैतन्यमूर्त्ति आत्म-प्रतिभास कर आत्मा में मिल जाना। ५१ आत्म प्रतिभास को प्रकट करने के लिए और उसे स्वरूप सम्मिलित करने रूप साधनाविशेप। जिसकी पूर्णता से आत्म प्रतिभास और स्वरूप की अद्वैतता हो जाय। ऐसा होने से जल कमलवत् अलेप निर्वंध दशात्मक सहज समाधि रूप, देह होते हुए भी विदेही दशा प्रगट होवे। ५३ कर्म-परलक्षीय परिणामों द्वारा जीव से जो किया जाय वह। उसके तीन भेद १ भावकर्म—अनादि अशुद्धोपयोग रूप विभावता से राग द्वेप मोह मे आत्मा परिणमन करे वह। २ द्रव्यकर्म उपर्युक्त आकर्पण से कर्मरूप वर्गणा का वंध हो वह। ३ नोकर्म—उस वर्गणा का पांच

शरीर रूप में परिणमन हो वह। ५४ आते हुए कर्मों को रोकना उसके दो भेद १ भाव ंवर-स्वस्वरूप स्थिरता से पुण्य-पापादि विकारी भावों को रोकना। २ द्रव्यसंवर—भावसंवर से जड़ कर्मों का अग्रहण। ५५ आत्मा से कर्मों को अलग करना। इसके दो भेद है, १—भाव निजरा-अखण्डानंद शुद्धात्म स्वभाव लक्ष के वल से स्वरूप स्थिरता की वृद्धि से अशुद्ध अवस्था का आंशिक नाश करना। उसका निमित्त पाकर जड कर्मों का आंशिक क्षरण होना, वह २-द्रव्यनिर्जरा। ५६ मोक्ष ५७ राजा।

—:—:—

(२०) भाव दीवाली स्तवन

सीवाणा

दिल मां दिवड़ो थाय, स्वपर समझाय, विभावने टाली;
हूं उजवुं पर्व दीवाली ॥ टेर ॥

अस्तित्व गुणे हुँ आत्म प्रभु, शुद्ध स्वपर प्रकाशक ज्ञान विभु,
मन वच काया थी जुदो, कर्म संग टाली··हुँ उज० ॥१॥
नित्यत्व गुणे हुँ अविनाशी, निर्मल चिन्मय निज गुणराशी;
अकृत्रिम सहज स्वरूपी, अखंड त्रिकाली··हुँ उजवुँ० ॥२॥
हुं शुद्ध वुद्ध सुख धाम महा! हूं स्वयं ज्योति परिमुक्त अहा!
'सहजानंद' कर्त्ता-भोक्ता, स्वरूप संभाली··हुँ उजवुँ० ॥३॥

(२१) दीपावली का आध्यात्मिक स्वरूप

ता० १६-१०-६०

मेरे दिल को दीया बना, चिद् ज्योति जला,
मिथ्या तम बाली,[१] मैं उजवूँ[२] पर्व दीवाली।
देखो चिद्-जड़ भिन्न भिन्न सत्ता, मेरी जड़-सत्ता-अहं-ममता।
हूँ स्व-पर-प्रकाशक ज्ञायकमूर्त्ति त्रिकाली … मैं …॥१॥
ये प्राप्य-विकार्य निर्वर्त्य-कर्म, व्यापक-व्याप्ये तत्स्वरूप-धर्म।
है अभिन्न कर्त्ता-कर्म-क्रिया प्रणाली…… मैं……॥२॥
हूँ कर्त्ता ज्ञान-समाधि का, अकर्त्ता जड़ निमित्तज-जड़ का।
शुभ अशुभ भाव और जड-कर्त्तव्य को टाली… मैं ॥३॥
भोक्ता-पद भाव्य-भावक योगे, हो ज्ञेयनिष्ठ सुख दुख भोगे।
अब ज्ञाननिष्ठ हो सुख दुख बुद्धि हटा ली… मैं ॥४॥
भोगी न कभी जड भोगों का, मैं भोगी ज्ञानानंद-रस का।
अहो ! भेद-विज्ञाने प्रगटी अनुभव लाली… मैं …॥५॥
थी अज्ञाने संसार-दशा, दृग-ज्ञान-चरण से मुक्त दशा।
'सहजानंदघन' निज ज्योत में ज्योति मिला ली… मैं …॥६॥

---

१ जलाकर, २ उद्यापन करता हूं।

(२२) अंतरंग-पूजा-रहस्य

२३-८-६२

पद

नित प्रभु-पूजन रचावूँ… मैं घट में (२)
सद्गुरु-शरण-स्मरण तन्मय हो, स्वपर सत्ता भिन्न भावूँ… मैं० १
प्राण-वाणी-रस मंत्र आराधत, स्वरूप लक्ष जमावूँ… मैं० २
स्व-सत्ता—ज्ञायक—दर्पण में, प्रभु मुद्रा पधरावूँ… मैं० ३

षट् चक्र-क्रम भेदत प्रभु को, मेरुदण्ड शिर लावूँ·· मैं० ४
कमल सहस्रदल-कर्णिका-स्थित, पाण्डुशिला पर ठावूँ·· मैं० ५
ज्ञान सुधाजल सिंचत-सिंचत, प्रभु सर्वंग नहलावूँ·· मैं० ६
ज्ञान-दीपक निज ध्यान-धूप से, आठों कर्म जलावूँ मैं० ७
हर्षित कमल-सुमन वृत्ति चुन-चुन, प्रभु पद पगर भरावूँ·· मैं० ८
दिव्य गंध प्रभु अक्षत अंगे, लेपत रोम नचावूँ·· मैं० ९
सहजानंद रस तृप्त नैवेद्यें, द्वन्द्व दुखादि नसावूँ मैं० १०
निराकार साकार अभेदे, आत्म सिद्धि फल पावूँ··मैं० ११

(२३) प्रभु तेरे अनंत नाम

भा० सु० १५ सं० २०२५ हम्पी
२५-९-६९

प्रभु तारा छे अनंत नाम, कये नामे जपुं जपमाला।
घट-घट आतम राम, कये ठामे शोधुं पग पाला॥
जिन-जिनेश्वर देव तीर्थंकर, हरिहर बुद्ध भगवान ··कये०
ब्रह्मा विष्णु महेश ईश्वर, अल्ला खुदा इन्सान··कये० १
अलख निरंजन सिद्ध परम तत्व, सत् चिदानंद ईश··कये०
प्रभु परमात्मा परब्रह्म शंकर, शिव शंभु जगदीश·· कये० २
अज अविनाशी अक्षर तारक, दीनानाथ दीनबंधु··कये०
एम अनेक रूपे तुं एक छो, अव्याबाध सुख-सिंधु·· कये० ३
परमगुरु सम सत्ताधारी, सहज आत्म स्वरूप··कये०
सहजात्म स्वरूप परम गुरु ए, नाम रटुं निज स्वरूप··कये० ४
मंदिर मस्जिद के नहीं गिरजाघर, शक्ति रूपे घट मांय ··कये०
परमकृपालु रूपे प्रगट तुँ, सहजानंदघन त्याय··कये० ५

(२४) प्रभु-मिलन स्तवन

[ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरोरे

कहो सखि। प्राणेश्वर केम भेटीअे रे ? प्रियतम तो वीतराग,
अगम देश जड अलखपुरे वश्यारे, रूपादिक करी त्याग· ·कहो० १
तार टपाल के फोन पहोंचे नहीं रे, स्टीमर रेल विमान,
प्होंचे न हरि-हर-देव संदेशडो रे, थाक्या अति मतिमान· ·कहो० २
हारया विविध धर्म-मत अनुसरीरे, विविध स्वाग-व्रतधार;
होम-हवन-तप-जप करीकरी पच्या रे, लह्यो न मिलन-प्रकार· ·कहो०३
चारे खूंटे सौ तीरथ फर्या रे, नाह्या यमुना गंग,
वेद-वेदाग-पुराण कंठे कर्यारे, पण सौ विफल तरंग· ·कहो० ४
सुमति कहे सखि श्रद्धा साभलो रे, प्रियतम हृदय मझार,
राग तजी चिद् धातु शुद्ध करोरे, स्वामि प्रकृति अनुसार· · कहो० ५
उपयोगे उपयोग एकत्वता रे, ए पति मिलन प्रकार;
अभिन्न-संगम चेतन-चेतना रे, सहजानंदघन सार...कहो० ६

(२५) आर्त्त विनंती

राग—कनडो त्रिताल

हो प्रभुजी ! मुझ भूल माफ करो
नहीं हुं योगी नहीं हुं भोगी, तारो दास खरो हो प्रभुजी
नहीं हुं रोगी नहीं हु निरोगी, मारी पीड़ हरो ··· हो प्रभुजी
तुझ गुण पागी सुरता जागी, नाथ-हवे उद्धरो ··· हो प्रभुजी
दर्शन दीजे ढील न कीजे, दिल नुं दर्द हरो ··· हो प्रभुजी
अमी रस क्यारी मुद्रा तारी, निशदिन नयन तरो · हो प्रभुजी
आवो श्वामी मुझ उर माही, सहजानन्द भरो ···हो प्रभुजी

(२७) श्री जिनदत्तसूरि चरित अष्टपदी

(रचनाकाल—सं० १९९८)

—: दोहा :—

शासननायक वीर जिन, गणधर गौतम स्वाम ।
बोधि ज्ञान दाता गुरु, करके तास प्रणाम ॥ १ ॥
प्रभाविक अड़ शास्त्र मे, उपदेशे वागीश ।
भद्रबाहु आदिकभये, वैसे दत्त सूरीश ॥ २ ॥
उपगारी गुरुराय को, पद्य चरित वनाय ।
संक्षेपे श्रोता सुनो, भक्ति भाव जमाय ॥ ३ ॥

राग—भैरवी

श्री जिनदत्तसूरि सुगुरुवर (२)
युगप्रधान धुरी सुगुरुवर श्रीजिन० ॥ आकणी ॥
हुवड़ कुल ज्ञाति दीपक जो, मंत्रीश्वर वाछग श्रावक वो ;
धवलक रम्य पुरी ··· सुगुरु० ॥ १ ॥
वाहड़देवी उदरे आये, ग्यारे वत्तीसे (११३२) जन्म निपाये ,
सोमचंद्र नूरी ··· सुगुरु० ॥ २ ॥
खरतर विरुदी जिनेश्वरसूरि, धर्मदेव पाठक हजूरी ,
पावे ज्युं लोह तुरी ... सुगुरु० ॥ ३ ॥
सोमचंद्र वैरागे भीना, ग्यार इकताले (११४१) दीक्षित कीना ,
पाई सिद्धान्त भूरी ... सुगुरु० ॥ ४ ॥

दोहा

अंगोपांगाध्ययन कर, भये गीतारथ आप ।
मिथ्यामत तम भेद ने, स्याद्वाद शर चाप ॥ १ ॥
रची वृत्ति नव अंग की, अभयदेवसूरीश ।
जिनवल्लभ तस पाट पे, भये परम योगीश ॥ २ ॥
ग्यारह गुणहत्तर (११६९) समें, पटठावें गच्छ ईश ।
चउविह संघ चित्तौड़ में, श्री जिनदत्तसूरीश ॥ ३ ॥

राग—आशावरी

भये गुरु अतिशय महिमाधारी, पाई शासन रखवारी । भये० ।
चित्तौड़ अरु विक्रमपुर नयरे, वज्र स्तंभ मन्दिरो ।
मंत्र पोथी ग्रही निज शक्ते, जीते बावन वीरों ॥ भये० ॥ १ ॥
जोगणिया चौसठ व्याख्याने, गुरु छलने कु आवे ।
खीली गई तव शीश नमावे, वर सप्तक वक्षावे ॥ भये० ॥ २ ॥
सिंधु पंच नदी पंच पीरों, पंथिक जन दुख कारी ।
आतमवले निज दास वनाये, ऐसे गुरु उपकारी ॥ भये० ॥ ३ ॥
पक्खी पडिकमणे अजमेरे, जगमग विजली आवे ।
पात्र तले स्थंभी गुरुवर ने, वरदेई अदृश थावे ॥ भये० ॥ ४ ॥
युगप्रधान इच्छुक अंवड़को, अंविकाने लिख दीना ।
युगप्रधान जिनदत्तसूरीश्वर, सच्चारित्रतप पीना ॥ भये० ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥

पादकमल सेवे सदा, देव देवी तस ईश ।
मरुभूमि में कल्पसम, जय जिनदत्तसूरीश ॥ १ ॥
मरु मालव मेवाड अरु, पंजाव सिंधु देश ।
मगध मिथिला गूर्जरे, विचरे मुल्क अशेप ॥ २ ॥

राग-आशावरी

समरथा संकट टारे, सूरीश्वर । स० ।
चड्नगरी ब्राह्मण निज चैत्ये, मरी गौ रख दीनी ।
व्यंतर द्वारा वो गुरुवर ने, शिव पिंडाधीन कीनी ॥ सूरी० ॥ १ ॥
विक्रमपुर माहेश्वरियों को, हैजा रोग सताया ।
जैन वनाकर कष्ट मिटाया, मिथ्या तिमिर हटाया ॥ सूरी० ॥ २ ॥
भनशाली के गोत वचाया, सेवक जहाज तिराया ।
कुष्ट क्षयादि कइक रोगी, गुरु कृपाऽमृत पाया ॥ सूरी० ॥ ३ ॥

दोहा

मंडोवर जालोर अरु, रत्नपुरा नरेश ।
लौद्रव जैसलमेर अरु, चन्देरी पुरेश ॥ १ ॥
अम्बागर पुर राजवा, वोधे भविक अनेक ।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य मिल, सहस तीस लख एक ॥ २ ॥
सर्व-देश-विरति धरा, कइक समकितवंत ।
जैन संघवृद्धि करा, उपगारी भगवंत ॥ ३ ॥

राग—वैर वैर नही आवे

अजमेर नगरे आवे, युगवर । अज० ।
शेपायु निज ज्ञाने जानी, अंतिम अनशन ठावे । युग० । १ ।
वार इग्यारे (१२११) देवशयनी* दिन, सुधर्म कल्पे जावे ।युग०।२।
टक्कलक नामक विमाने, सह ऋद्धिक सुर थावे । युग० । ३ ।
एक अवतारी कारज सारी, मुक्ति नगर मे जावे । युग० । ४ ।
ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ब्लूँ गुरु नामे, जपते दर्श दिखावे । युग०। ५ ।
दो न्यूना दो सहस (१९९८) विक्रम, गुरु वियोगदिन आवे ।युग०।६।
श्रीजिनरत्नसूरि चरणानुज, 'भद्र' गुरु स्तव गावे । युग० । ७ ।

---

* आपाढ शुक्ल ११

(२८) अकबर-प्रतिबोधक दादा श्री जिनचंद्रसूरि स्तवन

चंद्रसूरि गुरुदेव, दादाजी अद्भुत योगी (२)
अद्भुत योगी, विभाव वियोगी, चंद्र० दादाजी.
श्रीवंत शाह सिरियादे दंपतिना, कुल दीपक वीत रोगी,...
वाल वये गुरु आप यथा छो, गच्छपति पद भोगी ... दा० १
राय राणा कंइ मंत्रीओ पूजे, कंइ देवो पद भृंगी दा०
अहिंसा रंगे अति रंगायो, अकबर आप प्रसंगी ... दा० २
आपाढ़ी अट्ठाइ पडह अमारी, अभयदान अभंगी ... दा०
युगप्रधान पद अकबर आपे, दिव्य स्वरूप अनंगी ... दा० ३

साधु विहार बंध कीधो सलीमे, कीधा साधु जेल भंगी · दा०
बोध्यो तेने करी संघ तीर्थो नी, रक्षा गो मच्छादि अंगी·· दा० ४
कडीआ[२] पींचा[३]दि जैनो बनाव्या, रत्नत्रयी ना रंगी.. दा०
भद्र श्रमण वे हजारो मूकी ने, नाथ थया सुर संगी दा० ५

---

१ प्राणी २ गोत्रनु नाम, अमदावाद मा छे ओसवालो ६ गोत्रनुनाम ।

(२९) मंगल-प्रार्थना

ॐ ह्रीँ दत्त कुशल चंद्र सूरि (२)
युगप्रधान शक्ति भूरी, ध्यावू दादा ! सहज नूरी,
भिन्नता विभाव चूरी, करो संघ विघन दूरी ॐ० १
डाकिनी शाकिनी प्रेत भूत, यक्ष राक्षसो विद्युत,
करत दूर काल दूत, समरत नाम मंत्र युक्त. ॐ० २
अमने युगप्रधान आपो, शासन ना सहु संकट कापो,
श्री जिनरत्नत्रयी आलापो, "भद्र" मंगल घर घर थापो ॐ० ३

(३०) शिक्षा गुरु स्तुति

(१)

मेरे गुरु रटें मंत्र नवकार, यही है चौद पूरव का सार,
अरिहंत सिद्ध सूरि पाठक मुनि, परमेष्टि अविकार ;
पाचों पद में सार आतमा, साध्य-साधक सुविचार ··मेरे० १
ज्ञायक लक्षे आत्मभावना, भावत उघडे द्वार,

रटत मंत्र कहैं छादन ज्यों, लोहे लोहा धार.. मेरे० २
द्वादशांगी मध्य सार यही ले, शेष प्रवृत्ति निवार ,
मध्यमा वाचा जपे जाप नित्य, करपल्लव क्रम प्यार.. मेरे० ३
शान्त दान्त गम्भीर धीर मेरे, विद्यागुरु मद टार ;
पाठक लब्धि गुरु-पद वंदत, सहजानंद अपार· ·मेरे० ४

(२)

१५–१०–६०

अहो ! म्हारा उपाध्याय भगवान् !!
करुं गुरु लब्धि तणा शा गान !!!
कृपा करी आ रंक बाल ने, दीधुं सुविद्या दान ;
जे विद्यावले टली अविद्या, प्रगट्युं आतमज्ञान· ·अहो० १
काव्य कोष छंद न्याय व्याकरण, अलंकार ग्रन्थ ज्ञान ,
भणी-भणाव्या मात्र थकी तो, थाय न आत्मकल्याण अहो० २
द्रव्य-भाव-नोकर्मत्रयी थी, भिन्न स्वरूप निदान ;
ग्रन्थी भेदन स्व-संवेदन, एज सुविद्या-प्राण· ·अहो० ३
सिद्धसमी ज्ञायक-वेदी स्थित, ज्ञानमूर्ति ओलखाण ,
दृशि-ज्ञप्ति-स्थिति रत्नत्रयी प्रभु, तन-मंदिर रहे ध्यान · अहो० ४
ए सघलो उपकार आपनो, सहजानंद निधान ;
प्रत्युपकारे हुँ असमर्थ करुं, भद्र-हृदय थी प्रणाम अहो० ५

राजपुर (देहरादून)
१६-१०-६०

(३२) दीक्षा-शिक्षा गुरु स्तुति

वन्दना वन्दना वन्दना रे ! गुरु 'रत्न लब्धि' पद वन्दना,
वन्दता थाय मद-मर्दना रे ! गुरु 'रत्नलब्धि' पद वन्दना··
पूर्व संस्कार वश मोहमयी मा, थइ विरक्ति उद्भासना; रे गुरु०
जागी लब्धि-पंच करण विशुद्धि, काल क्षयोपशम देशना; रे गुरु० १
मित्रो गया 'मोहन' गुरु शरणे, लग्न पूर्वे तजी यौवना, रे गुरु०
आज्ञा मल्ये गया 'राज' * गुरु चरणे, थया निर्ग्रंथ वस्त्रे सज्जना, रे गुरु० २
साध्वाचार प्रकरण व्याकरण कोष, ग्रन्थो भण्या काव्य छंदना; गुरु०
आगम-गम-ग्रही जप-तप पूर्वक, पठन-पाठन-वृत्ति संदना, रे गुरु० ३
विभिन्न देशे उग्र-विहारे, कर्त्ता सद्धर्म प्रभावना, रे गुरु०
साधु-श्रावक व्रत पाले-पलावे निच्छल निश्चल भावना, रे गुरु० ४
संघे ठव्या 'सूरि-पाठक-पद' पर, तोये जरा अभिमान ना; रे गुरु०
नाम राख्या 'जिनरत्नसूरी' अने, 'लब्धि पाठक' छे धी-धना, रेगु० ५
दीक्षागुरु देह त्यागी थया सुर, भवनपति मंद-वासना; रे गुरु०
शिक्षागुरु विद्यमाना आक्षेत्रे, भव-भीरु भव्य शासना, गुरु० ६
दीक्षा-शिक्षा गुरु म्हारा पूज्योए, एथी करूं अभिवादना, रे गुरु०
भद्रभावे उपकार स्तवी लहुं, सहजानंद-पद व्यंजना, रे गुरु० ७

---

* राजमुनिजी

(३३)

ता० १८-१०-६०

(राग-सारंग)

गुरू समता-रस भण्डार है (२)

अपराधी अपराध करे यदि, क्रोध न निरहंकार है , गुरू० १
चाहे कितनी भक्ति करो कोई, लोभ प्रति तिरस्कार है ;
व्यक्त करें अपनी कमजोरी, दंभ प्रति धिक्कार है , गुरू० २
विद्यादाने अप्रमत्त कोई, आवो आप तैयार है ;
'कम खाना और गम खाना' इस उक्ति के आधार है॰॰गुरू० ३
निन्दा करो चाहे स्तुति करो कोइ,उदासीन अविकार हैं ;
उपाध्याय लब्धिमुनि ऐसे, सहजानंद-पद पा रहे॰॰गुरू० ४

(३४)

मेरे गुरु पाठक-लब्धि निधान, संस्कृत भाषा के विद्वान ,
चाहे कोइ किसी भी मत के हो, पढावें सबको हर्षित हो॰॰॰१
समय ले चाहे जो जितने, पढ़े साधु-साध्वी गृही कितने ;
होय यदि बुद्धि-जड़ तोभी, जिजक नहीं तुपित होत सोभी॰॰॰ २
पद्यमय करी ग्रन्थ-रचना, चरित्रो श्रीपालादि घना ,
स्तुति स्तोत्रादि कृतियां सभी, सरलतम पढ़ो चाहे कोई भी ॰॰३
मैं भी पढ़ा इन्हीं के पास, न देखी प्रतिसेवा की आश ,
जिन्हें हैं अति भद्र परिणाम, उन्हें हो सहजानंद प्रणाम॰॰४

(राग-कान्हड़ो)

हंसा। मंडनपुर[1] तूं जा जा, जा कर लब्धि गुरु पद पूजा
पाद-प्रक्षालन क्षीर-सागर से, शुचि हो क्षीरोदक ला;
गन्धोदक ले पद्मद्रहे जा, पद्म सहस्र-दल ले आ··हंसा० १
रत्नद्वीप से रत्नो लाकर, भाव-शुद्ध ज्ञान-पूजा,
स्वस्तिक हेतु मानसरोवर, ला मुक्ताफल ताजा··हंसा० २
आत्मार्थे वोधामृत-पय पी, तूँ कर तृप्त कलेजा,
ज्ञेय भिन्न ज्ञानमूर्त्ति सो-अहं सोहं रटे जा··हंसा० ३
सोहं हंसो रटत रटत कर, देहाध्यास इलाजा,
मोह-क्षोभ मिटा हो अपना, सहजानंद पद राजा··हंसा० ४

---

१ मांडवी

(३६) विद्यागुरु-उ० लब्धिमुनि-स्तुति

ता० २६-११-६०

[छन्द. शार्दूलविक्रीडितः]

सत्यत्यागतपः क्षमासुमृदुतासंतोपशौचार्जव-
ब्रह्माकिंचनतागुणाः स्वसुखदा येष्वाश्रयन्ते सदा।
येपांज्ञाननिधौ निमज्जनतया प्राप्ता मया देवगी.,
कामक्रोधमदादिदोप विपदा येभ्य सुदूरे गता. ॥ १ ॥
श्रीसङ्घेन सुपूज्यपाठकपदं येभ्य. प्रदत्तं शुभं,
श्रीसङ्घश्च चतुर्विध. प्रमुदितो यैः पाठित. शासित.।
श्रीमद्राजमुनीश्वराः सुगुरवो यान् दीक्षिताम् शान्नि(षुः)तान्

सद्वैराग्यवशेन यौवनवये ये दीक्षिताः शिक्षिताः ॥ २ ॥

वन्धुश्रीजिनरत्नसूरि सहिताः सद्दृष्टिज्ञाने स्थिताः,

पंचाचार विलास चारुचरिता आजन्मशीलव्रताः।

मोहक्षोभविहीन धर्मधनिका वश्येन्द्रिया योगिनः,

वात्सल्ये जननीप्रवीण हृदया भट्टारकाः पण्डिता. ॥ ३ ॥

अङ्गोपाङ्ग जिनेन्द्र वोधपयसा तृप्ताः प्रपुष्टा गुणैः,

श्रीपालादिचरित्र पद्य रचना कृत्वाऽपि ये. निर्ममाः।

आप्ता उन्नतदेहिन' सुरगिरा आजानुवाहा'× मुदा,।

गम्भीरा. कवय' प्रसन्नवदना गोधूमवर्णा. प्रियाः ॥ ४ ॥

संवेगेन सुमुक्तिमार्गपथिकाः श्रद्धास्पदाः शिक्षकाः,

अर्हन्मार्गगगच्छके खरतरे लब्धप्रतिष्ठा. स्थिराः।

श्रीमल्लब्धि मुनीशपाठकवरा भक्त्या नतोऽहं सदा,

वन्दे तान् मम भद्रसिद्धि सहजानन्दाय विद्यागुरून् ॥ ५ ॥

पंचभिर्विशेषकम्

×"प्रवेष्टो दोर्दोषा वाहु-र्वाहा वाहो भुजो भुजा ॥१६७॥"

[शब्द रत्नाकर० का० ३]

(३७) पर्यूषण स्तवन

सं० १९९७ वंबई

दोहा—शासनायक वीजिन, गणधर गौतमस्वाम ।
युग प्रधान जिनदत्त गुरु, करीने तास प्रणाम ॥१॥
अर्थभेद दिनमान वली, आचरणा अधिकार ।
पर्व पजुसण नो कहुं, हेयाहेय विचार ॥२॥

ढाल—भक्ति हृदयमां धारजो रे, ए राग

पर्व पजुसण वर्णना रे, भेद प्रभेद प्रसार ।
गणधर पूर्वधरो तणा रे, आगम ने अनुसार ।
हो भविका ! मिथ्या भ्रमण निवारवा रे,
सत्यासत्य विचारवा रे, सुणजो सहु नरनार ॥१॥
वर्षाकाले मुनिवरू रे, चौमासो एक ठाम ।
जीवदया कारण वसेरे रे, पज्जुसण तस नाम ॥हो भ० ॥२॥
गृहिअज्ञात ने ज्ञात थी रे, भेद युगल तस कीध ।
अनिश्चित निश्चित पणे रे, तेहनो अर्थ प्रसिद्ध ॥हो भ०॥३॥
प्रथम भेद दो भेद थी रे, वीस पचास प्रमाण ।
सौ दिन ने सित्तेर नो रे, वीजे काल पिछाण ॥हो भ०॥४॥
आषाढी चौमासी थी रे, संवच्छरी पर्यंत ।
अधिक मास जे वर्ष मा रे, दिवस वीस लहंत ॥हो भ०॥५॥
सौ दिन पाछल कार्त्तिकी रे, चौमासी पड़िकंत ।
चंद्र संवच्छर जाणीए रे, पचास सित्तेरवंत ॥हो भ० ॥६॥

शिल्य कहे अहो गुरुवरा ! रे, वीस दिवस केम लीध ?
गुरु कहे विनयी ! सुणो रे, तेह कहुं शुभ विध ॥हो भ०॥७॥
'सूर'-'चंद'-'जंवूपन्नत्ति' ए रे, 'ज्योतिष्करंडक' सार ।
'समवायागादि' दाखवे रे, अधिकमास अधिकार ॥हो भ०॥८॥
पाच वरस जुग एकमा रे, वासठ पुनमे असास ।
तिहां अभिवर्द्धित तणा रे, पक्ष छविस तेरे मास ॥हो भ०॥९॥
अधिक मास सहित गण्या रे, वीस दिवस श्रुत नाणी ।
कल्पनिर्युक्ति चूर्णिए रे, ए अधिकार व खाणी ॥हो भ०॥१०॥
वृद्धि पोष अषाढनी रे, जैन टिप्पण अनुसार ।
तेह विच्छेदे तिण समे रे, श्रुतधर निश्चितकार ॥हो भ०॥११
तदनुसारे पचास नी रे, व्यवस्था इण काल ।
अभिवर्द्धित तणी अछे रे, अनुपम मंगल माल ॥हो भ०॥१२
नहि कल्पे लल्लंघवी रे, पचास पर एक रात ।
अंदर कल्पे कारणे रे, कल्पसूत्रे सुविख्यात ॥हो भ० ॥१३॥
समवायागे पचास ने रे, सित्तेर दिन जो लीध ।
चारमास ने आश्रिता रे, तास टीकाए कीध ॥हो भ० ॥१४॥
पर्व ए नहि मास आश्रितो रे दिवस आश्रित जाण ।
भाद्रव नाम न मूल मां रे, एहिज परम सेनाण ॥हो भ०॥१५॥
एंसी दिन सवच्छरी रे, अधिक ने फल्गु मास ।
छव्विस ना चोविस वदे रे, केवल मिथ्या भास ॥हो भ०॥१६
कर्माधीन ते वापड़ा रे, तेहशुं न कीजे द्वेष ।
जिन वचने दृढतर रही रे, लहीए तत्त्व विशेष ॥हो भ०॥१७॥

सूत्रमां जे विधि दाखवी रे, ते करे जेह प्रमाण।
जिन विरहे इण कालमा रे, तेह आराधक जाण ।।हो भ०।।१८।।
भेद मतातर ना तजी रे, सजी गुण ग्राही आचार।
समदृष्टिए एहनो रे, करजो अर्थ विचार ।।हो भ० ।।१६।।
कलश-भयठाँण[७]नवे[९]निधि[१]शशि[१]सवच्छर कूहू माघ निशाकरे।
पर्वाधिराज पजूसणा नी वर्णना सुवापुरे ।।
जिन आणारंगी गच्छ खरतर रत्नत्रयी भूषण प्रदा।
शमीदमी "श्रीजिनरत्नसूरि" छात्र "भद्र" श्रुणे मुदा ।।२०।।

(३८) श्री सिद्धचक स्तवन

सिद्धचक्र ही आधार, भविकजन !
मुक्ति मारग संस्थापक अरिहंत, तारक जन संसार। भ०।।१।।
अनंत सुखमयी सिद्ध आराधत, घाती अघाती संहार। भ० ।।२।।
छत्तिस गुणगण सज्ज आचारिज, चउविह संघ रखवार। भ०।।३।।
दायक निर्मल ज्ञान सुपाठक, आगम तत्त्व प्रचार। भ० ।।४।।
पंच महाव्रत पालक मुनिवर, पुद्गल मूर्च्छा निवार। भ० ।।५।।
विशुद्ध क्षायिक दर्शन पावत, तृतीय भवे निस्तार। भ० ।।६।।
लोकालोक अनंत प्रकाशक, ज्ञान परम पद सार। भ० ।।७।।
संजम ग्राहक षट खंड त्यागी, चक्री वली अणगार। भ० ।।८।।
काष्ठ पावक ज्युं कर्म अरु तप, आतम निर्मल अविकार।भ०।।६।।
इन नवपद को ध्यान यथाविधि, वाँछित सिद्धि दातार।भ०।।१०।
"श्रीजिनरत्न" त्रयी प्रगटावत "भद्र" तया भवपार। भ० ।।११।।

(३९) आत्म-सिद्धि मंत्र

खण्डगिरि विजयादशमी ३-१०-५७

(राग-कान्हडो)

परमगुरु ॐ सहजात्म स्वरूपए, जपुँ मंत्र सदाय अनूप रे.. प०
परम कृपालु देव गुरु राजे, म्हेर करी मुझ उपरे .
छिन्न परम्परोद्धार करी ने, वक्ष्यो मंत्र दधि-तुप रे.. प० १
परमगुरु ए जोयो जाण्यो, अनुभव्यो निज रूप रे ;
मान्य करूं छुँ प्रगटो तेहवो, म्हारो आतम भूप रे.. प० २
मान्य अमान्ये हूँ छुं स्वाधीन, अन्य तजूं भ्रम कूप रे ,
संते मान्यु तेज प्रमाण्युं, श्रद्धा सम्यक् रूप रे० प० ३
कंइ नहीं जाणु मंद मति तोय, अन्य विकल्पे चुप रे ,
ज्ञान-पवन-मन स्थिर करी ध्यावुं, सहजानंदघन स्तूप रे.. प० ४

(४०) पराभक्ति पद

रत्नकूट-हम्पी, शरदपूर्णिमा २०१८

(शरद पूनम नी रातडी)

शरद पूनम संध्या पछी चढ्यो चेतन-चन्द्र आकाश रे
भक्ति नो रंग लाग्यो रे...

रंगलाग्यो रंगलाग्यो रंगलाग्यो, रोमेरोमे जाग्यो उल्लास रे...भक्ति०१
मिथ्याधकार दशा टली, घट प्रगट्यो सर्वांग प्रकाश रे...भक्ति०
प्रसरी ज्या चिन्मय चादनी, थयो पंकज वन विकास रे.. भक्ति० २

सहस्र दल-कमलासने प्रभु, आवी विराजे खास रे…भक्ति०
अनुभव वंशी वगाडतां आयो, कृपालुदेव प्रतिश्वास रे…भक्ति० ३
श्रद्धा-सुमति-शुद्ध चेतना मली, दौड़ी आवे प्रभु पास रे…भक्ति०
वृत्ति-गोपी सौ टोले मली रमे, परम कृपालु सह रास रे…भक्ति४
भेद विज्ञान दंडी-नाचे सौ, भूली ने देहाध्यास रे…भक्ति०
सहजात्मस्वरूप परमगुरु, धून लागी भागी विष-प्यास रे… भक्ति० ५
चेतन चेतना श्रद्धा सुमति वृत्ति, थया अभिन्न स्ववास रे…भक्ति०
असंग आत्मस्वरूप मा सध्यो, सहजानंद विलास रे…भक्ति०६

(४१) राज-वाण

१६-२-६२

राज-वाण वाग्यां होय तेज जाणे
ओल्या पटेलिया शुँ पिछाणे…राजवाण…
सोभाग्यभाई ने सोसरां वाग्यां, भाग्युं भरम तेज टाणे :
नदी सूरज अने ज्ञानी साक्षीअे,लीधुं शरण मोज माणे…राज १
डुंगरभाई नुं सिद्धि-गरव गयुँ, गाम फेरवी घर आणे :
अंबुभाई नुं चुरसुं चुकावी, टाल्युं मोती-मद वाणे…राज २
रोता वाल्या रालज पादर थी, लल्लुजी पग अणवाणे .
देवकरण नी देव-उठनी करी, राज नी गत राजजाणे…राज ३
राजवाणो ना तीक्ष्ण घा खमे, भमे न ते भव खाणे :
जवले जाणे कोई राजवाण महिमा, सहजानंद वखाणे…राज ४

(४२) राज-पद

२८-५-६२

[ढव-भमरिया कुवा ने काठड़े…]

अहो ज्ञानावतार कलिकाल ना हो राज!

तरी बेठा निश्चिंत महाराज रे;

भवना समुद्र ने काठड़े… १

जिनमार्ग बतावी जम्बु-भरतमा हो राज,

लह्यो महाविदेह जिन-साज रे…भवना…२

छुं दासानुदास हुं ताहरो हो राज,

अने म्हारो तुँ छो सिरताज रे…भवना…३

हे देवानंदा-नंद ! सांभलो हो राज,

हुं आप वीती कहुं आज रे…भवना…४

मैं लगनी लगाडी तारा प्रेमनी हो राज,

सौ तजी लोक लाज रे…भवना…५

वली करी अखंड तारा स्मरण ने हो राज,

स्थिर थयो तारा भक्ति-जहाज रे…भवना…६

अहिं 'हंम्पी' मांडी तारी हाटड़ी हो राज,

तारो हुं छुं मुनीम कविराज रे… भवना ७

देवुं लेवुं अनादि संसार नु हो राज,

सौ पतवी रह्यो सह व्याज रे…भवना… ८

चालु प्रेमे कृपालु तारी वाटड़ी हो राज,

एक साथी उत्तम हंसराज रे…भवना…९

तेथी ज्ञानी नर-देव सौ राजी छो हो राज,
पण अंधी दुनिया नाराज रे…भवना…१०
मने परवा नथी अंध जगतनी हो राज,
भले वंदे के करे निंदाज रे…भवना…११
रोमे-रोमे गुंजे मंत्र ताहरो हो राज,
ध्वनि अनहद संगीत-साज रे…भवना… १२
कथुं प्रेम-कथा एक ताहरी हो राज,
जाउं भूली वीजा काम काज रे…भवना…१३
शेष आयु वीतावी तारी भक्ति मा हो राज,
आयु अंते आवीश तुझ पाज रे…भवना…१४
त्यां पूण स्वरूप पद पामी ने हो राज,
सहजानंद सिद्ध स्वराज रे…भवना…१५

(४३) श्री सद्गुरु राज प्रार्थना

राग-मारी झुंपड़िये

आपो आपो हो गुरुराज! कृपालु देवा !!
आपो आ रंक ने आज, निज पद सेवा, आपो०
प्रत्यक्ष-महावीर कलियुग केवली, योगिजन अधिराज…कृ० १
ज्ञानावतार करुणा-रस-सागर, भव्य भवोदधि जहाज…कृ० २
भक्त वात्सल्य थी भक्ति आपी ने, तार्या प्रभु श्री लघुराज… कृ० ३
सोभाग्यमूर्त्ति सौभाग्यचन्द्र ने, आप्युं समाधि सुख साज…कृ० ४
उद्धर्या जुठाभाई अंबाल…लादि, कीधा क्षायिक सुख भाज…कृ० ५

हुं पण आव्यो आप दरबारे, नाथ दासत्व ने काज ·कृ० ६
छुं तो अधमाधम तो पण आपनों, शरणागत महाराज··कृ० ७
रिद्धि सिद्धि नहीं मांगुं तारक! हूं, ए तो जड़ादि अखाज···कृ०८
सेवना फल नहिं मांगुं तारक हूं, मांगुं न इन्द्र नर ताज कृ० ९
निष्काम भक्ति माग्ये स्वामी थी, सेवक ने शी लाज ·कृ० १०
छे वशवर्त्ती भक्ति परा ए, सहजानंद समाज···कृ० ११

(४४) गुरु-महिमा पद

जे शिर परमकृपालुदेव, तेने शुं करसे संसार
समरथ साहिब शरणुं लेतां, शो जड कर्म नो भार।
जड निमित्तज रागादि विभावो, टके न वण आधार।जे०।१।
क्षण स्थायी तज-जले विखरतां, लागे केटली वार।
त्रिविध करम जाल मुक्त थवासे, सहजानंद पद सार।जे०।२।

(४५) अनुभव पद

१-८-७३

सफल थयुं भव मारूं हो कृपालु देव!
पामी शरण तमारूं हो कृपालु देव!
कलिकाले आ जम्बू भरते, देह धर्यो निज-पर-हित शरते;
टाल्युं मोह अंधारूं हो कृपालु० १
धर्म ढोंग ने दूर हटावी, आतम धर्म नी ज्योत जगावी
कर्युं चेतन जड़ न्यारूं हो कृपालु० २
सम्यग् दर्शन-ज्ञान-रमणता, त्रिविध कर्म नी टाली ममता
सहजानंद लह्युं प्यारूं हो कृपालु० ३

(४६) प्रेरणा

चै० सु० १५।२०२० ता० २७-४-६४

अहो ज्ञानावतार गुरुराज ना हो लाल, सौ केड़ कसी सज्जथावरे,
आत्म स्वरूप आराधवा ;
आजड़ स्वरूप जंजाल मा हो लाल, केम अटकी रह्या छो सावरे०
१ आ०
आ काले कंटाला मार्गने हो लाल, कर्युं स्वच्छ कृपालु रावरे० आ०
चाली चिह्नो करथा संकेत ना हो लाल, महा भाग्ये मल्योए दावरे०
२ आ०
छो बीजा उन्मार्गे चालता हो लाल, अनेमाने सन्मार्ग प्रभाव रे०आ
तेथी डगिए नहिं राजमार्ग थी हो लाल, चालो चालो महानुभाव
रे आ० ३
छे मोक्ष ने मोक्ष उपाय छे हो लाल, आ काले ए श्रद्धा जमाव रे आ०
एक निष्ठा थी ए पथ चालतां हो लाल, सधे सहजानंद स्वभाव रे
आ० ४

(४७) भक्ति-वृष्टि पद

२६-५-६

वशाखी पूनम रात्रिए चढ्युं मेघाडंबर चिदाकाश रे
भक्तिनी वृष्टि थइ रे···
वृष्टि थई मिथ्यादृष्टि गई, लह्युं अंतर् दृष्टि प्रकाश रे···भ० १
आत्म प्रदेश-प्रदेश मां अति, चमके विजली -चौपास रे···भ०
अनहद वाजां वागी रह्या, गाजे संगीत सुर सरी प्रास रे.. भ० २
नाचे टहुका करे भक्त-मयूरो, अंगे न माय उल्लास रे...भ०

परम कृपालु गुरुराज पधरावी, मन मन्दिर मां खास रे...भ० ३
परमगुरु सहजात्म स्वरूपए-मंत्र वांधे मन श्वास रे...भ०
जीव सरोवर छलक्युं मलक्युं सुख, सहजानंद विलास रे…भ० ४

(४८) राज महिमा पद

१-११-६४

[प्रभु आज चरणों में आये तुम्हारे ए ढब]

प्रभु राजचंद्र कृपालु ! हमारे...
मैं हूं शरणागत नाथ ! तुम्हारे…प्रभु० १
मेरे चिदाकाश के अजब सितारे,
मेरे मनोरथ के सारथी भारे…प्रभु० २
तू खेवैया मेरी नैया निकट किनारे,
मेरे दुख द्वन्द्व ही कट गये सारे…प्रभु० ३
तू ही मेरे सर्वस्व हृदय दुल्हारे,
तेरी कृपा सहजानंद निहारे…प्रभु० ४

(४९) प्रेरणा पद

२१-११-६४

अवसर आव्यो हाथ अणमोल… (२)

झटपट करीले आत्म शुद्धि तुं, सद्गुरु शरणुं खोल अव० १
लोक लाज तुं शुं करे मूरख ! का करे टालमटोल…अव० २
तर्क वितर्क ने निजजन जड़ धन, देह मान सौ छोड़...अव० ३
परमकृपालु शरणे था तुं, भक्तिरसे तरबोल…अव० ४
परमगुरु सहजात्मस्वरूप तुं, रट रट मंत्र अमोल…अव० ५
आत्मसिद्धि नो मार्ग खरोए, सहजानंद रंगरोल...अव० ६

(५०) आत्म-समर्पण पद

गुरुपूर्णिमा २०२१ ता० १३-७-६४

गुरुपूनम उत्तम क्षणे, करूं आत्म समर्पण आज रे
आपना चरणे नमी रे···

चरणेनमी, देहभान वमी, रमी आज्ञा धर्मे जिनराज रे··आपना०१
सर्वज्ञानी-सुर-आत्म साक्षीए, शरणुं स्वीकारूं शिरताज रे··आ०
नाथ म्हारो एक तुंहीज आज थी, परमकृपालु गुरु राजरे...आ०२
पारिवारिक सम बीजा वधा थी, वर्तीश तजी लोक लाजरे··आ०
विचारभेद छत्ता न करूं प्रीतिभेद, धरी अद्वेष गुण साजरे··आ०३
सहजात्म स्वरूप परमगुरु मंत्र, केवल बीज भव पाजरे··आ०
म्हारा हृदयमां आपे वावी मने, कर्यो अहो रंक थी राजरे··आ०४
अहो अहो उपकार ए आपनो, भूलुं न कदी महाराज रे आ०
आप कृपा थी निजपद पाम्यो, सहजानंद स्वराज रे··आ० ५

(५१) प्रार्थना

२६-७-६५

आवो आवो हो गुरुराज म्हारा हृदय मां
आपवा भक्ति नुं साज म्हारा हृदय मां···
देहात्म भावना भौतिक सुख नी, वृत्ति छोडावो महाराज···
मारा० १

छोडावो कल्पना इष्ट अनिष्ट अने, लौकिक धम समाज· ·मारा०२
आत्म भाने वीतराग स्वभावे, ठरू' हुं भक्ति जहाज···मारा० ३
दृष्टि ज्ञाने हु' जोउं जाणु' एक, आप स्वरूप सदाज· ·मारा० ४
शरण-स्मरण रहे नाथ आपनु', सहजानंदघन ताज· ·मारा० ५

(५२) प्रार्थना

२९-७-६५

आवो आवो हो गुरुराज, मारी झुँपडीए,
राखवा पोता नी लाज, मारी झु'पडीए ;
जंबू भरते आ काले प्रवर्ते, धर्मना ढोंग समाज· ·मा० १
तेथी कंटाली आप दरबारे, आव्यो हुं शरणे महाराज· ·मा० २
छतां मूके ना केड़ो आ दुनियां, अंध परीक्षा व्याज· ·मा० ३
नामधारी केई आपना ज भक्तो, पजवे कलंक देइ आज ··मा० ४
आवो पधारो धैर्य वंधावो, ढील करो शाने महाराज ··मा० ५
आपो आपो सौ ने प्रभु सन्मति, आपो भक्ति नु' साज· ·मा० ६
न हो अंतराय कोइ मारामारग माँ,नहिं तो जासे तुज लाज ··मा०७
मूल मारग निर्विघ्ने आराधुं सहजानंद स्वराज· ·मा० ८

(५३) श्री सद्गुरु प्रार्थना

अहो गुरुराज ! राखो मुझ लाज, उगारो आज अहो०
दुस्तर भीषण भवोदधि सम संसार ,
मने घेरी वल्यो मोह सैन्य अनंत अपार ;
आ अशरण दीन वाल नी चडो व्हार
तुम शरणे आवी ने करूं छुं पोकार
ओ प्राणाधार ! करो मुझ सार, उतारो पार अहो० १
पर परिणति रति पामे नहीं हृदय निवास ,
मिथ्यातम हरवाने आपो ज्ञान प्रकाश ,
सुधारस दिव्य पाने हरो मुझ प्यास
रोम रोमे व्याप्यो शुद्ध भावोल्लास
बीजी नहिं आस, भक्ति अभिलाप, याचुं तुझ पास अहो० २
टहो मुझ अनादीय देहाध्यास अनंग ,
आपो प्रभु सरला सहज समाधि अभंग ,
उछलो घट सहजानंद सलिल तरंग
पामुँ हूँ निज पद सिद्धि सादि अनंते भंग
शुद्धातम रंग सुनिर्मल गंग, पामुँ तुम संग अहो० ३

(५४) प्रार्थना

ढाल-व्हाला वीर जिणेसर जन्म जरा निवारजो रे

आव्यो तुम शरणे गुरुराज, अरज हृदये धरोरे ..
पापी अधम पतित खल कामी छुं मुझ उधरो रे · आव्यो०

देह गुलाम हूँ इंद्रियारामी, नव शिव राग द्वेष भर्यो स्वामी ;
देहाध्यास अज्ञान थकी मुझ निस्तरो रे १ आव्यो०
शरणुं आपी तारके हार्या, मुझ समपतित ने कई तार्या ,
तेथी पतितोद्धारक मुझ भव भय हरो रे २ आव्यो०
सारा ना सौ को सत्कारी, जगमा तेनी शी बलिहारी
धन्य तेज जे झाले पापी ना करो रे...३ आव्यो०
पराभक्ति आपों प्रभु मुझने, आत्मार्पण थई विनवुँ तुझने ;
निष्कारण करुणासागर मुझ कर धरो रे...४ आव्यो०
परमगुरु सहजात्म स्वरूप तूं, समरूं तने निशिदिन एक लय हूं;
सहजानंद प्रभु एक आसरो तुझ खरो रे आव्यो० ५

(५५) प्रार्थना

गजल

दयालु दो दया करके शरणता आपकी मुझको ।
न चाहूं अन्य मैं कुछ भी, क्षणिक जड़ तुच्छ वैभव को ।१।
हृदय निष्काम भक्ति से, भरो शुद्ध ज्ञान से मस्तक ।
कर्म मात्रे सदा साक्षी, वना दो दास को आस्तिक ।।२।।
चराचर भूत प्राणी में, दिखा कर रूप प्रभु अपना ।
मिटा दो मैं-मेरा झगड़े, जगत जानूं वड़ा अपना ।।३।।
न हो अहंकार जड सुख से, न हो जड़ दुख गवराहट ।
मुझे समभाव में रखकर, छुडालो मोह भ्रम वहिवट ।।४।।
समर्पी स्मरण निज हरदम, भुलादो देह को अध्यास ।
पिलाकर सहजआनंद रस, हरो मुझ भव भ्रमण से त्रास ।।५।।

(५६) गुरु-महिमा

राग-कागड़ो

हंसा ! गुरु-शरण में जा-जा, कर सद्गुरु-पद पूजा···

पाद प्रक्षालन क्षीर-सागर से, शुचि हो क्षीरोदक ला ;

गंधोदक ले पद्मद्रहे जा, पद्म सहस्रदल ले आ...हं०

रत्नद्वीप से रत्नो लाकर, भाव शुद्ध ज्ञान-पूजा ;

स्वस्तिक हेतु मानसरोवर, ला मुक्ताफल ताजा··हं० २

आत्मार्थे वोधामृत-पय पी, तूं कर तृप्त कलेजा ,

ज्ञेय भिन्न ज्ञानमूर्त्ति सो, अहम् सोहं रटे जा··हं० ३

सोहं-हंसो रटत-रटत कर, देहाध्यास इलाजा ;

मोह क्षोभ मिटाहो अपना, सहजानंद पद राजा··हं० ४

(५७) आशीर्वाद-पद

राग-कान्हड़ो

मुमुक्षु ! आत्म प्रदीप अपनावो···

आज तमे मिथ्यान्धकार हटावो...मु०

परम कृपालु देव कृपा थी, सम्यग् श्रद्धा जमावो ;

परम गुरु सहजात्म स्वरूप हूं, आत्म भावना भावो·· मु० १

प्राण वाणी रस मंत्र स्मरण थी, दिव्य संगीत जगावो ,

दिव्य सुगंधी दिव्य सुधारस, दिव्य ज्योति प्रगटावो.. मु० २

दिव्य मूर्त्तिना दिव्य स्पर्शे निज, आत्म प्रदेश हसावो ;

राज प्रभुना आज आशीष ए, सहजानंद पद पावो·· मु० ३

(५८) नूतन वर्षाभिनंदन पद

१३-१०-६३

नूतन वर्षाभिनंदन, हो राज मंडली ने ;
गुरुराज ना ओ ! नंदन, रहेज्यो हली मली ने...१
ओ राज चरण वासी, सौ राज पथ प्रवासी ;
गुरुराज वोध प्राशी, रहेज्यो हली मली ने...२
आज्ञा स्व हृदय न्यासी, परा भक्ति ने प्रकाशी ;
कुगति-कुधी विनाशी, रहेज्यो हली मली ने...३
सुविचार भेद हो पण, नहिं प्रीति भेद हो क्षण ;
सदाचार भेद मां पण, रहेजो हली मली ने...४
सत्संग गंग न्हायी, सहजात्म स्वरूप ध्यायी ;
करी चित्त शुद्धि भाई, रहेजो हली मली ने...५
आ सहजानंदघन नी, आशीष शुद्ध मन नी ;
प्राप्ति करो स्वधन नी, रहेजो हली मली ने...६

(५९) धर्म-मर्म

३१-८-६५

धर्म-मर्म का वजे नगारा, परमकृपालु देव दुवारा...
आत्म भिन्न जड़ तन धन सारा, झूठा है यह जगत पसारा,
अहं-मम वुद्धि छोड़ दो प्यारा, मोह क्षोभ से रहो नितन्यारा...
धर्म० १
म वह हूं जो द्रष्टा ज्ञाता, ये सव दृश्य ज्ञेय अछता ;

जड जड़ किरिया जड़ फल रीता, ज्ञान क्रिया आनंद फलयुक्ता··
धर्म॰ २

परमगुरु सम सत्ता धारी, हूँ सहजात्म स्वरूप न नारी ;
पुरुष न षंढ न चउगति धारी, ना कोई वर्ण न जाति हमारी···
धर्म॰ ३

मैं शास्वत पद के धर्त्ता हूँ, सहज समाधि के कर्त्ता हूं ;
मैं सहजानंदघन आत्मा हूं, मैं ही आत्मा परमात्मा हूं···धर्म॰ ४

(६०) वड़वा आश्रम के प्रति

हंपि, ता॰ २७-९-६६

वड़वा नी वाड़ी लीली छम रहो रे लो॰
आ कालेआ जंबु भरत मां रे लोल, हतोभूख मरो आध्यात्मरे .
आत्मार्थी जनो विरला वच्या रे लोल, त्यारे अवतर्या राज
परमात्मरे···१

जे वड़वा नी छाये मीठी वावड़ी रे लोल, त्या खोल्युं सदाव्रतधामरे
मृतप्राये अमृत रस सिंची ने रे लोल, आप्युं अमरफल ने विश्राम
रे···वड़वा॰ २

मृतप्राय केई करी जीवता रे लोल, गया परम कृपालु निज धामरे
आ वाडी तेनीकरी स्थापना रे लोल, शुकराजे अर्पी निज आम
रे . वड़वा॰ ३

मत पंथ खाडा ने टेकरा रे लोल, कर्यु समीरण हरी हाथ रे ,
नव वाडे विशुद्ध ए वाड़ी मा रे लोल, वाव्या समकित वीज
अभिरामरे···वड़वा॰ ४

सहभागी कर्यो केड सज्जनो रे लोल, एम श्रमदाने पूर्या प्राण रे,
अंतेवासी जनो ने सौंपी ने रे लोल, शुकराजे कर्युं महाप्रयाण
रे...वडवा० ५

तेनुं अर्द्ध शताब्दी दिन आज छेरे लोल कर्युं हार्दिक स्वागत
आम रे,
ओ वाडी सदा लीलीछम रहो रे लोल, सहजानंदघन धाम रे
...वड़वा० ६

श्रीमद् के गद्य वचनामृत के पद्य भावानुवाद

(६१) सदगुरु-माहात्म्य-पद

पावापुरी २-८-५२

कव्वाली

अहो सत्पुरुष ना वचनो ! अहो मुद्रा !! अहो सत्संग !!!
सुतेली चेतना जगवे, पडेली वृत्तिए दृढ रंग...१
जे दर्शन मात्र थी निर्दोष-अपूर्व स्वभाव ने प्रेरे ;
स्वरूप प्रतीति अवगाढी, अप्रमत्त संयमे हेरे...२
चढावी क्षपक-श्रेणी मा, धरावे ध्यान शुक्ल अनन्य ;
पूर्ण वीतराग निर्विकल्प, आप स्वभाव दायक धन्य ! ३
अयोगी-भाव थी छेल्ले, स्व अव्यावाध सिद्ध अनंत ;
स्थिति दाता अहो गुरुराज ! वर्त्तो कालत्रय जयवंत.. ४
अहो गुरुराज नी करुणा, अनंतु भव भ्रमण कापे ;
अनादिय रंकता टाली, जे सहजानंद पद स्थापे.. ५

[श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक ३३४ ८७५ का पद्य रूप]

(६२) सद्गुरु-माहात्म्य-पद

कव्वाली

अहो सत्पुरुपके वचनों ! अहो मुद्रा !! अहो सत्संग !!!
जगावें सुप्त चेतनको, स्खलित वृत्तियाँ करे उत्तुंग ॥१॥
जो दर्शन मात्रसे निर्दोष, अपूर्व स्वभाव प्रेरक हैं,
स्वरूप-प्रतीति संयम अप्रमत्त-समाधि पुष्ट करें ॥२॥
चढ़ाकर क्षपक-श्रेणी पै, धरावे ध्यान शुक्ल अनन्य,
पूर्ण वीतराग निर्विकल्प, आप स्वभावदायक धन्य ! ॥३॥
अयोगी-भावसे प्रान्ते, स्व-अव्यावाध सिद्ध अनन्त—
स्थिति-दाता ! गुरुराज !! वर्त्तो कालत्रय जयवंत !!!॥४॥
अहो गुरुराजकी करुणा ! अनंत संसार जड़ जारे ;
जो सहजानंद पद देकर, अनादिय रंकता टारे ॥५॥

[श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक ६३४।८७५]

(६३) मुमुक्षु-कर्तव्य पद

हरिगीत-छन्द

वीजुं कशुं मा शोध केवल शोध तुं सत्पुरुपने,
अर्पाइ जा तेना चरणमां सर्वथा शुद्धतर मने,
राजी रहे तेनी रजा-सर्वस्व-सत्य प्रमाणिने,
पछी मोक्ष जो तुझ ना मले तो मागजे मारी कने ॥१॥
सत्पुरुप तेज के जेहनो आत्मोपयोग ज अटल छे,
अनुभव प्रधान ज वचन जेनुं शास्त्र-श्रुतिए पटल छे,

अन्तरंग इच्छा रहित जनी शुभ आचरणा सदा,
निन्दा स्तुति शाता अशा अशाताथी न मन सुख-दुःख कदा ॥२॥
भव एक जो सत्पुरुषने राजी करे सद्वासथी,
तेनी बधी इच्छा प्रशंसे रोम रोम उल्लासथी ;
पंदर भवो माहेज तो तूं पामशे सुगति सही,
गुरुराज-अनुभव गंग सहजानंद-रसथी लहलही ॥३॥

[श्रीमद् राजचन्द्र पत्राङ्क १६४-७६]

(६४) सत्पुरुष–लक्षण पद

ता० ३१-२-'५४

मनहर-छन्द

मनोवृत्ति वहे निराबाध निरंतर जेनी—
संकल्पो विकल्पो जेणे अति-मंद पाड्या छे,
पंच-विषये विरक्त-बुद्धिना अंकुरा फूट्या—
क्लेशना कारण जेणे मूलथी उखेड्या छे,
अनेकान्त-दृष्टि युक्त एकान्त सुदृष्टि सेवे—
जेनी सहजानन्दघन शुद्ध वृत्ति वहे छे,
ऐमा सद्गुरुत्व अने सत्संग सत्कथा रह्यों—
ते जयवंता वर्त्तो ! तेने सत्पुरुष कहे छे...१

(६५) सत्शिक्षा पद

कव्वाली

अहो ! परम शान्त रसमय, शुद्ध धर्म वीतरागी ;
छे पूर्ण सत्य नियमा, कर मान्य जीव ! जागी ॥१॥

निज अनधिकारिताथी, वण सत्पुरुष कृपाथी;
समजाय ना अगम ए, पण सुगम गम पड्याथी ॥२॥
हितकारी जगत भरमां, औषध न ए समु को,
भवरोग टालवाने, ले ले कहुं खरूं हो ...... ॥३॥
आ क्लेशमय भ्रमणथी, तुं विरम ! विरम !! प्यारे !!!
हे चेत ! चेत !! चेतन !!! आ परम तत्त्व ध्या रे ॥४॥
चिन्तामणि समो आ, नर देह विफल नहिं तो;
माथे चडाव आज्ञा, गुरुराजनी अहिं हो ॥५॥
सत्संग गंग न्हायी, कर चित्त शुद्धि भाई !
ज्ञायक स्वभाव ध्यायी, ले सहजानन्द स्थायी ॥६॥

[श्रीमद् राजचद्र पत्रांक ४०६-५०५]

(६६) दिव्य-सन्देश पद

२१-४-५५

मनहर-छन्द

उपयोग लक्षणे सनातन स्फुरित एवो—
आतम स्वरूप निज ध्यानमा जमावो रे।
औदारिक वैक्रिय आहारक तैजस अने—
कार्मण काया पंचेथी भिन्न सदा ध्यावो रे॥
शाता ने अशातानुं वेदन छे अबंध लगी—
तेना कर्त्ता शुभाशुभ ध्यानने भगावो रे।
स्वरूप मर्यादा स्थित आत्मामां जे चल भाव—

तेना नाश माटे ज्ञाननिष्ठाने जगावो रे ॥१॥
शुद्ध चैतन्य स्वभाव स्वयंज्योति छे छतां अे—
कर्मयोगे आतमा सकलंक देखाय जे।
तेथी उपराम उपशमित थवाय जेम—
तेम तेम ज्ञाननिष्ठा सघन सधाय छे ॥
माटे स्वरूपमा स्थिर अचल थवाय तेज—
लक्ष राखो भावो 'आत्मभावना' सदाय रे।
तेवो सहज स्वभाव सिद्ध करो ! करो !! एज—
गुरुराज-बोध सहजानन्दनो उपाय छे ॥२॥

[श्रीमद् राजचद्र पत्रांक ६४४-६१३]

(६७) प्रेरणा-पद

हरिगीत-छन्द

३१-३-५४

आं जगत ने रूडुं बताबा यत्न तो कीधुं घणुं,
तेथी थयुं न भलुं जगतनुं ना थयुं पोता तणुं,
केमके हजी भवभ्रमण भवभ्रमण-कारण ना टल्या,
रंजित-मने बंधन कर्यां ते भवोभव आवी फल्या ॥१॥
जो एक भव निज आत्मश्रेय सधाय तेम वितावियें,
तो परम्पर-नुकशान-पूर्ति आ भवेज कमावियें;
भव-बंधनेथी छूटवा जे श्रेष्ठ साधन ते करो,

ते काज जग अनुकूलता प्रतिकूलता चित्त ना धरो ॥२॥
शुं मान के अपमानथी भुंडुं-भलुं थाय आतमा ?
अपकीर्ति-कीर्ति रहे अहिं तन-राख सह शमशानमां ,
उपयोग शुद्ध करवा तजो संकल्प विकल्पो वधा,
स्मरो साधना प्रभु-पार्श्व-वीर-जिणंदनी क्षण क्षण मुदा ॥३॥
कोई पण प्रकारे राग-द्वेष तजो भजो निज सत्वने,
सत्पुरुषने शरणे रहीने अनुभवो निज तत्वने ;
अलगा रहो मत-पंथथी ए शिष्ट सम्मत धर्म छे,
नृपचंद्र संत-स्वरूप सहजानंद-कंदनो मर्म छे ॥४॥

[श्रीमद् राजचद्र पत्रांक ३७]

(६८) अंतिम मांगलिक प्रार्थना

[ॐ जय जय जय जिनदेव··ए चाल]

ॐ परम कृपालु देव ! जय परम कृपालु देव !!!
हे परम कृपालु देव !!!
जन्म जरा मरणादिक सर्व दु.खोनो,
अत्यन्त क्षय करनार, जे अत्यं० (२)
एवो-वीतराग पुरुषोनो, तीर्थङ्कर मुनि जननो,
रत्नत्रयी पथ सार० ॐ परम० १

मूल मार्ग ते आप्यो मुझ रंक वालने,
अनंत कृपा करी आप; प्रभु अतन्त० (२)
नाथ चरण वलिहारी, हरि भव भ्राति म्हारी,
अहो उपकार असाप० ॐ परम० २
प्रत्युपकार ते वालवा - ने हुं छुं,
सर्वथाज असमर्थ ; छुं सर्व० (२)
निष्पृह छो कंइ लेवा, आप श्रीमद् महादेवा,
परितृप्त निज अर्थ० ॐ परम० ३
जेथी—मन वच तन एकाग्र थइ नमु
आप चरण अरविन्द ; नमुं आप० (२)
आत्मा अर्पुं तुझने, परम भक्ति हो मुझने,
याचुं न जड पद इन्द० ॐ परम० ४
अने वीतराग पुरुषो—ना मूल धर्मनी,
उपासना ज अखड , प्रभु उपा० (२)
जागृत रहो उर.म्हारे, भव पर्यंत ए म्हारे,
छूटो विपयानंद० ॐ परम० ५
आप कने हे नाथ ! एटलुं हुं मागुं ते,
सफल थाओ अभिलाप, मुझ सफल० (२)
हुं सेवक तूँ स्वामी, पुष्ट निमित्त अनुगामी,
सहजानन्द विलास० ॐ परम० ६

[श्रीमद् राजचद्र पत्रांक ४१७ का पद्य रूप]

(६९) दिव्य-सन्देश

४-१०-५७

राग-मालकोश

सहजात्म स्वरूप परमगुरू··(२)

बीजो प्रगट श्री राम महावीर, कलिकाले ए कल्पतरु,
अचिन्त्य-चिन्तामणि चिन्मूर्त्ति, कामधेनु ने कामचरु·· स० १
त्रिविध ताप हरे भ्रम भागे, सिंची सुधारस भूमि-मरु··
निष्कारण करुणा रस-सागर, वाट चढावे वाट सरू ·स० २
दुषमकाल ना दुर्भागीओ ? ल्यो-ल्यो एनु शरण खरूं,
बोध पुरुष गुरुराज-प्रभु नुं, सहजानंदघन स्मरण करूं···स० ३

[श्रीमद् राजचद्र पत्रांक ६८० का पद्य रूप]

(७०) भावना

१८-१-५८

हे काम ! जा बेकाम रे निर्ल्लज ! दूर हटो हे मान !
हे संग उदय ! जा अस्ताचल पर मौन रहो हे जवान।···१
हे मोह। तेरा न मोह हमको, हम नहीं तेरे गुलाम,
हे मोह दया ! जा जा अब झट पट, तुम पर दया हराम···२
हे शिथिलता होजा शिथिल तूं, कभी न आ मम अंग,
हे देहाध्यास ! खवास ! भागजा, हमें नहीं कर तंग···३
परमगुरु सहजात्म स्वरूपी ! ममहिय करो निवास;
तुमरे दर्शन-स्पर्शन से ही नित्य सहजानंद विलास ··४

[श्रीमद् रामचद्र पत्रांक ७७ पृ० ८२३)

ॐ नमः

श्रीमद् राजचन्द्र प्रणीत—

आत्म-सिद्धि

भावानुवाद

[प्राचीन हिन्दी पद्य]

दोहा

मंगल :—

जो स्वरूप समझे बिना, पायो दुःख अनंत।
समझायो तत्पद नमूं, श्री सद्गुरु भगवंत॥ १॥

पीठिका —

इस काले इस क्षेत्रमें, लुप्तप्राय शिव-राह।
समझ हेतु आत्मार्थीको, कहूँ अगोप्य प्रवाह॥ २॥
कई क्रियाजड हो रहे, शुष्कज्ञानी कितनेक।
मोक्षमार्गके नाम पै, करुणा उपजत देख॥ ३॥
वाह्य-क्रियामे मगन है, अंतर्भेद न लेश।
ज्ञान-मार्ग ठुकरात हैं, यहि क्रियाजड़ क्लेश॥ ४॥
'वंध मोक्ष हैं कल्पना', कथनी कथने शूर।
करणी मोहावेश मय, शुष्कज्ञानी वे क्रूर॥ ५॥
वैराग्यादिक सफल तव, जो सह आतमज्ञान।
अथवा आतमज्ञानकी, प्राप्ति हेतु परधान॥ ६॥
त्याग विराग न चित्तमें, होत न ताको ज्ञान।

अटके त्याग विरागमें, सो भी भूले भान ॥ ७ ॥
जहां जहां जो योग्य है, आत्म-ज्ञान त्यागादि ।
साधनपूर्त्ति प्रवर्त्तना, आत्मार्थी अप्रमादि ॥ ८ ॥
सेवे सद्गुरु चरनको, तजे स्व-आग्रह-पक्ष ।
पावे सो परमार्थको, भजे स्व-पदको लक्ष ॥ ९ ॥
आत्मज्ञान समर्शिता, विचरे उदय प्रयोग ।
अपूर्ववाणी परमश्रुत, सद्गुरु-लक्षण योग्य ॥१०॥
प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष प्रभु उपकार ।
ऐसो लक्ष भये विना, सुझे न आत्म-विचार ॥११॥
सद्गुरुके उपदेश बिनु, गम न परत प्रभु-रूप ।
तव उपकार हि क्या वने । गमसों हो जिन-भूप ॥१२॥
आत्मादिक अस्तित्वके, जो दर्शक सत्शास्त्र ।
प्रत्यक्ष संत-वियोगमें, है आधार सुपात्र ॥१३॥
अथवा गुरु-आज्ञा मिली, जो स्वाध्याय विशेष ।
निमता होय विचारिये, नित्य नियम सुप्रवेश ॥१४॥
रोके जीव स्वच्छन्द तव, पावे अवश्य मोक्ष ।
या विधि पाया मोक्ष सव, कहे जिनेन्द्र अदोष ॥१५॥
प्रत्यक्ष सदगुरु योगसों, स्वच्छंद पिड छुडाय ।
अन्य उपाय करत यही, होवत दुगुणो प्राय ॥१६॥
स्वच्छंद मत-आग्रह नशे, विलसे सदगुरु लक्ष ।
कह्यो याहि सम्यक्त्व है, कारण लखी प्रत्यक्ष ॥१७॥

निजछंदनसों ना मरे, रिपु मानादि महान।
सदगुरु चरण सुशरणसों, अल्प प्रयास प्रयाण ॥१८॥
जा सदगुरु उपदेशतें, पायो केवलज्ञान।
गुरु यद्यपि छद्मस्थ हों, विनय करें भगवान ॥१९॥
ऐसो मारग विनयको, कह्यो जिनेन्द्र अगाग।
मूलमार्गके मर्मको, समझे कोइ सुभाग्य ॥२०॥
असद्गुरु इस विनयको, लाभ लहे जो विन्दु।
महामोहनीय-कर्मसों, चल्यो जाय भव-सिन्धु ॥२१॥
होय मुमुक्षु जीव सो, याहि समझ अपनात।
होय मतार्थी जीव सो, उलट वाट वहि जात ॥२२॥
होय मतार्थी तो उसे, होत न आतम-लक्ष।
लक्षण उसी मतार्थीके, कहूं अत्र निपेक्ष ॥२३॥

मतार्थी लक्षण :—

बाह्य-त्याग बहिरातमा, तामें सद्गुरु भाव।
अथवा निजकुलधर्मके, गुरुमें ममत प्रभाव ॥२४॥
जो जिन देह-प्रमाण अरु, समोसरणादि सिद्धि।
जिन स्वरूप माने यही, वहलावे निज बुद्धि ॥२५॥
प्रत्यक्ष सद्गुरु योगमें, वर्त्ते दृष्टि विरुद्ध।
असद्गुरुको दृढ़ करे, निज मानार्थे मुग्ध ॥२६॥
देवादिक गति भंगमें, जो समझे श्रुतज्ञान।
माने निजमत-भेपको, आग्रह मुक्ति-निदान ॥२७॥

पायो स्वरूप न वृत्तिको, धायो व्रत-अभिमान।
ग्रहे नहीं परमार्थको, अलुब्ध लौकिक-मान ॥२८॥
अथवा निश्चय-नय ग्रहे, शब्द मात्र नहिँ भाव।
लोपे सद्व्यवहारको, तजि सत्साधन नाव ॥२९॥
ज्ञानदशा पायी नहीं, साधनदशा न अंक।
पावे ताका संग जो, सो डूबत भव-पंक ॥३०॥
यह भी जीव मतार्थमे, निज मानादिक हेतु।
पावे नहीं परमार्थको, अन्-अधिकारी केतु ॥३१॥
नहिँ कषाय उपशांतता, नहिँ अंतर्वैराग्य।
सरलता न मध्यस्थता, यह मतार्थी दुर्भाग्य ॥३२॥
लक्षण कहे मतार्थीके, मतार्थ निरसन हेतु।
कहूँ अब आत्मार्थीके, आतम अर्थ सुख-सेतु ॥३३॥

आत्मार्थी-लक्षण :—

आत्मज्ञान सह साधुता, वे सच्चे गुरु संत।
तजे अन्य गुरु-कल्पना, आत्मार्थी गुणवंत ॥३४॥
प्रत्यक्ष सद्गुरु प्राप्तिको, गिनत परम उपकार।
मन वच तन एकत्वसों, वर्त्ते आज्ञाधार ॥३५॥
एकहि होय त्रिकालमें, परमारथको पंथ।
प्रेरक उस परमार्थको, सो व्यवहार समंत ॥३६॥
ऐसे दृढ़ श्रद्धानतें, शोधे सद्गुरु योग।
काम एक आत्मार्थको, अवर नहीं मन-रोग ॥३७॥
कषायकी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष।

भवे-खेद प्राणी-दया, तहँ आत्मार्थ निवास ॥३८॥
ऐसी नहिँ सत्पात्रता, तवलों जीव अयोग्य।
मोक्षमार्ग पावे नहीं, मिटे न अंतर-रोग ॥३९॥
आवे जब सत्पात्रता, परिणमतहि सद्बोध।
प्रगटे सुखदायक महा, सद्-विचारणा शोध ॥४०॥
ज्यों प्रगटे सुविचारणा, त्यों प्रगटे निज-ज्ञान।
जिस ज्ञाने हो मोह-क्षय, पावे पद निर्वाण ॥४१॥
उत्पादक सुविचारणा, मोक्ष मारग नियंत्र।
गुरु-शिष्य-संवाद मिस, कहूं षट्पदी-तंत्र ॥४२॥

ग्रन्थ-विषय :—

'आत्मा है' 'सो नित्य है', 'है कर्त्ता निजकर्म'।
'है भोक्ता' अरु 'मोक्ष है', मोक्षोपाय' सुधर्म ॥४३॥
षट् स्थानक संक्षेपमें, षट् दर्शन भी येहि।
समझ हेतु परमार्थको, कहे जिनराज विदेहि ॥४४॥

(१) शंका-शिष्य उवाच :—

दृष्टिसों दिखता नहीं, ज्ञात न होवे रूप।
स्पर्शादिक अनुभव नहीं, तातें न आत्म-स्वरूप ॥४५॥
अथवा देह हि आतमा, किंवा इन्द्रिय प्राण।
मिथ्या है भिन्न मान्यता, मिलत न भिन्न निशान ॥४६॥
अरु होवे यदि आतमा, काहे न प्रगट लखात।
लखाय जो होवे यथा, घट पटादि विख्यात ॥४७॥
तातें नहिं है आतमा, मिथ्या मोक्ष-उपाय।

यह अंतर-शंका हरो, तरनतारन गुरुराय ! ॥४८॥

समाधान-सद्गुरु उवाच :—

भासत देहाध्याससों, आत्मा देह समान ।
किन्तु दोनों भिन्न हैं, लक्षण भिन्न प्रमाण ॥४६॥
भासत देहाध्याससों, आत्मा देह समान ।
किन्तु दोनों भिन्न हैं, ज्यों खड्ग अरु म्यान ॥५०॥
जो द्रष्टा है दृष्टिको, जो जानत है रूप ।
अवाध्य अनुभव जो रहत, सो है आत्म-स्वरूप ॥५१॥
है इन्द्रिय प्रत्येकको, स्व स्व विषयका ज्ञान ।
किन्तु पाँचों विषयका, ज्ञाता आत्मा जान ॥५२॥
देह न जानत विषयको, जाने न इन्द्रिय प्राण ।
आत्माकी सत्ता लिए, होत विषय पहिचान ॥५३॥
जागृत स्वप्न सुषुप्तिका, ज्ञाता भिन्न लखात ।
प्रगट रूप चैतन्यमय, सदा चिह्न विख्यात ॥५४॥
जानत घट पट आदि तूं, तातें ताको मान ।
ज्ञाताको मानत नहीं, यह कैसो तुझ ज्ञान ? ॥५५॥
परमबुद्धि कृष-देहमें, स्थूल देह मति अल्प ।
देह होय जो आतमा, घटे विरोध न स्वल्प ॥५६॥
जड़-जड़ता चित्-चेतना, प्रगट भिन्न स्व स्व भाव ।
कभी न पावें एकता, दोय स्वतंत्र प्रभाव ॥५७॥
शंका निज अस्तित्वको, करे आप नहिं देह ।
शंकाकार हि आतमा, अररर ! दिग्-भ्रम एह ॥५८॥

(२) शंका, शिष्य उवाच :—

आत्माके अस्तित्वके, जो जो कहे प्रमाण।
विचार-दृग् हिय-ज्योतसों, भयी प्रतीति प्रधान ॥५९॥
परन्तु शंका दूसरी, आत्मा नहिं अविनाश।
देह-योगसों बनत है, देह संगहिं विनाश ॥६०॥
अथवा वस्तु क्षणिक हैं, क्षण क्षणमें पलटात।
इस अनुभवसों भी नहीं, आत्मा नित्य लखात ॥६१॥

समाधान-सद्गुरु उवाच :

देह मात्र संयोग है, अरु जड़ रूपी दृश्य।
आत्माकी उत्पत्ति लय, किसके अनुभववश्य ॥६२॥
जाके अनुभववश्य यह, उत्पत्ति-लय-विज्ञान।
ताके भिन्न अस्तित्व बिनु, कुछ भी रहत न भान ॥६३॥
देहादिक संयोग सब, है, आत्माके दृश्य।
उपजत नहिं संयोगसो, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष ॥६४॥
जडतें चिद्-उत्पत्ति अरु, चिन्तें जड-उत्पाद।
कभी किसीको होत ना, ऐसो अनुभव-स्वाद ॥६५॥
कोइ संयोगोंसों नहीं, जाकी उत्पत्ति होय।
नाश न ताको काहुमें, तातें नित्य हि सोय ॥६६॥
तरतमता क्रोधादिकी, सर्पादिकमें ज्योंहि।
पूर्व-जन्म संस्कार यह, जीव नित्यता त्योंहि ॥६७॥
आत्मा नित्य हि द्रव्यसों, पलटत हैं पर्याय।
बाल युवा वृद्ध तीनमें, एक हि आतमराय ॥६८॥

जो क्षण-स्थायी आपका, ज्ञाता सो वक्तार।
वक्ता कभी न क्षणिक है, कर अनुभव निरधार ॥६९॥
कभी कोइ भी द्रव्यका, केवल होत न नाश।
आत्मा पावे नाश तब, किसमे मिले ? तलाश ॥७०॥

(३) शंका-शिष्य उवाच :—

कर्त्ता जीव न कर्मको, कर्म हि कर्त्ता कर्म।
अथवा सहज स्वभाव या, कर्म जीवको धर्म ॥७१॥
आत्मा सदा असंग अरु, करे प्रकृति हि बन्ध।
अथवा ईश्वर प्रेरणा; जातें जीव अबन्ध ॥७२॥
तातें मोक्ष उपायको, कोई न हेतु लखात।
जीव कर्म-कर्तृत्व नहीं, हो यदि तो न नशात ॥७३॥

समाधान-सद्गुरु उवाच :—

होय न चेतन प्रेरणा, कौन ग्रहे तब कर्म।
जड स्वभाव नहिं प्रेरणा, खोजो याको मर्म ॥७४॥
जब चेतन करता नहीं, तब नहिं होवें कर्म।
ताते सहज स्वभाव ना, त्योंहि न आतम-धर्म ॥७५॥
आत्मा असंग मात्र जो, क्यों नहिं भासत तोहि।
असंग है परमार्थसों, जबकि स्वदृष्टि अमोहि ॥७६॥
कर्त्ता प्रभु भिन्न व्यक्ति ना, प्रभु निज शुद्ध स्वभाव।
भिन्न प्रभु प्रेरक गिनत, प्रभु-पद दोष लखाव ॥७७॥
ज्ञाननिष्ठ जब चेतना, कर्त्ता कर्म अभाव।
भूले ज्ञायकभाव तब, कर्त्ता कर्म प्रभाव ॥७८॥

(४) शका-शिष्य उवाच :—

जीव कर्म-कर्त्ता रहो, किन्तु न भोक्ता सोय।
क्या समझे जड़ कर्म जो, फल परिणामी होय ? ॥७९॥
फलदाता प्रभुको गिनत, भोक्ता-सिद्धि सुथाप।
परन्तु तातें होत है, ईश्वरता उत्थाप ॥८०॥
ईश्वर-सिद्धि विना कभी, विश्व-नियन्त्र न होय।
तथा शुभाशुभ कर्मका, भोग्य स्थान न कोय ॥८१॥

समाधान-सद्गुरु उवाच :—

भाव-कर्म निज-कल्पना, तातें चेतन रूप।
स्फुरणा आतम-वीर्यकी, ग्रहण करे जड़-धूप ॥८२॥
जहर सुधा जड़ अज्ञ पैं, जीव खाय फल पाय।
योहि शुभाशुभ कर्मका, भोक्ता जीव लखाय ॥८३॥
एक रंक अरु एक नृप, इत्यादिक जो भेद।
कारण विना न कार्य ये, याहि शुभाशुभ वेद्य ॥८४॥
फलदाता-प्रभुकी यहां, कुछ भी नहीं जरूर।
कर्म स्वभावे परिणमत, होय भोगसो दूर ॥८५॥
वे वे भोग्य विशेषके, स्थानक द्रव्य स्वभाव।
गहन वात है शिष्य ! यह, स्वल्प कहा प्रस्ताव ॥८६॥

(५) शंका-शिष्य उवाच :—

कर्त्ता भोक्ता जीव हो, किन्तु न ताका मोक्ष।
वीत्यो काल अनन्त पैं, वर्त्त रह्यो यह दोप ॥८७॥
शुभ करके फल भोगवे, देवादिक गति जाहि।

अशुभ करे नरकादि फल, कर्म मुक्त न कहाहि ।।८८।।

समाधान-सद्गुरु उवाच :—

ज्योंहि शुभाशुभ-कर्म-पद, जाने सफल प्रमाण ।
त्यों तन्निवृत्ति सफलता, तातें मोक्ष सुजाण ।।८९।।

बीत्यो काल अनन्त सो, कर्मासक्ति प्रभाव ।
वृत्ति-शुभाशुभ संवरत, उपजे मोक्ष स्वभाव ।।९०।।

देहादिक संयोगका, आत्यंतिक हि वियोग ।
सिद्ध मोक्ष शाश्वत पदे, निज अनन्त सुख भोग ।।९१।।

(६) शंका-शिष्य उवाच :—

यदपि मोक्ष-पद हो तदपि, नहिँ अविरोध उपाय ।
कैसे काल अनन्तकी, जावे कर्म-वलाय ? ।।९२।।

अथवा मत दर्शन वहुत, कहें उपाय अनेक ।
तामें सत्-मत कौन है ? सूझत नाहिं विवेक ।।९३।।

मोक्ष होय किस जातिमें ? कौन भेपसों मोक्ष ?
ताका निश्चय होत ना, वहुत भेद यह दोष ।।९४।।

तातें ऐसी मति भयी, मिले न मोक्षोपाय ।
मात्र अकेले ज्ञानसों, कैसे भव-दुःख जाय ? ।।९५।।

समाधान पूरण भयो, पांच उत्तरसों प्राज्ञ ।
समझूँ मोक्ष-उपाय तव, उदय उदय सद्भाग्य ।।९६।।

समाधान सद्गुरू उवाच :—

पांच सदुत्तरकी भयी, आत्मामें सुप्रतीति ।
होगा मोक्षोपायका, समाधान उस रीति ।।९७।।

कर्मभाव अज्ञान है, मोक्षभाव निज-वास।
अंधकार सम अज्ञता, नाशे ज्ञान-प्रकाश ॥९८॥
जो जो कारण बन्धके, सो हि बन्धको पंथ।
तत्-कारण छेदक-दशा, मोक्ष-पंथ भव-अन्त ॥९९॥
राग द्वेष अज्ञान ये, कर्म-ग्रन्थि भव-ग्राह।
जासों तास निर्वृत्ति हो, रत्नत्रयी शिव-राह ॥१००॥
आत्मा सत्-चैतन्यमय, सर्वाभास विमुक्त।
जासों केवल पाइये, शिव-मग रीति सुयुक्त ॥१०१॥
कर्म अनन्त प्रकारके, तामें मुख्यत आठ।
मोहनीय तामें प्रमुख, तन्नाशक कहूँ पाठ ॥१०२॥
मोहनीय के भेद दो, दर्शन-चारित्र-रोग।
औषध बोध अरागता, याहि उपाय अमोघ ॥१०३॥
कर्म-बन्ध क्रोधादिसों, नशे क्षमादिकसों हि।
सबको अनुभौ है प्रगत, यामें संशय क्योंहि ? ॥१०४॥
मत-दर्शनका छोंडिके, आग्रह और विकल्प।
उक्त मार्ग पै जो चलें, रहें जन्म तस अल्प ॥१०५॥
षट्पदके षट् प्रश्न ये, जो पूछे हितकार।
ताकी जो सर्वांगता, मोक्ष मार्ग निरधार ॥१०६॥
जाति-भेषको भेद ना, कह्यो मार्ग जो होय।
साधे सो मुक्ति लहे, यामें फेर न कोय ॥१०७॥
कषायकी उपशांतता, मात्र मोक्ष-अभिलाषु।
भवे-खेद अन्तर-दया, ये लक्षण जिज्ञासु ॥१०८॥

ता जिज्ञासु सत्पात्र को, मिले योग सद्बोध।
तो पावे सम्यक्त्व अरु, वर्त्ते अंतर्शोध ॥१०९॥
मत दर्शन आगृह तजे, वर्त्ते सद्गुरु-लक्ष।
लहे शुद्ध-सम्यक्त्व सो, यामें भेद न पक्ष ॥११०॥
वर्त्ते निज स्वभावको, अनुभौ लक्ष प्रतीत।
वृत्ति वहे निज भावमें, परमार्थे समकीत ॥१११॥
वर्द्धमान सम्यक्त्व हो, टाले मिथ्याभास।
उदय होय चारित्रको, वीतराग-पद वास ॥११२॥
केवल निज स्वभावको, अखंड वर्त्ते ज्ञान।
कहिये **केवलज्ञान** यह, याहि सतनु-निर्वाण ॥११३॥
कोटि वर्षको स्वप्न भी, जागृत होतहिं नाश।
त्योंहि विभाव अनादिको, ज्ञानोदयमें गृास ॥११४॥
छूटे देहाध्यास तव, नहिं कर्त्ता तूं कर्म।
कर्म-फल-भोक्ता न तूं, याहि धर्मको मर्म ॥११५॥
याहि धर्मतें मोक्ष है, तूं है मोक्ष स्वरूप।
अनन्त दर्शन ज्ञान तूं, अव्यावाध स्वरूप ॥११६॥
शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति शिव-शर्म।
कर विचार तो पायेगा, अधिक कहूं क्या मर्म ॥११७॥
निश्चय ज्ञानी सर्वको, आकर अत्र शमाय।
कथकं यो धरि मौनता, सहज समाधि जमाय ॥११८॥

शिष्यको बोध-बीज-प्राप्ति :—

सद्गुरुके उपदेशसों, पायो अपूर्व भान।
निजपद निजमें अनुभव्यो, मिटि गयो मन-अज्ञान ॥११९॥

भास्यो आतम देव निज, शुद्ध चेतना रूप।
अज अजरामर अमल प्रभु, देहातीत स्वरूप ॥१२०॥
कर्त्ता भोक्ता कर्मको, जबलों वृत्ति विभाव।
भयो अकर्त्ता आप तव, वृत्ति वहत निज भाव ॥१२१॥
अथवा निज परिणाम जो, शुद्ध चेतना रूप।
कर्त्ता भोक्ता आपके,—निर्विकल्प स्वरूप ॥१२२॥
मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, रत्नत्रयी शिव-पंथ।
समझायो संक्षेपसों, सकल मार्ग-निर्ग्रन्थ ॥१२३॥
अहो! अहो!! श्री सद्गुरु!!! करुणासिन्धु अपार।
इस पामर पै प्रभु कियो, अहो! अहो!! उपकार!!! ॥१२४॥
कासों पूजूँ प्रभु-चरण, आत्मातें सब हीन।
सो बक्स्यो प्रभु आपहि, वर्त्तूं चरणाधीन ॥१२५॥
ये देहादिक आजतें, वर्त्तो प्रभु आधीन।
दास दास मैं दास हूँ, आप प्रभुको दीन ॥१२६॥
षट् स्थानक समझायके, भिन्न बतायो आप।
प्रगट म्यान तलवार वत्, यह उपकार अमाप ॥१२७॥

उपसंहार :—

दर्शन छहों समात हैं, इन षट स्थानक सिन्धु।
मनन करत विस्तारसों, संशय रहे न विन्दु ॥१२८॥
आत्मभ्रान्ति सम रोग नहिं, सद्गुरु वैद्य सुजाण।
गुरु-आज्ञा सम पथ्य नहिं, औषध विचार-ध्यान ॥१२९॥
जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य-पुरुषार्थ।
भवस्थिति आदिक आड ले, मत चूको आत्मार्थ ॥१३०॥

सुनिके निश्चय देशना, तजो न साधन कोय।
धरिके निश्चय लक्षमें, करो साधना सोय ॥१३१॥

निश्चय-नय एकान्तसों, अत्र कह्यो नहिं लेश।
एकान्ते व्यवहार ना, उभय दृष्टि सापेक्ष ॥१३२॥

गच्छ-मतकी जो कल्पना, यह नहिं सद्व्यवहार।
भान नहीं निज रूपको, सो निश्चय नहिँ सार ॥१३३॥

जो जो ज्ञानी हो गये, वर्त्तमान में होय।
होवेंगे जो भाविमें, मार्ग-भेद नहिँ कोय ॥१३४॥

जीव-शक्ति सव सिद्ध सम, व्यक्त समझसो होय।
सदगुरु-आज्ञा जिन-दशा, निमित्तकारण दोय ॥१३५॥

उपादानकी आड ले, जो ये तजे निमित्त।
पावे नहिं सिद्धत्वको, रहे भ्रान्तिमें स्थित्त ॥१३६॥

मुखसो ज्ञान कथे तदपि, हियसों गयो न मोह।
सो पामर प्राणी करे, मात्र ज्ञानीको द्रोह ॥१३७॥

दया शान्ति समता क्षमा, सत्य त्याग वैराग्य।
होय मुमुक्षु हृदयमें, साधक दशा सुजाग्य ॥१३८॥

मोहभाव क्षय हो जहाँ, अथवा होय प्रशान्त।
वह कहिये ज्ञानीदशा, अवर कहावे भ्रान्त ॥१३९॥

जाके सब जग ऐंठवत्, अथवा स्वप्न समान।
वह कहिये ज्ञानीदशा, अवर हि वाचाज्ञान ॥१४०॥

स्थानक पाच विचारिके, वर्त्ते छट्ठामाहि।
पावे स्थानक पाँचवाँ, यामें संशय नाँहि ॥१४१॥

तनु रहते जिनकी दशा, वर्त्ते देहातीत।
उन ज्ञानीके चरणमें, हों वंदन अगणित ॥१४२॥

श्री सद्गुरु चरणार्पणमस्तु।

ॐ

(७२) षट् पद रहस्य

[कर्णाटक देश में गोकाक ग्राम समीपस्थ गुफा में श्रीमद्राजचंद्र प्रणीत षट पद-पत्र के रहस्य स्वरूप स्वतंत्र रचना प्रारम्भ १-४-५४]

सद्गुरु-स्तुति दोहा

परमकृपालु देव-प्रभु, अहो ! प्रगट महावीर !!!
सद्गुरु राज-पदे धरूं, श्रीफल स्थल निज शिर...१
ओलखावी निज आतमा, कीधो रंकथी राज ;
भव भ्रांन्ति थी छोडव्यो, अर्पी आत्म स्वराज...२
अनन्य आत्म-शरण-प्रदा, सद्गुरु युगपरधान :
चरण-कमल नी वेदी पर, करूं आत्म बलिदान...३
सप्तधातु-रस भेदी ने, अचिन्त्य परमोल्लास :
आज्ञाकित थइ ने वसुं, सद्गुरु चरण आवास...४
सद्गुरु रविकर थी खुली, हृत्कज अंतर दृष्टि :
अनुभव हंस विलास त्या, सहजानंदघन वृष्टि...५

प्रेरणा

सद्गुरु-पद वंदन करी, कहु स्व-अनुभव रीत ;
आत्मार्थी संत्संगी तुं ! सांभल थई एक चित्त ...६

भूमिका

आत्मज्ञान प्रगटाववा, कीजे आत्म-विचार ;
अविच्छिन्न तन्मय पणे, षट् पद थी निर्धार...७

सर्वोत्कृष्ट स्थानक कह्यां, सम्यग्-दृष्टि-निवास :
षट्-पद आ ज्ञानी जने, सहजानंद विलास···८

हरिगीत छन्द

आ शुं बधुं ? छे विश्व आ-समुदाय जड-चेतन तणो,
द्रष्टा जने जड-दृश्य फिल्म तणो सिनेमा प्रागणो ;
आनंद-सुख-दुख अनुभवे जाणे जुअे चेतन सही ,
जाणे न निज पर ने न सुख-दुख अनुभवे ते जड अही···१
देखाय आ, तेम होय आत्मा केम ते देखाय ना ।
देखाय ना जड़ आंख थी अे छे अरूपी चेतना ,
ज्यां दृश्य छे त्यां दृश्य-दृष्टि उभय नो द्रष्टा य छे ,
निज-पर-प्रकाशक आत्मनी चैतन्य सत्ता प्रगट छे···२
हूं कोण ? तुं छो सिद्ध सम सत्तामयी आत्मा अहो !
शुं देह हूँ ? ना देह वल थी भिन्न तुं विजली समो ,
शुं इन्द्रि हुं ? ना इन्द्रियो छे गोख देह-मकान नां ,
शाथी कहो ? कहु अनुभवं शव ने तुं जो शमशान मा ३
शु प्राण हुं ? ना प्राण जड जाणे न गाढ सुषुप्ति मा ,
अन्तःकरण हुं ? ना तेहनो तुं छोज प्रेरक आतमा ;
केम होय प्रेरक जीव ? ज्या प्रेरक छते ईश्वर खरे ।
प्रेरक गणे जो ईश ने तो जीव सत्ता नव ठरे ·४
जीव ज नहीं तो दुख कोने ? आत्म साधन कोण करे ?
सत्संग भक्ति त्याग वैराग्यादि साधन व्यर्थ रे ।
प्रेरे प्रभु शुं जूठ हिंसा चोरी जारी मा अरे ।

प्रेरक गण जो ईश तो कहे केम ते ईश्वर ठरे ?…५
जेम तूप सहित के रहित बंने अवस्था अक्षत-तणी,
तेम बद्ध-मुक्तज जीव-ईश्वर अवस्था एक आत्मनी :
छे जीव-शिव-पद, व्यक्ति नहि तोय व्यक्ति रूपे प्रभु भजे,
ते जीव-अहंता नष्ट करवा संत सौ युक्ति सजे…६
जो जीव नहिं तो जीववा तुं केम तल-पापड बने ?
तो पड्यो रहे पत्थरा समो केम अहिं तहिं भमतो भमे ?
जड ईश शका केम करे ? तुं जीव शंकाशील छो,
माटे तुं तन थी भिन्न आत्मा छोज छोज विचारी जो…७

आत्म-अस्तित्व सिद्धि दोहा

तन वस्त्रादिक छेज जो, तो आत्मा पण छेज.
निज-निज द्रव्य स्वभाव थी, जड-चेतन बंनेज…१
दृश्य-ज्ञेय ज्यां त्यां प्रगट, जाणनार जोनार :
स्व-पर-प्रकाशक आतमा, चित सत्ता निरधार…२
सत्ता भिन्न जल-ग्लोब थी, विजली जेम प्रमाण.
तेम वस्त्र-तन थी जुदी, चित-सत्ता सप्रमाण ·३

आत्मा पद

हु तो आत्मा छुं जड शरीर नथी (२)
तन मसाण नी राख नो ढगलो, पल मा विखरे ठोकर थी,
मुझ वण ए शव पूजो बालो, ज्ञायकता नहिं सुख-दुख थी · हु १
स्पर्श गंध रस रूप शब्द अने, जाति वर्णलिंग मुझ मा नथी :
फिल्म वेटरी प्रेरक जुदो, तेम देहादिक भिन्न मुझ थी··हु २

सूर्यचन्द्र मणि दीप कान्ति नी, मुझ प्रकाश वण किम्मत शी ?
प्रति देहे जे शोभनिकता छे, ते मारी जुओ विश्व मथी···
अग्नि काष्ठ-आकारे रहे पण, थाय न काष्ठ ए वात नक्की,
शाकें लूण देखाय नही पण, अनुभवाय ते स्वाद थकी··हुं० ४
तनाकार रही शरीर न थाऊँ, लवण जेम जणाऊं सही ;
रत्नदीप जेम स्व-पर-प्रकाशक,स्वयं-ज्योति छुं प्रगट अहिं··हुं० ५
अग्नि जेम उपयोग-चीपीए, पकडाऊं कोई सज्जन थी :
प्रयोग थी विजली माखण जेम,सहजानंदघन अनुभव थी हु० ६

आत्म-नित्यत्व-सिद्धि दोहा

अनादि देहाध्यास थी, जीव पराश्रय प्रेम :
जीर्ण वस्त्रवत तन तजे, ग्रहे नवुं फरी अेम···१
अंते वृत्ति जे तन हती, ते तन वासनाधीन ;
पाप पुण्य वे पाख थी, उडे हंसलो दीन···२
सामग्री स्थल पहोंची ने, रचे नवुं तन प्रज्ञ,
गृहण त्याग तन नुं थता, जन्म मरण कहे अज्ञ ··३
जन्म मरण नहिं जीवनो, नित्य जेम नो तेम,
उपजे नवु अजाण ते, रडे धाय स्तन केम ··४
मान्युं देह स्वरूप हु, पण निज नित्य स्वभाव,
कायम करवा देह ने, तेथी खेले दाव ··५
मरे जीव तो तेहने, मृत्युज्ञान न होय,
मृत्यु ज्ञान वण मृत्यु भय, पामे कदी न कोय · ६
पूर्व मृत्यु अनुभव थकी, अहिं मृत्यु भयभीत,

सांप मोरादिक वैर थी, सिद्धि जन्म व्यतीत··७
पुनर्जन्म नी परम्परा, जोतां न जड़े आदि,
तेथी सहजानंद कंद, जीव अनंत अनादि··८
जड़ विज्ञान प्रयोग थी, उत्पन्न जीव न थाय;
अनुत्पन्न नो नाश नहीं, तेथी नित्य सदाय··९
नाना मोटा रूप मां, नानुं मोटुं न दीव;
बाल वृद्ध युवा वये, नानुं मोटुं न जीव··१०
विविध घर मालड जता, रत्न-दीप नहिं नाश;
तेम विविध देहे जतां, जीव रहे अविनाश··११

पदः झूलणा छंद

नित्यछुं नित्यछुं आतमा नित्यछुं,
तो पछी मरण भय केम म्हारे!
भले मरे शत्रुओ, राग द्वेषादिओ,
अमर परमाणु-जीव मरे न क्यारे...१
वीर्य-रज थी बन्युं माटी नुं ढेफुंआ,
जाय शमशान मा जड-स्वभावे;
क्षण क्षणे मली-विखरी दशा पलट पण,
नित्य परमाणु निज धर्म दावे...नि० २
दर्पण दृश्य देखाय पण ते कदा,
उभय मली थाय ना एक रूपे,
तेम देखाय शरीरादि मारा विषे,
पण कदी थायना मुझ स्वरूपे··नि० ३

सूर्य थी मेघ विखरे-वने-आवरे,
रवि न जन्मे मरे न दुख धारे ;
तेम मुझ निमित्त थी देह उत्पत्ति लय
हुं न जन्मु मरूं शुं दुःख म्हारे . नि० ४
मेघ थी पृथ्वी ढंकाय पण सूरना,
दृश्य ढंकाय कर्मे न आत्मा ;
दृश्य तो झेर छे जीव व्याकुल करे,
दृश्य मा दृष्टि जोड़े न महात्मा .. नि० ५
वगर समझे मर्यो हतो रहीश ज अमर,
अमर ने कोण मारे-जीवाड़े ,
दुःख अज्ञान टाली अहो सद्गुरु,
सहज-आनंदघनता पमाड़े .. नि० ६
[गोकाक में अधूरी रचना के अवशिष्ट पद खंडगिरि में रचे गये हैं]

जीव-कर्त्तृत्व पद

खण्डगिरि ता० १०-१०-५७

राग-कान्हड़ो

कर्त्ता जीव स्वतन्त्र आचारी, तो तुं केम रहे छे भिखारी...
'करोति-ज्ञप्ति क्रिया' उभय छे, वंध अवंध प्रकारी ;
वंध क्रिया थी अनरथ करतो, चेतनता धन हारी ..कर्त्ता० १
क्रोध लोभ मद माया चउविध, हास्य अरति रति छारी ;
दुर्गंछा भय शोक कामुकी, वंध-क्रिया ए तारी..कर्त्ता० २
अनुपचार-व्यवहारे आठे, कर्म वाधे ऋण भारी ,
कर्त्ता-अभिमाने घर नगरनो, तूं कर्त्ता उपचारी...कर्त्ता० ३

तेथी देह धरी भव भटके, लाख चौरासी मदारी ;
ज्ञान-क्रिया-कर्त्ता शुद्ध नय थी, सहजानंद विचारी···कर्त्ता० ४

जीव भोक्तृत्व पद

राग-खम्माच

जे जे क्रिया ते ते सर्व स-फल कर्त्ता-भावे···(२)
जेवी क्रिया जेवा भावे, तेनुं फल ते ते प्रकारे
खाडो खोदे तेज पड़े, अनुभव मां आवे···जे० १
खाय ज्हेर थाय मरण, छूतां अनल व्यापे ज्वलन
हिम-प्रदेश गमन वदन, दांत कड़कडावे···जे० २
कषाय अकषाय वहे, वंध मोक्ष आप लहे···
वधे-दुःख मोक्षे-सौख्य, भोक्तृत्व भावे···जे० ३
तज कषाय भज स्वभाव, शुद्ध वीतराग नाव ;
सहजानंद-भोक्ता जीव, छो स्वतंत्र दावे···जे० ४

मोक्ष-स्वरूप पद

११-१०-५७

जे जीवनो शुद्ध-स्वभाव, कषाय अभाव ;
परम-गुरु-जन थी, छे मोक्ष चित्त-शोधन थी···
नय-अनुपचार कर्त्ता-भोक्ता, जीव कषाय-भावे संसर्त्ता,
छूटी शकाय छे ते कषाय विघन थी··छे मोक्ष० १
होय क्रोधादिक नुं तीव्रपणुं, वैराग्य वले थाय मंद घणुं ;
अपरिचय अन्-अभ्यासे उपशम क्षय थी··छे मोक्ष० २

शुभ भाव ने कहे छे मंद-कषाय, अने अशुभ भाव ते तीव्र लाय;
तजता ते शुभाशुभ-अशुद्ध-विभाव यतन थी··छे मोक्ष० ३
छूटवां कषाय ते भाव-मोक्ष, देहादि छूटतां द्रव्य-मोक्ष ;
ले सहजानंद ए न्याये पद-मोक्ष मथी··छे मोक्ष० ४

मोक्ष नो उपाय पद

संत-आज्ञा-भक्ति प्रधान, सुसाध्य निशान,
जीवन डोरी, छे मोक्ष मार्ग ए धोरी···
भव-द्वार जता ए अर्गलाज, रोकी राखे जीवने स्व-काज ;
भव-पार थया एथी केई पापी अघोरी··छे मोक्ष० १
मिथ्यात्व=दृश्य-दृष्टि प्रयोग, छूटी सधाय प्रभु नो सुयोग ,
चित्त-वृत्ति-निरोध, योग-मार्ग पण ओ···री··छे मोक्ष० २
चित्त-वृत्ति अंतर मां ठरतां, प्रगटे चिद्-ज्योति झगमग त्या ;
पथ-ज्ञान सुधा नी भक्ति सु-मार्ग कटोरी··छे मोक्ष० ३
सम्यग्-दृग्-ज्ञान-चारित्र त्रयी, वाह्यान्तर त्याग-विरागमयी;
सौ मोक्ष-उपाय अपावे, भक्ति पथोरी··छे मोक्ष० ४
रे ! रे !! जीव !! तुं कर प्रभु-भक्ति, सत्संगे ले गुरुगम युक्ति ,
तो पामे मुक्ति-ज सहजानंद रंग-रोली··छे मोक्ष० ५

छ-पद-विवेक-फल पद

ता० १२-१०-५७

अे वोध छ-पद नो कही गया, गुरुराज अनंती कृपा करी,
स्व-स्वरूप समजवा अहिं कह्या, हरवा निज भ्रांति तिमिर-सरी ;

एना विशेष विचार थी, सुविवेक-भानु झगमगे,
सप्रमाण लागे सहज ए, फेले चिद्-ज्योति रग रगे;
आसन्न भव्ये स्व-श्रद्धा-प्रक्रिया, मिथ्यात्व वमल सौ जाय टरी
अे० १

जे भाव-निद्रा स्वप्न सृष्टिज अहं-ममता संवरे,
सव विभाव-पर्यय-अध्यासे-अेकता ते संहरे;
अे त्रिविध-तापनी खरी दवा, इष्टानिष्ट-परिणति जाय मरी.. २
संलग्न अशुद्ध विनाशी भावे, हर्ष शोक न उद्भवे,
पर-द्रव्य-भाव थी भिन्न, निज चैतन्य-सत्ता अनुभवे,
सर्वात्म दृष्टि स्वभाव-दया, देखी नाशे दृग्-मोह अरी · अे० ३
आ देह ने आ जीव हु, अज अजर अमर अरोग छु,
संपूर्ण शुद्ध अबाध्य-संवेदन अत्यन्त प्रत्यक्ष नु :
अेम भेदविज्ञान वले विरम्या, शुद्धज्ञान-सुधारस पान करी···
अे० ४

सौ आधि-व्याधि-उपाधि-संग, असंग आत्म-समाधिए,
अपरोक्ष केवलज्ञान सहजानंदघन रस लहलहे,
निज स्वरूप विलासभवन सुशय्या, जागृत उजागृत शयन करी—
अे० ५

सद्गुरु-महिमा पद

चौपाई

आत्म-विचारे पट्-पद-रीति, ते नक्की लहे आत्म-प्रतीति;
आत्मज्ञान ने आत्म-समाधि, टले तस आधि व्याधि उपाधि···१

षट्-पद थी सिद्ध आत्म-स्वरूप, जास बोध थी प्रगटे अनूप ;
जे प्रगट्ये जीव सादि-अनंत, निज सहजानंद रस विलसंत…२

वर्ण्यो निज प्रभु-पद गुरुराय, ते सद्गुरु-गुण व्याख्या न थाय ;
गुरु-पद-त्राण अपुं निज चाम, तोय न चुके ज ते ऋण दाम…३

निष्कारण-करुणा-भण्डार, मुझ सम मूढ करे भव-पार ;
छतां न देखे कदी गुरुराज, आ मुझ शिष्य के भक्त-समाज…४

स्तवता अचिन्त्य-महिमा जास, प्रगटे आतमज्ञान प्रकाश ;
रहो गुरु-पद-रज मुज शिरभाल, चरण हृदय मा थाउं निहाल…५

अहो गुरु-पद ! अहो सद्गुरु-व्यक्ति ! अहो गुरुगम ! सद्बोध ! सुयुक्ति !
अहो गुरु-करुणा ! अहो गुरु-भक्ति ! अहो गुरु-भक्ति ! अहो पथ-मुक्ति ! ६

अहो मुझ हृदय-रमण गुरुराज ! अहो गुरु-शरण भवोदधि जहाज !
अहो मुझ जीवन ! त्याग ! वैराग्य ! सद्गुरु-शरण लह्यो धन्य भाग्य७

गुरु-पद-वंदन परमोल्लास, सहजानंद हो भक्ति-प्रकाश ;
ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ गुरुराज ! जयगुरु ! जयगुरु !! जयगुरुराज !!

बीज-कैवल्य-दशा पद

पामशुं पामशुं पामशुं रे ! अमे केवलज्ञान हवे पामशुं…
राग-द्वेष-भ्रम-पर ज्ञेयो थी, भिन्न एकाकी प्रमाणशुं रे अमे० १

सद्गुरु राज कृपाए निश्चल, ज्ञायक भावे म्हालशुं…रे अमे० २
शक्तिपणे तो स्पष्ट जाण्युं अे, व्यक्त करी संभालशुं…रे अमे० ३
श्रद्धापणे कैवल्य वर्त्ते छे, मुक्त विभाव जंजाल सुं……रे अमे० ४
विचारधारा अेनी अखंडित, बीजुं तो अ+मने काम शुं…रे
अमे० ५
वधी इच्छाओ अेमा विलीन थई, निर्यंन्दश मुक्तिपुरी जशुं…रे
अमे० ६
मुख्यनये तो छीअे ज केवली, सहजानंद रस लसलसुं रे अमे० ७
[इति छपद-पत्र-रहस्य"]

(७३) सद्गुरु नी आत्म-चेष्टा

(१३-१०-५७)

राग कान्हड़ो

अहो! चैतन्य-चेष्टा गुरुजन नी, ज्यां नहिं अंतजल्पना मन नी…
अन्तर्जल्पना जे भाव-मन नी, आठे कर्म नी जननी;
तास निरोध अचपलता धम, निजरा ते कर्म-रज-नी…अहो० १
मन-चंचल-कर्मे असमाधि+ज, आत्म अस्वस्थता-धरणी;
शुद्ध स्वरूपे स्थिरमन स्वास्थ्ये, आत्म समाधि चित्-तरणी…अहो०२
सव वैभाविक-भाव अनुदय, स्वाभाविकी स्थिति तननी;
उदयाधीन मात्र जीवितव्य, साक्षी भावे सौ करणी…अहो० ३
अेम लखी गुरु-अंतरंग-चेष्टा, कीजे तास अनुसरणी;
सद्गुरु-भक्ति मुक्ति नी युक्ति, सहजानंद निसरणी…अहो० ४

(७४) महा-मोहनीय (३०) स्थानक

दोहरा

निर्मोही पद साधवा, निर्मोही गुरु राज।
वंदू परम कृपालु ने, परा भक्तिए आज ॥१॥
व अनेक अति दुःखदा, रौद्र वर्त्तना जेह।
महा मोहनीय कर्म नुं, शास्त्रे लक्षण एह ॥२॥
त्रीश स्थानको तेहना, शुद्ध भाव थी आज।
प्रतिक्रमण थी हुं चढूं सहजानंद जहाज ॥३॥

ढाल—हवे राणी पदमावती

संक्लिष्ट चित्ते मैं हण्या, त्रस जीवना प्राण।
पाद घाते जल डूबवी, पहेलुं ए मोह ठाण ॥१॥
ते मुझ मिच्छामि दुक्कडं ॥ आंकणी ॥
आर्द्र चर्मादिक शस्त्र थी, तोड्या अंग उपाग।
तिरि मानव वध वंधने, वीजा भेद नो संग ॥२॥ ते० ॥
निर अपराधी त्रसादिना गुंगडावी ने मुख।
त्रिजे प्राणो अपहर्या, दीधा असह्य दुख ॥३॥ ते० ॥
धिखती धरा ना व्यूह थी, वन्हि धूम्र प्रयोगे।
जीव अनंता मैं हण्या मोह तुर्य ना योगे ॥४॥ ते० ॥
कत्लखाने क्रूरता धरी, धड शीर्ष विदारी।
पंचम स्थाने हुं थयो, घोर पाप आचारी ॥५॥ ते० ॥
छट्ठे विष योगादि थी, कीधा विश्वासघात।
निज नै मार्या कैक ने, थई कालनो भ्रात ॥६॥ ते० ॥

भेद सप्तम अपलाप थी, हा हा हूं गूढाचारी।
द्रव्य भाव प्राणो हण्या, थयो निन्हव शिकारी ॥७॥ते०॥

ऋषि घातादि पोते करी, परनें दीधा कलंक।
अष्टम स्थाने मोह ने, थयो जड़ नो वंक ॥८॥ ते० ॥

नवमें झूठी साक्षिए, कलहे कैंक ने जोड्या।
नारदीय विद्या वड़े, हसी मुख मरोड्या ॥ ते मुझ० ॥९॥

शरणागत संतापिया, दशमा मोह ने योग।
सत्ता सामग्री भूपादिनी, ध्वंश्या तेहना भोग ॥ते मुझ० ॥१०॥

कौमार भावो दाखवी, भोलावी कंई कुमारी।
एकादशे मन्मथ वशे, थयो वहु अत्याचारी ॥ते मुझ०॥११॥

द्वादशे हुं लंपट छता, ब्रह्मचारी ना डोले।
सतीओ भोलववा भूंक्यो, खरवत् गायो ना टोले ॥ते मुझ०
॥१२॥

जीवनदाता भूपादि ना, वित्त लोभे लोभायो।
छल भेदे वंची आतमा, तेरमे धायो ॥ ते मुझ० ॥ १३ ॥

निज दारिद्रय हर्त्ता तणी, नवली स्थिति ने जोई।
दुख दीधा अपकारिए, चौदमें थयो द्रोही ॥ ते मुझ० ॥ १४ ॥

गुरु नृप सेठ भर्त्तारनी, नागणीवत् चिंती घात।
शिष्य मंत्री भृत्य स्त्रीपणे, पंदरमे ठाणे कजात ॥ते मुझ० ॥१५॥

प्रजावत्सल नृप नायको, हा मैं मार्या मूढ धी।
निर्दूपण कुल थंभ ने, सोलमे थयो क्रोधी ॥ ते मुझ० ॥१६॥

सतरे भव सिंधु मध्ये प्राता द्वीप नी जेम।
गणधरादि उपदेशको, मार्या आणी न रेम ।।तेमु०।।१७।।

रक्षक जीव छकाय ना, साध्वादि बलात्कारे।
धर्म भृष्टताथी गयो, अष्टादश मे द्वारे ।।तेमु०।।१८।।

अनंतज्ञानी निर्देशना, बोल्यो अवर्णवाद।
एकोनविंशति मोह थी, लाग्यो नास्तिक मतवाद ।।तेमु०।।१६।।

निर्दूपण जिन मार्ग ने, निंदी वीशमें ठाणे।
भोला जीव भरमावी ने, जोड्या कुपथ अन्नाणे ।।तेमु०।।२०।।

श्रुत चारित्र दाता गुरु, निंदा तेह्नी कीधी।
एकवीशमा ठाणे वरी, पासत्थादिक ऋद्धि ।। ते मुझ० ।। २१ ।।

उपकारी गुरु वृंदनी, न करी सेवा दुर्भावे।
अवहेलना अति आचरी, बावीसमें अहं भावे ।। ते मुझ० ।। २२ ।।

ठाण त्रेवीस मोह छाक थी, महामूढ अन्नाणी।
अनुयोगधर श्रुतधारी छुं, जाहेर मा वद्यो वाणी ।।ते मुझ०।।२३।।

चोवीसमें मोह-गृद्ध हुं, खान-पान मां भारे।
तपसी नाम धरावी नें, अशनादिक लुट्या चारे ।।ते मुझ०।।२४।।

वैयावच्च वृद्ध ग्लानीनी, न करी छती शक्तिए।
बीज विमुखता पच्चीसमें, लोभाई प्रतिभक्तिए ।।ते मुझ० ।।२५।।

छव्वीसमें तीर्थ भेदिका, राज्यादिक विकथा चारे।
हिंसक शास्त्र रचनादिथी, बाध्या कर्म जे भारे ।। ते तुझ० ।।२६।।

वशीकरणादि प्रयोग थी, जीवो पीडव्या क्षोभे।
सतावीस ठाणे चढ्यो, आत्म श्लाघा ना लोभे ।। ते मुझ० ।।२७।।

अठ्यावीस क्षण स्थायी जे, पंच अक्ष ना भोग।
लोभायो हुं जग एंठ मा, पाम्यो भ्रान्त्यादिक रोग ।।ते मुझ०।।२८।।

सातिशय मय देवर्द्धि, धरी अश्रद्धा तेमां।
निंदा करी मतिमंद मे, मोह ओगणत्रीशमां ॥ ते मुझ० ॥ २९ ॥

हुं जिनदेवो ने जोऊं छुं, वोल्यो वृथा अपलाप।
त्रीशमें गोशालकपणे, हा हा कीधा मे पाप ॥ ते मुझ० ॥ ३० ॥

स्थान त्रीश महामोहना, मैं सेव्या वारंवार।
भवो भवमां भमता हा हा, हजी तेमां छे प्यार ॥ ते मुझ० ॥३१॥

उपसंहार

अधमाधम घोर पापियो, कुल खंपण दीन
पामर रंक पतित हुं, पर परिणते लीन ॥
हाथ धरो प्रभु माहरो ॥ ३२ ॥

अशरण भावे आथडुं, नाहीं सद्गुण नो अंश।
स्हायकारी जग को नहीं, नाती जाती के वंश ॥हाथ० ॥ ३३ ॥

पतित उद्धारक तातजी, करुणालु कृपावंत।
शरणे आव्यो छुं हुं ताहरे, परमगुरु भगवंत ॥ हाथ० ॥ ३४ ॥

छोडाओ मुझ मोहफंद थी, मारुं चाले ना जोर।
महरे नजर करो वापजी, मारी तुम हाथे दोर ॥ हाथ ॥३५॥

आप सामो हुं पडिक्कमुं, मोह वृंद ने आज।
वर संवर क्रियाधीन थई, पामुं शिवनगरी राज ॥हाथ०॥३६॥

॥ कलश हरिगीत ॥

पडिक्कमुं सद्गुरुराज सामो मोहराय पद्मावली।
योगक्रिया फल त्रय अवंचक भाव आधीनता भली ॥
करी एकता निज सत्व मां उदये अव्यापकता धरी।
संवर सधे कृतकृत्य 'सहजानंद' कंदर मा वरी ॥३७॥

—:oo:—

(७५) प्रतिक्रमण पद

राग माढ

[मारी नाड़ तमारे हाथ हरी संभालजो रे

चेतन ! निरपक्ष निज वर्तन निज नजर निहालिये रे।
निरखी दूपण तत्क्षण अविरत यत्ने टालीये रे। चे०।
चाले केम पग शूल वींधायो, शल्य मुक्त अति वेगे धायो।
दोप मुक्ति विण मुक्ति पथे केम चालिये रे। चे० ॥१॥
जे जे दूषण पर मा भासे, रहेला ते निज हृदय आवासे।
दर्पणवत् प्रतिविंव पणै सौ भालियै रे। चे० ॥२॥
मेघ डाघ निज भाल वसे जे, दर्पण शुद्ध कर्ये न खसे ते।
निर्मल ज्ञान जले निज दोप पखालिये रे। चै०॥३॥
निज सुधारथी उद्धर्युं सौ जग, सुधर्या विण उद्धारक ते वग।
पर कर्त्तृत्व अहंत्व समूल प्रजालीये रे। चे० ॥४॥
जो जो संत वृंद साधनता, कर रे केवल निज शोधनता।
शुद्ध वुद्ध थई सहजानंदे, म्हालिये रे। चे० ॥५॥

(७६) निज कर्त्तव्य पद

ढाल-जगत में आतम ध्यान समान,

चेतनजी ! तूं तारूं संभाल, मूकी अन्य जंजाल···चेतन०
तूं छे कोण ? शुं तारूं जगत मां ? आप स्वरूप निहाल,
द्रव्य थकी तुं आत्म पदारथ, नित्य अखंड त्रिकाल। चे० ॥१॥

र्वा गंध रस स्पर्श रहित तुं, अरूपी अविकार;
असंयोगी असत्त अकृत्रिम, ध्रुव शास्वत एक सार। चे० ॥२॥
षड् गुण हानि वृद्धि चक्रात्मक, पर्यय वर्त्तना काल;
लोकाकाश प्रमाण प्रदेशी, क्षेत्र तणो रखवाल। चे० ॥३॥
स्वभावे प्रत्येक प्रदेशे, गुण गण अनंत अपार;
गुण गुण प्रति पर्याय अनंता, स्व पर उभय प्रकार। चे० ॥४॥
प्रति पर्याये धर्म अनंता, अस्ति नास्ति अधिकार;
ए ज्ञानादिक संपद तारी, जड़ त्यागी धर प्यार। चे० ॥५॥
ज्ञाता द्रष्टा साक्षी भावे, उपादान सुधार।
कर्त्ता भोक्ता सहजानंद नो, अनुभव पंथ स्वीकार। चे० ॥६॥

(७७) कीर्त्ति-पद

राग-धन्याश्री

चेतनजी सुं राचो तन नाम। चे०।

क्षण स्थायी जड पर्यय ए तन, मल मूत्रादिक धाम॰॰ चेतनजी १
राखी शक्या नहीं स्थायी तीर्थंकर, चक्री ना
राख थये तन नाम किम्मत शी ? सरे अर्थ
माटे तजो जड नाम भ्रमणता, काज सधे
देहातीत स्व निर्नामी पद, सहजानंद

(७८) आत्म

राग-आशा

कोण अधम महापापी !
॰॰ रमणता, आत्म

हुं मारूं पर लक्षे भापण, मृषावाद आलापी। मुझ० ॥१॥
ग्रहण भोगवे पर पुद्गलनें, चोरी मैथुन थापी।
नाम रूप मूर्छाए राचुं, परिग्रह ग्राह अद्यापि ॥ मुझ० ॥२॥
अभ्यंतर अविरत्ति रत्ति तो पण, द्रव्य लिंगता छापी।
आश्रव रमणे संवर थावुं, मोक्ष मार्ग अपलापी ॥ मुझ० ॥३॥
आत्म अभाने तत्त्व प्रबोधुं, नय एकान्त प्रलापी।
अहभाव निज दृढ़तर पोपुं जाणे हुं ज प्रतापी ॥ मुझ० ॥४॥
करूं आलोचन दोप प्रकाशी, निज आचरणा मापी।
सहजानंद प्रभु तारक तारो, आप शरण नें आपी ॥ मुझ० ॥५॥

(७९) शब्द ज्ञानी

ढाल—वेर वेर नहिं आवे अवसर०

शुं जाणे व्याकरणी···अनुभव···(२)
कस्तूरी निज डुंटी मा पण, लाभ न पामे हरणी। अनु० ॥१॥
अत्तर थी भरपूर भरी पण, गंध न जाणे वरणी। अनु० ॥२॥
मणोबंध घृत पान करे पण, खालीखम घी गरणी। अनु० ॥३॥
लाखो मण अन्न मुख चावे पण, शक्ति न पामे दरणी। अनु० ॥४॥
पीठे चंदन पण शीतलता, पामे नहिं खर घरणी। अनु० ॥५॥
मणि माणेक रत्नो उर मा पण, शोभ न पामे धरणी ॥अनु० ॥६॥
भावधर्म स्पर्शन विण निष्फल, तपजप संयम करणी ॥अनु० ॥७॥
शब्दशास्त्र सह भावधर्मता, सहजानंद निसरणी ॥अनु० ॥८॥

र्ण्वा गंध रस स्पर्श रहित तुं, अरूपी अविकार;
असंयोगी अमल अकृत्रिम, ध्रुव शास्वत एक सार। चे० ॥२॥
षड् गुण हानि वृद्धि चक्रात्मक, पर्यय वर्त्तना काल;
लोकाकाश प्रमाण प्रदेशी, क्षेत्र तणो रखवाल। चे० ॥३॥
स्वभावे प्रत्येक प्रदेशे, गुण गण अनंत अपार;
गुण गुण प्रति पर्याय अनंता, स्व पर उभय प्रकार। चे० ॥४॥
प्रति पर्याये धर्म अनंता, अस्ति नास्ति अधिकार;
ए ज्ञानादिक संपद तारी, जड़ त्यागी धर प्यार। चे० ॥५॥
ज्ञाता द्रष्टा साक्षी भावे, उपादान सुधार।
कर्त्ता भोक्ता सहजानंद नो, अनुभव पंथ स्वीकार। चे० ॥६॥

(७७) कीर्त्ति-पद

राग-धन्याश्री

चेतनजी सुं राचो तन नाम। चे०।
क्षण स्थायी जड़ पर्यय ए तन, मल मूत्रादिक धाम···चेतनजी १
राखी शक्या नहीं स्थायी तीर्थंकर, चक्री नारायण राम···चे० २
राख थये तन नाम किम्मत शी ? सरे अेथी शुं काम···चेतन ३
माटे तजो जड नाम भ्रमणता, काज सधे विण दाम···चेतनजी ४
देहातीत स्व निर्नामी पद, सहजानंद विश्राम···चेतनजी ५

(७८) आत्म निन्दा पद

राग-आशा

मुझ सम कोण अधम महापापी ! संवर भाव उत्थापी···मुझ०
पर द्रव्ये उपयोग रमणता, आत्म हिंसकता व्यापी।

हुं मारूं पर लक्षे भापण, मृषावाद आलापी। मुझ० ॥१॥
ग्रहण भोगवे पर पुद्गलनें, चोरी मैथुन थापी।
नाम रूप मूर्छाए राचुं, परिग्रह ग्राह्य अद्यापि ॥ मुझ० ॥२॥
अभ्यंतर अविरति रति तो पण, द्रव्य लिंगता छापी।
आश्रव रमणे संवर थावुं, मोक्ष मार्ग अपलापी ॥ मुझ० ॥३॥
आत्म अभाने तत्त्व प्रबोधुं, नय एकान्त प्रलापी।
अहंभाव निज दृढ़तर पोषुं जाणे हुं ज प्रतापी ॥ मुझ० ॥४॥
करूं आलोचन दोष प्रकाशी, निज आचरणा मापी।
सहजानंद प्रभु तारक तारो, आप शरण नें आपी ॥ मुझ० ॥५॥

(७९) शब्द ज्ञानी

ढाल—वेर वेर नहिं आवे अवसर०

शुं जाणे व्याकरणी···अनुभव···(२)
कस्तूरी निज डुंटी मा पण, लाभ न पामे हरणी। अनु० ॥१॥
अत्तर थीं भरपूर भरी पण, गंध न जाणे वरणी। अनु० ॥२॥
मणोबंध घृत पान करे पण, खालीखम घी गरणी। अनु० ॥३॥
लाखो मण अन्न मुख चावे पण, शक्ति न पामे दरणी। अनु० ॥४॥
पीठे चंदन पण शीतलता, पामे नहिं खर घरणी। अनु० ॥५॥
मणि माणेक रत्नो उर मा पण, शोभ न पामे धरणी ॥अनु० ॥६॥
भावधर्म स्पर्शन विण निष्फल, तपजप संयम करणी ॥अनु० ॥७॥
शब्दशास्त्र सह भावधर्मता, सहजानंद निसरणी ॥अनु० ॥८॥

(८०) अजपा प्रतीक

राग-आशा

हंसा ! तुझ समरण मुझ प्यारो, तुज स्मरणे भव पारो··हंसा०
जाणे छे आवाल भाव थी, खीर नीर व्यवहारो०
पय पात्रो जल भर ने त्यागी, करे तुं दुग्धाहारो। हंसा० ॥१॥
योगीजन तुझ लक्ष धरी ने, छोडी सर्व जंजालो०
प्राण वाणी रस तुझ पद जपता, करे जड चेतन फालो।हंसा०॥२॥
ज्ञान ज्योति प्रगटे घट अंदर, वरसे अमृत धारो०
मनमयूर हर्षे अति नाचत, अनहद जीत नगारो॥हंसा० ॥३॥
गगने आसन दिव्य सुगंधी, सिद्धि तणो नहिं पारो०
तेम छतां तेमा नहिं अटके, सहजानंद सवागे ॥हंसा० ॥४॥

[इस पद का हिन्दी रूप :—

(८१) भेद-विज्ञान पद

राग-दरबारी कान्हड़ो

हंसा ! तुझ स्मरण मुझे प्यारो...तुझ स्मरणे भव-पारो ··हं०
जानत है आवाल काल से, क्षीर-नीर व्यवहारो,
पय पात्रो तूं जल को त्यागी, करत है दुग्धाहारो · हं० १
योगी जन तुझ लक्षे सज्ज हो, त्यागी संसार असारो ;
प्राण-वाणी-रस तुझ पद-जपते, करें जड-चेतन फारो···हं० २
ज्ञान ज्योति प्रगटे घट मे ही, वर्षे अमृत-धारो,
मन मयूर हर्षे अति नाचत ; अनहद जीत-नगारो· हं० ३
गगने आसन दिव्य सुगंधी, सिद्धियाँ को नहीं पारो,
तब भी वे तामें नहीं अटके, सहजानंद अपारो हं० ४

(८२) मनोजय मंत्र पद

ढाल-वंदना वंदना वंदना रे

मुंझ मा मुंझ मा मुंझ मा रे, परभावे चेतन जी मुँझ मा।
आप स्वभाव घर सौख्य भर्यु छे, ज्ञान आनंद अनुपमा रे।पर०॥
देह स्वजन धन राग संबन्धे, शाने पड़े भव कूप मां रे।पर०॥१॥
इष्ट संयोग ए तो पुण्य तणुं फल, ते तो अनित्य स्वरूप मा रे।पर०।
एकान्त दुखमय तेम छता तूं, शाने राचे जड धूप मा रे॥२॥
अनिष्ट संगफल पाप तणुं ए, होंसे कर्युं छे तें जमा रे॥पर०॥
जेवुं वावे ते लणे तेवुं फल, धरे पछी सुं अणगमा रे॥पर०॥३॥
इष्ट अनिष्ट मा धर तुं समता उर, विकल्प जाल सवी शमारे।पर०।
मंत्र मनोजय अजपा अगीकर, जो सत्सौख्य तणी तमारे॥पर०॥४॥
मन स्थिरताए प्रगटे सहजानंद, वाजी हवे तुं चूक मां रे।पर०॥
अचिंत्य नरभव पामी हवे निज, आत्मसेवा ने मूक मा रे।पर०॥५॥

(८३) मल-विक्षेप-अज्ञान

[सोइ सोई सारी रैन गँवाई·· ए चाल]

मल विक्षेप अज्ञान त्रणे ए, आतम साधन मा प्रतिबंधक छे। म०
क्षमा विनय निज दोष-अरक्षा, अल्पारभ-स्वल्प-परिगृह जे। मल०१
तेह अनंतानुबंधक-भाव-मल प्रक्षालन-जल सद्गुण-गृह छे। मल०२
सद्गुरु-आज्ञा-भक्ति परा ते, मल-विक्षेप-शमन औषध छे। मल०३
पर-व्यवसायी-ज्ञान अज्ञान ते, नाशे सद्गुरु बोधे कबंधए। मल०४
सहु परमार्थ-साधन मा दुर्लभ, परम साधन प्रत्यक्ष-सत्संग छे। मल०५
संत-वियोगे संत-दशानुं, अवलंबन सहजानंद अभंग रे - मल० ६

(८४) चेतवणो

राग-धन्याश्री

पंथिडा ! प्रभु भजी ले दिन चार···

तन भजतां तन जेल ठेलायो, अशरण आ संसार···प०

तन धन कुटुंब सजी तजी भटके, चउगति वारंवार·· पं०

क्या थी आव्यो ? क्यां जावुं छे ? रहेशे केटली वार·· पं०

कर्त्तव्य शुं छे ? करी रह्यो शुं ? हजु न चेते लगार···पं०

आत्मार्पण थइ प्रभु पद भजता, वे घडीए भवपार··पं०

माटे था तैयार भजनमां, सहजानंद पथ सार·· पं०

ता० २५-३-५४ से पूर्व ।

(८५) मन शिक्षा

रे मन ! मान तू मेरी वात, क्यों इत उत वही जात··· (२)

रहे न पत सति परघर भटकत, परहद नृप वंधातः

जड भी कभी तुझ धर्म न सेवें, तू जडता अपनात···रे मन० १

काहे को भक्त ! विभक्त प्रभु सों, काहे न लाज मरात !

प्रियतम विन कहीं जात न सति-मन, तू तो भक्त मनात · रे मन०२

पंच विषय-रस सेवें इन्द्रियां, तुझे तो लातं लात

काहे तुं इष्टानिष्ट मनावत, सुख दुख भ्रम भरमात···रे मन० ३

सुनि के सद्गुरु सीख सुहावनी, मनन करो दिनरातः

सहजानंद प्रभु-स्थिर-पद खेलो, हसो सोहं समात···रे मन० ४

(८६) मन-साधना पद

चेतन ! मन भूतडूं वश कीजे, नवरुं क्षण न मेलीजे ।चे० ।
खय ।कालजुं नवरुं मेल्ये, उद्यमी उद्यमे रीजे,
आत्म विचार स्वकाय भलावी, सत् साधना साधीजे ।चे० ।१।
द्रव्य गुण पर्यय लक्षण थी, जड चेतन परखीजे,
पर स्वामित्व तजी साक्षी थई, जड़ अहंत्व हणीजे ।चे०।२।
अज अजरामर ज्ञानानन्दी, सोहं जाप वलि दीजे;
मेरु थंभ गमनागम सौंपी, सुखमण नाथ नथीजे ।चे०।३।
करे मध्य जो अन्य विकल्पो, तेथी जरी न डरीजे,
पूर्वोपार्जित आवे टलवा, उदये अण व्यापीजे ।चे०।४।
श्रमित थये सतसंग सरोवर, उपशम जल झीलवीजे,
निर्विकल्पता पलंग तलाई, संतोषे पोढवीजे ।चे० ।५
नाद ज्योति अमीरस अधरासन, लब्धि सिद्धि न लीजे,
परम कृपालु पार्श्व-महावीर, साधनता समरीजे ।चे०।६।
बाह्याभ्यंतर त्याग वैराग्ये, सत्पुरुषार्थ धरीजे,
दिव्यनयन सहजानन्द प्रगट्ये, मन साधनता सीझे ।चे०।७।

(८७) विरह पद

राग—जोगीया ताल दीपचंदो

अरे रे ! हजु मोत न आवे, मने विरह खमाय न-वोय ।
चिनडु चोरी व्हाला क्या छुपाया, शोधुं क्या जइ लोय ?
नीर विना जीवे देदरीआ, मछली प्राण ज खोय ॥१॥
प्राण पपैये पियु पियु रटते, नाख्युं हृदय विलोय ।
कण्ठ रुंधार्यु डसका खाते, तुम कारण रोय रोय ॥२॥

तुझ दर्शन ने तलसी तलसी, नयणा सूज्या दोय।
निंदरडी वेरण थई वटकी, निशि उजागरा होय ॥३॥
खान पान सौ झेर थयुं मुझ, ओसड़ लागे न कोय।
तड़फी तडफी तनडुं झूरे, ध्यान आणो तोय ॥४॥
अेवडु ताणे शीद पियुजी, हांसी टाणुं नोय।
सहजानन्द प्रभु तुम दर्शन थी, सहज समाधि होय ॥५॥

(८८) रहस्य-पद

राग-कालिंगडो त्रिताल

सखी मारे आखुं जगत भगवान।
केने कहुं हुं? शुं समजावुं? आतम राम अजाण ॥सखी॥१॥

जल डूबेला जेम सुणे नहिं, मायारत हित वाण।
काढवा जाता सामो डूबाड़े, डूब्या ने शी शान? ॥सखी॥२॥

जेणे पोख्यो गर्भ ऊंधे शिर, पोषे जिन्दगी प्राण।
फोकट चिंता करी करी मूरख, करे आतम धन हाण ॥सखी॥३॥

करे धणीयो जड वहीवट नो, घर धधो धूल धाण।
हासी आवे सखि सुमति मने तो, जोइ एनुं रमखाण ॥सखी॥४॥

क्रुद्ध करी ने धूल वाली पछी, मांगवा बैठो धान।
आप्युं वीज ओम् स्वाहा करी ने, केवुं करे जो तोफान ॥सखी॥५

दुख आपी ने सुख मागे शे, दाखवी झूठ लखाण।
वेशरमा ने लाज न आवे, करता झूठ उफाण ॥सखी॥६॥

देह भोगवे देहे करेला, तूं शी माडे मोकाण?
छे सुख दुख ए देह कर्म फल, तूं थी भिन्न प्रमाण ॥सखी॥७॥

जन्मी मरे छे देह वस्त्र जेम, तूं अजरामर भाण।
तूं तारी संभाली चाल्यो जा, सहजानन्द स्ठाण ॥सखी॥८॥

(८९) विरह-पद

सखि हुं तो अधर रही लटकी।
मुझ अवला ने भोलवी व्हाले, प्रेम पंथ पटकी।
चितडुं चोरी छानो मानो पछी, नाथ गयो छटकी ।स०।१।
पीछो पकड़ी पालव झाल्ये, हाथ दीधो झटकी।
रात अंधारी पंथ न सूझै, तेथी अहिं अटकी ।।स०।।२।।
भान भूली क्या जाऊं हिये मुझ, पियु मिलन चटकी।
पाय पडुं सखि दे खवर पियु, सहजानन्द नट की ।।स०।।३।।

(९०) आत्म-ज्ञान

कच्छी—(काफी) राग—कान्हडौ

रे। असीं आत्मा अैंय्यु' इं यँ चो'ता,
हिन् मुड़धे से असंग रों' ता···रे असी···

मुडधो अयू ही मिट्टी मसाण जी छूं अंधे सूतक लग्गेंता।
किय' चोवाजे आंऊं ही मुंजो ही? चोधल चमार रुअेंता···रे असीं१
नात जात ने ना मुड्धे जा, ,पिंढ जा न मंन्यु' हणे ता।
वायड़ी छोरा घर किंयॅ थिअें मुंजा जुद्धा दिसजें' ता···रे असीं २
पक्खी-मेले जियँ कुटम्-कवीलो, कोई कोंजो न दिसों' ता।
हाय वोय' पोय कुल्ला कैय्यु' असीं, म्मो उतारी फिरों' ता···रेअसीं३
दिस्से जाणे जुक्को ऊज अैंय्यां आंऊ, आत्मा सोहँ जप्पों' ता।
संत कृपा सें समजी शमाई, सहजानन्द छकों' ता···रे असीं ४

(९०) वावा का तूफान

ओ वा । जो ने वावा तणुं तोफान !
मोह दूति पेलि कुब्जा कुमति नो, क्षणमा उडायो प्राण ।१।
तृष्णा घर ने आग चांपी पछी, पटकी मार्यो अभिमान ।२।
काम क्रोध मद लोभ पछाडी, मोह नो लीधो जान।३।
चेतना लक्ष्मी गोद मां लूंटे, सहजानन्द एक तान ।४।

(९२) तत्व रुचि पद

मेवाड़ी भाषा में, राग—धन्याश्री

माखण पिण्ड जिमाव···माई म्हाणे, माखणपिण्ड जिमाव ।
छाछ वाछ म्हाणे दाय न आवे, लागो माखण चाव···१ माई०
छाछे लडे है मनख नराई, जोगी भोगी रंक राव···२ माई०
तडफड तडफे जल विना मच्छ, जल डूवो नरनाव···३ माई०
प्राण पखेरू म्हारो माखण विणत्यूं, उडसी वडी अग्रपाव···४ माई०
क्यूं रोवावे देनी वाई ओ ! वेगे पडूं थारे पाव···५ माई०
किरपा कर जद माखण दे वाई, सहजानन्दघन दाव··६ माई०

इति चेतना माता प्रत्ये विवेक लाल नी प्रार्थना
(संत भूरवाई प्रत्ये अनुलक्षी ने सरदारगढ में रचित)

(९३) स्व-पर विवेक

पर द्रव्ये अेकत्वता, उदये व्यापक भाव ।
राग द्वेप अज्ञान-थी, जन्म मरण दुख दाव ॥१॥
पर कर्त्तव्य अभ्यास थी, अनादि आ संसार ।
निज कर्त्तव्य अभ्यास थी, टले संसरण असार ॥२॥
मच्छ वेध साधक परे; सामे पूर तराय ।
जाणनार जोनार मां, सुरत्ता एम लवाय ॥३॥

निज सत्त्वे एकत्वता, उदय अव्यापक भाव।
ज्ञाता द्रष्टा साक्षीए, उपजे आत्म स्वभाव ॥४॥
सहस्र पत्र पंकज परे, ब्रह्म नलिनी माय।
आतम आतमता वरे, सहजानन्दघन त्यांय ॥५॥

(९४) अलख बाबा

आयो जी मारो, अलख बावोजी आयो,
ओरत रो थो खालड़ो ओढी, माही आप छिपायो १ आयो०
लाख चोरासी नाटक करी ने, सघलोई लोक रिझायो २ आयो०
लोक रंजन सो पार न पाये, नाचत आप थकायो ३ आयो०
अव तो रिझवे आपरो मालिक, सहजानन्दघन रायो ४ आयो०

(९५) वि चार नो विचार

नाराच छन्द

विचार रे। विचार तुं, 'वि' चार नो विचार आ,
विचारिए वि चार नित्य, सार तत्त्व पामवा,
लखी जुदी वि चार चार, शब्द-पूर्त्ति सुख प्रदा,
अहं तजी विनय सजी, सुसंत शरण ले सदा ॥१॥

विशुद्ध संत-चरण-शरण, हृदय-नयण दे मुदा,
विवेक थी स्व-आत्म देह, अनुभवो जुदा जुदा,
टले अज्ञान - भ्रांति - ज्ञेय, निष्ठता स्व अनुभवे,
असार क्षणिक पंच - विषय, थी विरक्ति उद्भवे ॥२॥

स्वद्रव्य - क्षेत्र - काल - भाव, नी ज योग - क्षेमता,
असंग - मौन - स्वरूप गुप्त, विचर छेद भव-लता,
सुदृष्टि - ज्ञान थी स्वरूप, - निष्ट था महारथी,
विज्ञानघन विमुक्तानन्द, - सहज ले विचार थी ॥३॥

(९६) दिव्य-सन्देश पद

राग-भैरवी, राग-मालकोश

वननार ते तो फरनार नथी···२

संचित टाल्युं टले न छतां ते, छूटे उदये अव्यापक थीं,
मुक्ति-बंधन जे चाहो छो, स्वाधिन भविष्य सर्जन थी ··वननार १

तो पछी आत्म-हिते परमाद केम ? गभराओ परमारथ थी,
एक भवना थोडा सुख माटे, अनंत भव शुं वधारो मथी···वननार २

त्रिविध ताप संतप्त आतमा, शुं शीतल करवोज नथी ?
धर्म वस्तु वहु गुप्त छता मले, अपूर्व अंतरशोधन थी···वननार ३

जग मा दुर्लभ सत् - प्रभु सेवा, सत्-गुरु - शास्त्रो सत्संगति,
सत्-दृष्टि सत्-ज्ञान-रमण पण, निज कृपा थकी सुलभ अति···वन०४

तत्त्व रुचि ते स्वकृपा जाणे, ए वण अन्य कृपा व्यर्थी,
देव-धर्म-गुरु-शास्त्र-कृपा त्या, ज्यां सहजानंदघन अर्थी···वननार ५

(९७) निज सुधारणा

ढाल-वेर वेर नहिं आवे, अवसर

तुझ ने तूं हि सुधारे ·चेतन०(२)

तुं हिज तुझ ने तत्त्व प्रवोधे, निश्चय ने व्यवहारे ।चे०।१।

ज्ञेय विचारी हेय ने छंडी, उपादेय स्वीकारे ।चे०।२।

निज पर द्रव्य विनिश्चय करवा, ज्ञानकरण उर धारे ।चे०।३।

परद्रव्ये निज लक्ष संयोजक, युंजनकरण संहारे ।चे०।४।

निज द्रव्ये निज लक्ष समावे, गुणकरण हथियारे ।चे०।५।

निज निज लक्ष एकत्त्वे प्रगटे, सहजानदघन भारे ।चे०।६।

एम निज निज नो भूप वनावी, तूं हिज तुझ ने तारे ।चे०।७।

(९८) चैतन्य लक्षणम्

इडरगढ कंदरा वै० शु० १२/२००५

(ढाल-चेतेतो चेतावुँ तुंनेरे)

वजूडो अमर तारो रे··चेतना माडी !

नथी जेने श्वासो-श्वास, अंधकार के प्रकाश
स्पर्श-रूप-रस-वास रे··चे० १

नथी जैने राग द्वेष, नाम ठाम जाति वेष,
जड़ नो धरम लेश रे··चे० २

नथी गति के आगति, भय शोक ने अरति,
जुगुप्सा ने हास्य रति रे··चे० ३

नथी जड़ काय भोग, जनम मरण रोग,
पर संयोग वियोग रे··चे० ४

नथी जेने तृष्णा धोध, लोभ मान माया क्रोध,
अविरति के अवोध रे··चे० ५

बले जे न अग्नि माहि, जल माहि गले नाहिं,
छेदन भेदन काइ रे··चे० ६

एतो छे अनंतज्ञान, चरण - दर्शनवान,
क्षायिक नवे निधान रे··चे० ७

शुद्ध बुद्ध अविकार, शास्वत अचल चार,
अखंड स्वरूप धार रे··चे० ८

धन्य माडी ! तारो जायो, रोम रोम माँ सुहायो,
सहजानंद सुहायो रे··चे० ९

लक्ष्मीजी नो बावो लालजी स्वर्गवास थतां तेमने सांत्वन अर्थे बावा ना आत्मा विषे नु ख्याल करवा नु पद।

(९९) स्व-पर विवेक अन्तर्मुखी लक्ष्य

सिवाना, भादवा सुदि ५/२००५

जणाय ने देखाय जे, तेमा लक्ष न आप,
जाणनार जोनार मा, चेतन ! था थिर थाप १
जाणाय ने देखाय जे, ते तो पर जड़ रूप,
जाणनार जोनार तुं, सहजानन्दघन भूप २
देव गुरु धर्म तुंज तुं, ध्याता ध्येय नें ध्यान,
देह देवल थी भिन्न छे, जेम खडग ने म्यान ३
पर जड़ लक्ष अभ्यास थी, जन्म मरण दुख थाय,
आप आपना ध्यान थी, जन्म मरण दुख जाय ४
माटे तज पर लक्ष नें, कर निज लक्ष अभ्यास,
प्राण घाणी रस मां भली, सहजानन्द विलास ५

(१००) भाव-लग्न[1] पद

सिवाना १-१०-४९

चाल-तुं तो राम सुमर जग लड़वा दे०

हूँ तो अमर वनी सत्संग करो··हूँ तो०
स्वामी श्री चैतन्य प्रभु थी, लग्न कर्युं मैं वात खरी,
शुं गुण ग्राम करूं एना हू, शक्ति नहीं मुझ माहि जरी। हूँ तो० १
जन्म मरण रोगो नहिं जेने, इच्छादिक नहीं दोष सरी,
तन धन परिजन शत्रु मित्रता, नष्ट थया कामादि अरि। हूँ तो० २

---

१. कुमारी सरला व मधु निमित्ते बनेलु

शिव-सुख दायक निज-गुण नायक, अक्षर अक्षय ऋद्धि भरी,
सच्चिदानन्द सहज स्वरूपी, भवसागर जल तरण तरी। हूँ तो० ३
सर्व भाव शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा, जिन-ब्रह्मा-शिव राम-हरि,
सुखणी थई हु मखि साच कहे छु, नाथ चरण नु शरण वरी। हूँ तो० ४
जन्म मरण रोगोए रोगी, सुरतीआथी सृष्टि भरी;
कामी क्रोधी ने जे परणे, जाय चौरासी मा तेह मरी। हू तो० ५
माटे सेवो नाथ निरंजन, शुद्ध प्रेमरस हृदय धरी,
सहजानन्द लयलीन सुमतिए, सरल मधुरी वात करी। हूँ तो० ६

---

(१०१) छप्पय

गढ सीवाणा १-१०-४६

नाद करत है साद, जिया तूं मत सो प्यारे!
मोह नींद कर त्याग, रहो पर परिणत न्यारे,
स्व स्वरूप कर याद, अहं सो सोहं भावे;
ज्ञाता द्रष्टा शुद्ध, रहो तुम आप स्वभावे
ब्रह्म-रन्ध्र में ब्रह्मनाद ॐ ऐसी धून मचात है
सहजानन्दघन राज ताज हर्षत शीर्ष हिलात है १

(१०२) उपजाति छद

ता० १२-३-५४

शरीर नो धर्म विशीर्ण जाणी,
आराध आत्मा निज सत्व पाणी;
शरण्य छे एक स्व आत्म तत्त्व,
तेथी तजे दैहिक संग सत्व १

(१०३) सुमति झवेर संवाद

मारवाड़ पाली गिरि-कंद्रा २००६ मार्ग सु० ७

[देवी सुमति निज सखी गृह द्वारे नीचे प्रमाणे गाती प्रवेश करे छे—
झवेरव्हेन—सखि सुमति ! अली तु शु गाय छे ?
सुमतिव्हेन—निज आत्मोद्धार मा प्रवर्त्तता थएला अनुभव ने गाऊ छु समाजोद्धार नी भुगल फुकती मुज सखि ने ते वखते मार्गदर्शक थइ पडे
झवेरव्हेन—अलि फरी थी गाव !
सुमति गाय छे झवेर व्हेन दिग थई विचार कूप मा निमग्न थाय छे, सखि नु स्वागत करवानुप भुली जाय छे। ॐ अवधूत]

राग-पूरवी

जोयूं मैं धर्माचार्य धतींग ...जोयुं०
मत ममता रस छाक छकाने, नाचे तागड़ धींग· जोयुं ०१
जड किरिया आडम्बर तोपे, पोपे वाहिर लींग,
आप भमे जग ने भरमावे, अंधो अंध घडिंग· ·जोयुं ०२
धर्म मर्म विण करे भाटाइ, करे मूर्ख नें ढींग ;
मोह नींद मा पूंपूं पादे, चावी वायवडिंग · ·जोयुं ०३
गुणीजन ने कनडे जेम औपध, होमियोपेथिक हींग ;
मोहजाल मा फंसे फंसावे, जेम सावर नुं सींग· ·जोयुं ०४
बुडी मर्यूं ढांकणी भर जल मा, भारत भूपति वृंद,
वारो आव्यो हवे तमारो, शाने ताणो नींद...जोयुं ०५
द्वेष रहित हु साच कहूं छुं, अनुभव नुं हेडींग,
सहजानंद प्रभु महेर करे नो, थाय ए सीधा सडींग...जोयुं ०६

(१०४) विदेही-दशा

चारभुजारोड सं० २००७

नाथ कैसे आपो आप सिटायो ? भाव विदेही पायो··नाथ०
आप अरूपी तन जड रूपी, कैसे वंध लगायो ?
वंध विहीन होवे क्यों अनुभव, जन्म मरण दुखदायो ··नाथ०
वंध होत जो रूपी-अरूपी, क्यों नभ-मेघ न ठायो ?
जड-छादन दुख कारण तव क्यों, घन सौ रवि न दुखायो·· नाथ०
उभय मिलन विन वंध न होवे, भाव अभिन्न कहायो,
भावे वंधन भावे मुक्ति, क्यो उपदेश सुनायो··नाथ०
आत्म अभाने ज्ञेयनिष्ट हो, अपनो वंध मनायो,
ज्ञाननिष्ट हो आपो मेटी, सहजानन्द पद रायो ··नाथ०

(१०५) स्वदेश-पद

चारभुजारोड सं २००७

मूक ने खटपट सघली शाणा ! थाने झट निज देश रवाना,
अण उल्लंघ्य एक छत्र अखंडित, वर्त्ते अहिं जम आणा,
आवी अचानक करी क्रूरता, लूटे जमडो प्राणा··मू० १
सुर नर चक्रि हरि वलदेवा, राय, रंक, नृप राणा,
तन धन परिजन मोहे गाफल, गफलत मा लूटाणा··मू० २
जे माटे भमतो आव्यो अहिं, रही मुसाफरखाना,
सावधान थई शीघ्र करी ले, शिर धरी सद्गुरु आणा··मू० ३
लेण देण खाता पतवी ने, वसूल करी निज नाणा,
सवल वलावे प्होंची जा तुं, सहजानन्द ठेकाणा·· मू० ४

(१०६) चेतवणी पद

(कच्छी भाषा मे)

चारभुजारोड ता० १८-१०-१९५१

अ ये कित्त सुत्तो तु टंगुं पसरवी, मुरखा वाजी विञ्झे तो हारी ।

हल्यो कदें भा ! पुग्गण पुग्गण शैरतुं[1], खणी पुंजी[2] पिंढवारी ।
सुन्नी[3] सीम विरच थाकी सुत्तो पण, मथ्थे अथ् रात अंधारीं[4]
। अैं ये ॥१॥

उभ्भा ही लुंटण चार[5] चोर ने, छल्लेला खवीस व्वभारी[6] ।
दिस् ही डाकण्युं[7] नें राकाश रे, घोड्या खैंण ड्व्वारी[8] ॥अैं ये ॥२॥
हूँ[9] उभ्भो गुरनार[10] ने चित्तरो,[11] सत्त भगाडी[12] मों फाडी ।
कारो[13] सप्प वड्डी फेण कड्ढे ने, अरचे ह्सण कंध दाडी
॥ अै ये ॥३॥

दी मुन्न[14] में त्रीं मुसरें डाकु, जगो न तोय अनाडी ।
उठ् उठ् गाफल न्यार मुंजदा,[15] हैया तुं अख्युं[16] उग्गाडी
॥ अै ये ॥४॥

ञ्ज[17]सराइ वे[18] उड्डाय खटली[19]दई, हिन्नी के हत्थ ताली ।
वड्डी अद्धर पुञ्ज शेर घटे सुम्म, सेजानन्द पाथारी ॥ अै ये ॥५॥

---

१ मुक्ति २ ज्ञानकी ३ ससार ४ अविरति ५ चार कषाय ६ राग द्वेष ७ रति अरति जुगुप्सा मिथ्यात्व ८ कयाल ९ पेलो १० हास्य ११ शोक १२ सात भय १३ काम १४ मन-वचन-काय दण्ड योग १५ सद् गुरु १६ ज्ञाननेत्र १७ सयम १८ वेस १९ अष्ट प्रवचन माता २० श्रेणी माडी

(१०७) मनो-निग्रह पद

चाल— पंथिडा ! प्रभु भजिले दिन चार··

कण्ट्रोलर ! कर निज मन कण्ट्रोल · कर·· (ट)
अन्न धन तन कण्ट्रोल तो ग वण, तुम खंडन डामाडोल कं०
जेम मच्छ ध्यान हेतु वग-संयम, विषय हेतु रंग रोल·· कं०
शोभे पर उपदेश एवो, वागे फूटो रोल·· कं०
स्वांग सजी केम करे नफटाइ, पेट भराई लोल · कं०
झेर पी ने शुं अमर थशे तुं, चेत ! चेत !! रे टोल·· कं०
आत्मा छुं हुं साच कहु छ, नहि तो खुलशे पोल · कं०
था होशियार ! झट मन वश करीले, सहजानन्द अमोल कं०
ता० २५-३-५४ से पूर्व

(१०८) अध्यात्म शिल्पी सम्बोधन

ओ शिल्पी ! आत्म कला विकसावो, लेवा असली सुख नो ल्हावो··
देह भाव तजी आत्म स्वभाव सजी, सुप्त चेतन ने जगावो ..
बाह्य चेतना अंतरंग लावी, आतम भावना भावो··ओ० १
तन-मन-वचन-विकल्प कर्ममल, ए जड संग हटावो···
प्रज्ञा छीणी विवेक हथोडे, चैतन्य मूर्ति घडावो · ओ० २
आत्म प्रदेशे प्रभु छवि चितरी, चित्त प्रभु छवि मा जमावो··
परमगुरु सहजात्म स्वरूपे, प्रभु सम निज ने ध्यावो· ओ० ३
प्रभु पद निज सम सत्ता सही, भेद अभेदे शमावो··
सहजानंदघन निजघन स्वामी, आत्म स्वराज्य ज पावो·· ओ० ४

(१०९) पद-पद

राग-धन्याश्री

चेतन ! शा पद ने तुं रहाय ? आप अक्षर पद राय...चे० १

अक्षरानक्षर पद वे जग मा, सत्यासत्य सुणाय...चे० २

अमल अकृत्रिम शास्वत सत्पद, तद्‌भिन्न असत् के'वाय...चे० ३

हरि-वल-चक्री-इन्द्रादिक पद, संगागेज वहाय ..चे० ४

भ्रात थई जगएंठ समा ते, सेव्यां वहु हाय हाय ..चे० ५

संतकृपाए जाण थये थई, जड़ पद स्पृहा विदाय ..चे० ६

सहजानंदघन सायर उलट्यो, आप स्वपदे समाय...चे० ७

(११०) चेतावनी पद

पावापुरी द्वि० वै० सु० १४ सं० २०१० प्रभात

(—"उठ हिंद वीर युवकां", ए ढव)

कहेशे अंते रोई रे कइं ना करी शक्यो...
अरे कंई ना करी शक्यो

अरर ! हाय हाय, यमदूत आवी ने धक्यो...यम० अरे० ॥

समय खोयो सोई, विषयोन्माद मा छक्यो...विष० अरे०

आप भान भूली, पर ने मैं मेरो वक्यो...पर० अरे०

पुण्य स्वाद लीन, पर जड़ ज्ञेय नै तक्यो...पर जड० अरे०

अज्ञ थई स्वधर्म, सहजानंद नै ढक्यो...सह० अरे०

(१११) चेतावणी

पावापुरी ज्येष्ठ २०१०

[उठ हिंद वीर युवका !—ए ढव]

जाग जाग रे प्रमादि ! मोह नींद खोल···प्रमादि ··

मोह नींद मे गँवायो, समय अति अमोल··गँ०···प्र०

मैं-मेरो करी वज्रायो, स्वप्न राज ढोल···व०···प्र०

स्वप्न राज वैभवे क्यो, नचत कुमति बोल · वै० प्र०

सहजानंद खोली नयना, मेट मोह पोल··न० प्र०

(११२) आत्म-परिचय

शरद् पूर्णिमा २०१०

नाम सहजानद मेरा नाम सहजानंद···

अगम-देश अलख-नगर-वासी मैं निर्द्वंद्व···नाम० १

सद्गुरु-गम-तात मेरे, स्वानुभूति-मात,

स्याद्वाद कुल है मेरा, सद्-विवेक-भ्रात नाम० २

सम्यक्-दर्शन-देव मेरे, गुरु है सम्यक्-ज्ञान;

आत्म-स्थिरता धर्म मेरा, साधन स्वरूप ध्यान··नाम० ३

समिति ही है प्रवृत्ति मेरी, गुप्ति ही आराम;

शुद्ध-चेतना-प्रिया सह, रमत हूं निष्काम...नाम० ४

परिचय यही अल्प मेरा, तन का तन से पूछ !

तन परिचय जड़ ही है सब, क्यों मरोड़े मूँछ ?··नाम० ५

(११३) उपदेश पाद

अलखगुफा (गोकाक) २५-३-५४

[दिलमा दिवड़ो थाय · ए ढब

आ पंच विषय विक्षेप, झेरी चेप, वमी थाओ चंगा,
उल्लसे सहजानद गंगा,
जो विषयपूर्त्ति आनंददाता, तो क्रम थाको ते भोगवता !
ज्यारे आवो शरणे विषय निवृत्ति-प्रसंगा ··उल्लसे० १
विषयेच्छा पूर्त्ति पराधीन छे, पण तास-निवृत्ति स्वाधीन छे,
रहो स्पर्श-गंध-रस-रूप-स्वेज असगा · उल्लसे० २
विषयेच्छा-पूर्त्ति प्रमाद-वहा, आरंभ परिग्रह पाप महा !
लहो निवृत्तिए निज, आत्म प्रतीति अभगा उल्लसे० ३
विषयेच्छा टिकट छे चार गति, निवृत्ति आपे स्वस्वरूप-स्थिति,
करो विषयातीत थई प्रतिक्षण सत्संगा उल्लसे० ४
विषयाधीन खोयो आत्मप्रभु, निवृत्तिए प्रगटे ज्ञान विभु,
तजो व्यर्थ चिन्तन-वकवाद-आचरण दगा ··उल्लसे० ५

(११४) आत्मा पद

२६ ३ ५४

[दिलमां दिवड़ो थाय· ए ढब

ए थाय न कदि वीसार, त्रिलोकीसार, जड तन न्यारो,
प्रियतम आनंदघन म्हारो
ए चिद्धातुमय परमशान्त, छे एक स्वभावि न आदि अंत,
अङ्ग अेकाग्र असख्य प्रदेशाधारो · प्रियतम० १
पुरुपाकारो चिन्मय देही, कफ-वात-पित्त वर्जित गेही,
रस-स्पर्श-गंध स्वरूपनो ले न सहारो···प्रियतम० २
अे अज अजरामर असंयोगी, जड नो नहीं कर्त्ता नहि भोगी,
नहि योगी-अयोगी शुद्ध-उपयोग-सितारो···प्रियतम० ३
अेणे बंध प्रथा दूरे नाखी, थयो कर्म कर्मफल नो साखी,
चैतन्य-लक्ष्मी कहे भव्य ! भजो मुझ प्यारो···प्रियतम० ४

(११५) अपने को भजो पद

पावापुरी २८-६-५३

भज मन सहजानंद स्व-शक्ति...

निरावरण निज ज्ञान-चेतना, कारण-प्रभु गृही युक्ति—

परम पारिणामिक स्वभावस्थित, अनंत चतुष्टय भक्ति..

सेवत स्वाति-बूँद परमोल्लासे, पावत मौक्तिक शुक्ति.

रत्नत्रय एकत्वे सेवत, कार्य प्रभु पद व्यक्ति...

आपको सेवत आपको पावे, शुद्ध-बुद्ध-परिमुक्ति...

(११६) सद्गुरु-सत्संग

राग-धन्याश्री १५-३-५४

साधक! कर सद्गुरु सत्संग···

द्रव्य, क्षेत्र, ने काल, भाव थी, जेओ असम असंग···सा०

ज्ञायक आत्म स्वभाव मां जेनी, स्थिरता चित्त तरंग···सा०

द्रव्य, भाव-नोकर्म उदय नां, केवल साक्षी प्रसंग···सा०

कर्म कर्मफल त्यागी धरे एक, ज्ञान-चेतना रंग···सा०

आप आपमा आपथी विलसे, सहजानंद अभंग.. सा०

(११७) शरीर पद

२८-३-५४

[दिलमां दिवड़ो थाय···ए ढब

आ वात-पित्त-कफ मल जड पुद्गल, अवस्था बदले,

कदि द्रव्य ध्रुवता न टले···

क्षण क्षण प्रति मलवुं विखरावुं, वर्णादि गुण नुं पलटावुं,

ए पुदगल-पर्ययधर्म, न परने कनड़े···कदि० १

छे द्रव्य स्वभावे अविनाशी, स्व चतुष्ठय निज घर नो वासी;
परमाणु जीव कदि कोइ थी, बने न वगड़े··कदि० २
सौ द्रव्य स्वसत्ताए ज सत्. पण पर सत्ताए सौ असत्;
नहिं कोई परस्पर कर्त्ता भोक्ता सघले··कदि० ३
तो पित्ताशय शाथी वगड्युं ? तेथी आनंदघन ने दुःख शुं ?
अेम धर्म-मर्म सहजानंद नोवत गगडे·· कदि० ४

(११८) संसार मार्ग पद

२८-३-५४

[चाल—मारुं चतन आ मारुं वतन-ए ढब]

अेम थयुं पतन थयुं तारुं पतन, चेतन ए अनादिय तारुं पतन।
दृष्टि-दृश्य परस्पर बांधी, मिथ्यात्वे कर्युं आत्म-वमन···अेम०
दृष्टि-मोह चण्डाल चौकड़ी, कर्यों अंध हरी हृदय नयन···अेम०
आत्म अज्ञाने चरम नेत्र थी, स्वरूप खाते खतव्यों तन··अेम०
देह हुज दृढ़ देहाध्यासे, जड-चल-जग अेंठवाड रमन··अेम०
पोपत निशदिन गंदी काया, कर्यों मूत्र-मल वहु जल-अन्न···अेम०
राग-द्वेष भववीज लणे नित्य, खेडे पंच विषय विष-वन ··अेम०
उत्पत्ति-व्यय जड पर्यय-धर्मो, ते माने निज जन्म मरण···अेम०
कैदी हतो नव मास जे गटरे ते भोगवया उगत-मन··अेम०
अन्य-कैदी जे निज जन मान्या, ममताए करे तेनुं जतन·· अेम०
अज्ञ भ्रान्ति-अविरति ठग-द्वारे, गिरवी मूक्या त्रणे रतन·· अेम०
चउगति चोपड खेली हार्यो, रत्नत्रयी सहजानंदघन···अेम०

(११९) उपशम श्रेणिए विघ्न

राग-भैरवी

मारग मा लूँटे पाच जणी···(२)

देखडावी त्रण-लोक सिनेमा, पहेली लूटे वनी ठनी,
आत्मा भूलवे दृष्टि फसावे, दृश्ये सुख नहिं एक कणी···मारग० १

ग्राम-मूर्च्छना-ताल-लये थी, सप्त स्वरे अवर-गुंजणी;
अगम-रेडिओ गान आलापी, लूंटे बीजी गायकणी · मारग० २

दिव्य-पुष्प-रज दिव्य-सुगंधी, हीना अत्तर-फुलेल तणी,
महक फेलावी लूट चलावे, लूंटारी त्रीजी सूंगणी मारग० ३

सहस्रदले कर्णिका थी रस, वरसावे एक धार छणी,
अमृतधारा कही ललचावे, लूंटारी चौथी मेघणी; मारग० ४

दिव्य स्पर्श थी फसवे पांचमी, दिव्य विषय जड़ नागफणी,
सहजानन्दघन उपशम श्रेणी, पटकावे वृत्तिओ ठगणी; मारग० ५

(१२०) मोक्षमार्ग पद

२८-३-५४

[चाल—मारुंवतन आ मारुंवतन]

भव्य ! करो जतन, भव्य करो जतन ··निजरत्नत्रयी नुं करो जतन;
दृश्य प्रपंच थी दृष्टि हटावी, द्रष्टामां करीओ स्थापन · भव्य०
अनंतानुबंधी कषाय चर, दर्शनमोह नुं थाय वमन· ·भव्य०
दृष्टि-दृश्य नी गाठ कपाता, प्रगटे गुण सम्यग्-दर्शन भव्य०
आत्मानुभव-लक्ष-प्रतीति प्रगट जणाय देहादिक भिन्न · भव्य०
टले अज्ञान ज्ञान गुण सम्यक् , श्रद्धा ज्ञाने स्वरूप रमण ··भव्य०
आत्म प्रदेशे स्थिरता सम्यक्, चारित्र गुण ए आत्मवतन · भव्य०
रत्नत्रयी एकत्व अभ्यासे, प्रगटे केवलज्ञान स्वधन···भव्य०
सिद्ध-बुद्ध-परिमुक्त ए चेतन, कृतकृत्य सहजानंदघन···भव्य०

(१२१) कषायाधीनता पद

ता · ३०-४-५४

राग भैरवी

अरे ! चारे कपाई अज[१] तफडावे···२

एक लीलुं छम-घास[२] बतावी, अज चंचल मन ललचावे;
छलाग मारी वाड[३] ने ठेकी, अज पर[४]हद खावा धावे···चारे० १
पा पा पगले पाछो हटतो, सुना[५] जंगल मा लावे;
छानो छुप आडे थी वीजे[६], छल बल थी पकड्यो दावे चारे० २
धव धव धवकारे अज-हैयुं पण पौवारे[७] नहिं फावे;
थर थर थर थर कंपित तनडे, अज मैं-मे-पिंगल गावे···चारे० ३
भवां चडावी सोटी मारी, सड्सडाट त्रीजो[८] चलवे;
चौथौ[९] फक्कड अक्कड़ चाले, छाती फूलवी मूंछ तावे चारे०४
सहजानंदघन परवशता थी, कपाई-खाना जावे···;
अजरामर अज लालचथी एम, निज हद कूदी दुख पावे···चारे० ५

(१२२) कषाय-विजय पद

३०-४ ५४

राग भैरवी

अहो ! अज कपाई चारे पटके···(२)

स्व=एटले धन भाव=ज्ञायकता, स्वभाव मर्म गूही छटके,
ज्ञायक-धन निज जीवन जाणी, कपाइओ सामो त्रटके···अहो० १

---

१ आतमा २ विषयो ३ संयम मर्यादा ४ इन्द्रियो ५ अनीति ६ दम
७ भागवामा ८ क्रोध ९ मान ।

परम निधान-ज्ञान एक ताने,--परम प्रसादे मुख मटके;
क्षमा विनय ऋजुतादिक प्रगट्या, गृस्युं क्रोध-तन एक वटके…अहो०२

परम-विनय दोरे मन निज मां, ज्या अहंता गाडी अटके,
देह भिन्न निज आत्म लखी ने, मान मरोड्युं एक झटके… अहो०३

मणि खजाने काच किम्मत शी ? प्रकाश त्यां केम तिमिर टके;
सरल सत्य ने झुठ विवेके, माया माथुं धड लटके… अहो० ४

टली ममता त्या परिग्रह-ग्रहनी, लब्धि सिद्धि थी पणव टके;
ज्ञान कोष ना सम्यक् तोषे, लोभ लणी चूरण फटके…अहो० ५

अनंत वल समूह व्यूह थी, घात्या घनघाती कटके;
सर्वतंत्र स्वतंत्र थइ अज, सहजानंदघन सुख गटके…अहो० ६

(१२३) ज्ञान-चेतना मस्ती

(राग मालकोश) २०-६-५४

[चाल—अवसर, वेर वेर नहिं आवे]

भयो मेरो…मनुआं वेपरवाह,
अहं-ममता की वेड़ी फेड़ी, सजधज आत्म उत्साह…भयौ०
अंतर-जल्प विकल्प संहारी, मार भगाई चाह…भयौ०
कर्म-कर्मफल चेतनता को, दीन्हो अग्नि-दाह…भयौ०
पारतंत्र्य पर-निज कौ मिटायौ, आप स्वतंत्र सनाह…भयौ०
निज कुलवट की रीति निभाई, पत राखी वाह वाह…भयौ०
तीन लोक में आण फेलाई, आप शाहन को शाह… भयौ०
ज्ञान चेतना संग में विलसै, सहजानंद अथाह… भयौ०

(१२४) निजानुभूति

२६-६-५५

[राग-ओ दीनबन्धु ! ओ दीनबंधु ! मारो मलगी गयो संसार]

वर्त्यो जयकार ! जय जयकार, मारो मलगी गयो संसार ·
जन्मान्तर ना सद्गुरु शरणे, तत्त्व अभ्यास्यो शुद्धाचरणे,
लही सत्संग आधार, मैं तो काल लब्धि अनुसार - वर्त्यो १
सहज वीर्य-सुख-दर्शन-ज्ञाने, निरावरण प्रभु निरख्यो ध्याने,
अचिन्त्य गुण भण्डार, थयुं मनडु त्यां एकतार वर्त्यो० २
देह-देवल नो देव निहाली, जड-चिद् ग्रन्थी समूल प्रजाली;
लाधो मैं सम्यक्त्व सार, मारो सफल थयो अवतार··वर्त्यो० ३
स्व-संवेद्य प्रत्यक्ष आ घट मा, कारण प्रभुने भेट्यो निकटमां,
भास्यो अभिन्न देदार, टली जड सुख-दुख-भ्रमजाल··वर्त्यो० ४
चारित्र मोह करूं हवे चूरण, केवल बीज थी केवल पूरण,
व्यक्त कार्य किरतार, सहजानंदघन पद सार··वर्त्यो० ५

(१२५) निजदोष बंधन

२६-४-५५

कव्वाली

जे जे इच्छेलु पूर्वे, ते ते मले अत्यारे,
जे जे इच्छ्युं न पूर्वे, ते तो मले न क्यारे··१
जे मोह भावे इच्छ्युं, निजने मुंझावा जेवुं,
तन संग बंधनादि, फली ने मल्युं ज तेवुं ··२
तेथी मुंझाय छे तुं, पण छे ए दोष केनो ?
छे निमित्त मात्र तेने, दे छे तुं दोष शे'ने ?··३

करो हृष शोक शानो ? तज मोह रे अभागी !
निज दोष थी वंधायो, छूटे ए दोष त्यागी···४

समभाव थी सही ले, राख्या रहे न कर्मो;
आवे तने छोडववा, था केम तूं निशर्मो ! ··५

अने न जो तने जो, सहजात्म स्वरूप द्रष्टा;
स्थिर ज्ञान मां ठरे तो, छो सहजानन्द स्रष्टा·· ६

(१२६) ब्रह्मचारी जी के प्रश्नों के उत्तर

(१) अगास से ब्रह्मचारी गोवर्द्धनदासजी का प्रश्नमय दोहा

—प्रश्न : अेक काय वे रूप थई, एक रहे परघात ।
मरेलो हणे जीवतो, उत्तर द्यो ! शी वात ?

गुरुदेव का उत्तर —घाति अघाति रूप वे, कर्म वर्गणा एक ।
मरी मारे धुर अन्य ने, उत्तर एज विवेक ॥

आत्मा ना छ. कारक स्वतंत्र थता आत्मा पोते पोता वड़े पोता माटे पोतामा थी पोता माँ पोतानेज जोतो जाणतो थको विलसी (रमणता-करी) रह्यो छे ।

(२) एक लघु कथा पर ब्रह्मचारीजी ने गुरुदेव को लिखा जिस पर विशेष विवरण करते हुए गुरुदेव ने निम्नोक्त दोहे लिखे —

माल वोकडो खाय ने, खाय माकडो मार;
मन मारी तन मां रहे, संत विरल संसार···१

माल माकडो खाय ने, खाय वोकड़ो मार,
तेम क्रिया जड़ तप तपी, तन सुकवे मन प्यार···२

खाय मांकडो वोकडो, पोपे मन तन अंम;
मरे गोसाइं गोकलो शुष्क ज्ञानी पण तेम ३
चित्त अशाति थाय त्या, स्वात्म वृत्ति ने भाल;
वृत्ति विचार कर्या थकी, जाय विकल्प जंजाल ४

(१२७) प्रेरणा-व भावना

ज्यो वंध-स्पर्श न जल-कमल मे, क्षीर-नीर न एक ज्यो
जल-उष्णता असंयुक्त-ज्यो, अरु नियत नीर तरंग त्यों—
तन, गति, कपायो, जन्म-मृत्यु संग आत्मा शेप है,
पर कनक-भूपण ज्यों स्व-आत्मा चिद्-गुणे अविशेष है, १
ओस-बुंद ज्यों क्षणभर रे, यह ससार है,
तज खटपट झट कर ले रे, सत्संग सार है। २।
जव हो सच्चे गुरु का सत्संग रे,
तव से न गमे संसारी-प्रसंग रे;
परम-कृपालु-छवि हिय-दृग् झलके रे,
मन-मरकट तव कहीं नहीं भटके रे,. ३
चलते-फिरते प्रगट प्रभु देखूं रे;
मेरा जीना सफल तव लेखूं रे।
मैं-प्रभु में प्रभु-मुझ में समावूं रे,
सहजानन्द-समाधि रमावूं रे...४

शुद्धता विचारें ध्यावे, शुद्धता में केली करे,
शुद्धता में स्थिर रहे, अमृत धारा वरसे रे। १।

दोहा

नट नर्सवत् साक्षी हो, करो कुटुम्ब व्यवहार।
मैं मेरापन छोड ज्यों, धाय खेलावे बाल ॥१॥
काहे तूं इत उत फिरै, सिद्ध होन के काज।
मैं मेरापन छोड दे, है यह सुगम इलाज ॥२॥

२-४-५४

प्रिय सत्संगी। ल्यो दिव्य संदेशडो रे, करजो सतत अभ्यास,
नित्य जीवन घडतर घडजो सदा रे, सहजानन्द विलास, प्रिय०

धून—

दर्शन ज्ञान रमण एक तान। करता प्रगटे अनुभव ज्ञान ॥
देह आत्म जेम खड्ग ने म्यान। टले भ्रान्ति अविरति अज्ञान ॥१॥
ज्ञाता द्रष्टा शास्वत धाम। सच्चिदानन्द आतम राम ॥
ध्याता, ध्यान, ध्येय गतकाम। हुं सेवक ने हुँ छुं स्वाम ॥२॥

दोहरा—

आपज दुखी आप थी, क्यां करवी पोकार ?
दुख कारण ने पोषतो, अंत ज थाय खुवार।

(१२८) आर्या छंद

२६-४-५५

भीषण नरक गति माँ तिर्यंच गति मां कुदेव-नर-गति मा,
पाम्यो तुं तीव्र दुःख, भाव रे जिन भावना, जीव !...१

(१२६) लोकनालि-दर्शन

॥ दोहा ॥

न जड-मान-मतार्थिता, अनुकूलता दासत्व ।
विषय-मूढ स्वच्छंद ना, सो आत्मार्थी सत्व ॥१॥
न क्रिया जड शुक-ज्ञान ना, ना पर-रंजक-वृत्ति ।
दृष्टिराग हठवाद ना, यह सत्संगति-रीति ॥२॥
संयम तप अकषायता, सम-सुख-दुख चित्त-वृत्ति ।
शुद्ध भाव अधिकारी सो, सन्मति मुमुक्षु प्रवृत्ति ॥३॥
सन्मति सत्संगे रहत, करत ही सत्श्रुति-पान ।
शुद्ध स्वभावे परिणमत, पावै प्रातिभ-ज्ञान ॥४॥
बाह्यभाव विरेच कर, पूरक अन्तर्भाव ।
परम भाव कुंभक बले, ध्यावे शुद्ध स्वभाव ॥५॥
वंकनाल षटचक्रको, भेदत शोधत पिण्ड ।
दिव्य नयन देखे अहो ! व्यापक सकल ब्रह्मण्ड ॥६॥
नाभिचक्र स्थिर ज्योत से, द्वीप समुद्रादि अशेष ।
खण्ड देशवन नगर गृह, लखतहि व्यक्ति विशेष ॥७॥
अधोलोक तल चक्र क्रम, सुर असुर व्यंतरादि ।
सप्त नरक नारक लखत, दुखिये जीव प्रमादि ॥८॥
उर्ध्व-उर्ध्व चक्र क्रमे, उदरे ज्योतिश्चक्र ।
कल्पवासी की श्रेणियाँ, प्रति पांसडीए वक्र ॥९॥
ग्रीवाए ग्रैवेयको, अनुदिश अनुत्तर सिद्ध ।
शिर गोलक चक्र क्रमे, दूरंदेशी ऋद्ध ॥१०॥

दक्षिण भ्रूतल कमल में, वैक्रिय-लब्धि प्रकाश।
आहारक वामे अहो ! संयमधर को खास ॥११॥
दक्षिण स्तन-तल कमल में, तैजस मापक तंत्र।
वामे कृष्ण राजी अहो ! कार्मण-मापक यंत्र ॥१२॥
ज्यों ज्यों संवरता सधत, त्यों कार्मण-मल नाश।
कमल श्वेतता अनुसरे, यही निशानी खास ॥१३॥
मिट्टी शुद्ध किये पिछे, चश्मा दुर्विन होत।
कषाय भाव असंग यह; चित्त शुद्धि की ज्योत ॥१४॥
दुर्विन छोटी चीज को, वडी दिखावत ज्योंहि।
योग दृष्टि तारतम्यता, चर्म चक्षु सह योंहि ॥१५॥
द्रव्य क्षेत्र कालादिका, सिद्धान्ते परिमाण !
योग दृष्टि सापेक्ष वे, चर्म दृष्टि अप्रमाण ॥१६॥
अगम 'अलोक' हि आतमा, लोके निज में लोक।
प्रत्यक्षता प्रातिभज्ञान, व्यापक लोकालोक ॥१७॥
स्व-पर गति आगति तथा, भूत भविष्य प्रपंच।
कलिकाले ही गम्य है, न धरौ शंका रंच ॥१८॥
लोक पुरुष संस्थान यह, धर्म ध्यान अनुभूति।
ज्ञेय ज्ञान की भिन्नता, प्रगट स्व-पर सुप्रतीति ॥१९॥
स्व-पर प्रतीति वले सहज, वृत्तियाँ आत्माधीन।
क्षायिक समकित प्रगटता, दर्शन मोह प्रक्षीण ॥२०॥
लोकनाली दर्शन यही, आनंदघन आधीन।
क्या जानौं मतिमंद मैं, सत्पुरुषार्थ विहीन ॥२१॥

———

(१३०) शब्द ज्ञानी

पद नं० ७६ का हिन्दी-रूप

अनुभव क्या जाने व्याकरणी ॥ अनुभव० ।
कस्तूरी निज नाभि में पर, लाभ न पावे हिरनी ॥१॥
इत्तर से भरपूर भरी पर, गंध न जाने बरनी ॥२॥
कितना ही घृत-पान करे पर, खाली स्वस घी-छननी ॥३॥
लाखो मन अन्न मुख खावे पर, शक्ति न पावे गिरनी ॥४॥
पीठ चंदन पर शीतलता, पावे नहीं खर-धरनी ॥५॥
मणि माणिक रत्नो उर में पर, शोभ न पावे धरनी ॥६॥
भाव धर्म स्पर्शन बिन निष्फल, तप जप संयम करनी ॥७॥
शब्द शास्त्र सह भाव-धर्मता, सहजानन्द निसरनी ॥८॥

(१३१) विरह की सार्थकता

हरिगीत-छंद

चर-अचर मिल है देह धारी जीव तीन प्रकार के ।
आनन्दघन भी दुखी भी रोगी यहीं संसार के ॥
आनन्दघन जो आत्म में परमात्म अनुभव से छके ।
हैं तृप्त अपने आप से वे सन्त आत्मा पा चुके ॥१॥
जिज्ञासु, योगी, भक्त तीन प्रकार के दुखिया सही ।
परमार्थ की जिनके हृदय में विरह-आगि सुलग रही ॥
तत्त्वाववोध-स्व-योग प्रभु के लिये ही अकुला रहे ।
वे इन्द्र-राज-विभूति-पद कीर्त्यादि को न कभी चहे ॥२॥

ढोंगी स्वआत्मा भूल करके मोह मद चकचूर हैं।
उन्हें नहीं है नित्य-जीवन की गरज विषयी रहे।
अनवरत भोगों के उपासक सज्ज रहे भव-रोग को।
रौरव नरक की भी नहीं परवाह वे चहें भोग को ॥३॥
सुख-दुखाभासी ढोंगियों के भेद दो हैं भव-वने।
सुखभास भोगों में चिपक कर भमत हैं विष-मद-सने ॥
हैं जले अन्तर्दाह से सुख की झलक दिखला रहे।
वे अन्य प्राणी कुचलने मे आप गौरव ढो रहे ॥४॥
दुखभास भोगों के लिये ही छटपटाते हैं सदा।
वे दुखी-सा रहते सदा उन्हें न दुख असली कदा॥
सुखभासियों की करें इर्षा लहे चैन नहीं कभी।
सत्साधना के अनधिकारी मूढ हैं ढोंगी सभी ॥५॥
जीवन वही आनन्द-गंगा जहा लहराती रहे।
या हृदयानंदावरण को अनवरत विरहानल दहे॥
पर ढोंग अपनाना यही है टिकट विभ्रम रेल की।
दर दर भटक शिर पटकना यही गेर है वद फेल की॥६॥
अत. विरह साधक-जीवन का है आवश्यक साधन महा।
जिसकी कृपा से मिलें साधक साध्य में अपने अहा!
जिज्ञासु-तत्व अभेदता प्रभु-भक्त योगी-योग में।
क्रमशः त्रिभेद अभेद हो रहे छके सहजानन्द में॥७॥

(१३२) आत्म-स्वरूप

दोहा

मुझ निर्मम सम घर हुं, मुझ आलंवन हुंज।
देहादि अह मम वधुं, सो वोसरावुं छुंज ॥१॥
मुझ दृष्टि मा हूँ ज हूँ, ज्ञान चारित्र हूँ ज।
संवर योगे हूं खरे, प्रत्याख्याने हूं ज ॥२॥
जन्म मृत्यु दुख मा वधे, अरे एकलो हूँ-ज।
भ्रान्ति थी जन्म्यो मुओ, पण अहो अमर छू ज ॥३॥
शास्वत दर्शन ज्ञानमय, एक मुझ आतम राम।
अन्य संयोगी भाव सौ, तेनुं मने न काम ॥४॥
त्रिविधे त्रिविधे वोसिरे, दुश्चेष्टा करी जेह।
त्रिविधे सामायिक करूं, निर्विकल्प गुण गेह ॥५॥
वैर नथी मने कोई थी, सौथी समता पीन।
सौ आशा वोसरावी ने, न्यारूं समाधि लीन ॥६॥
दृश्य अदृश्य करी अने, अदृश्य ने दृश्य रूप।
ध्यावुं अलख स्वभूप ने, सहज समाधि स्वरूप ॥७॥

आप्त वैद्य

शंका मुक्त ही आप्त है, शका सव मोह सैन्य।
दर्शन-मोह विमुक्त जिन, क्षायिक दृष्टि जघन्य ॥१॥
घन घातिक अरि-हंत जिन, सर्वोत्कृष्ट विश्वास्य।
विकल सकल-व्रति मध्य जिन, आप्ते त्रिविधि रहस्य ॥२॥

त्रिविध आत्मा

आत्म वश अंतरातमा, परवश सो बहिरात्म।
आत्म-सिद्ध परमातमा, त्रिविध अवस्था आत्म ॥१॥
वृत्ति-परवश सो हीजडो, स्ववश वृत्ति सतिरूप।
परम - पुरुष - पति भक्तिए, प्रसवें आत्म - स्वरूप ॥२॥

(१३३) भेद विज्ञान

खण्डगिरि विजयादशमी ३-१०-५७

राग-कान्हडो

भिन्न छुं सर्वथी सर्व प्रकारे, म्हारो कोई न संगी संसारे···भि०
कोई न प्रिय-अप्रिय शत्रु-मित्र, हर्ष शोक शो म्हारे ?
मानापमान ने जन्म मृत्यु द्वन्द्व, लाभ अलाभ न क्यारे···भि० १
म्यान-खडग ज्यम देह संबन्ध मुझ, अवद्ध-स्पृष्ट सहारे,
नभ ज्यम सहु परभाव कुवासना, मुझ सम-घर थी न्हारे···भि०
निर्विकल्प प्रकृष्ट शान्त दृग-ज्ञान सुधारस धारे,···
ज्ञायक मात्र स्व अनुभव मित हूँ, विरमुं स्वात्माकारे ··भि० ३
केवल शुद्ध चैतन्यघन मूर्त्ति, एक अखण्ड त्रिकाले ;
परमोत्कृष्ट अचिंत्य 'सहजानंद' मुक्त सुख-दुख भ्रम जाले, भि० ४

(१३४) भेद-विज्ञान पद हिन्दी

राग केदार

भिन्न हूँ सब से सब ही प्रकारे, मेरो कोई न संगी संसारे ··भि०
कोई न प्रिय अप्रिह शत्रु–मित्र, हर्ष शोक न ह्मारे०
मानापमान रु जन्म-मृत्यु द्वंद्व, लाभ-हानि न हमारे भि० १
म्यान-खड्ग ज्यों देह संबंध मुझे, अवद्ध-स्पृष्ट सहारे,
नभ ज्यों सब परभाव कुवासना, मुझ शम घर से न्यारे···भि० २
निर्विकल्प प्रकृष्ट शान्त दृग-ज्ञान सुधारस धारे,
ज्ञायक मात्र स्व अनुभव मित हूं, विरमूं स्वात्माकारे···भि० ३
केवल शुद्ध चैतन्यघन मूर्त्ति, एक अखण्ड त्रिकाले,
परमोत्कृष्ट अचिन्त्य सहजानंद, मुक्त सुख-दुख-भ्रम जाले··भि०४

(१३५) श्रद्धा-रहस्य

ता० ५-१०-५१

राग-आशा

समझो श्रद्धा प्रयोग प्रक्रिया, गुप्त रहस्य सुधीया···स०
इष्ट वस्तु ने जोवा जाणवा, अंधारे ज्यम दीया,
चेतना बेटरी चाप चांपी ने, फेले चिद्-ज्योति न्वकीया, स० १
धारण पोपण क्षिप्त ज्योतिनु', कार्य पर्यन्त रूढ़िया,
श्रत+दधाति इति श्रद्धाए, शब्द व्युत्पत्ति शुद्धिआ··स० २
दृष्टि-दृश्यनु' मिथ-परस्पर, भाव संग द्योतक 'या';
मिथ्या श्रद्धा दर्शन मोहक, आत्म-भ्रांति लहे जीया··स० ३
क्षिप्त ज्योति नु' पाछु' समावु', 'सम्य' ते आतम-हि्या,
आप आपने शोधी ठरवा, स्वार्थे 'क' प्रत्यय आ,··स० ४
सम्यक-श्रद्धा अर्थ निष्पत्ति ए, शब्द ब्रह्म मथ लीया;
आतम दर्शन-ज्ञान—रमण मा, कार्य करी साधकीया;···स० ५
सम्यक अंकित ज्योति सम्यक्त्वए, सर्व गुणांश उघडिया;
देह भिन्न केवल चिन्मूर्ति, सहजानंदघन प्रिया··स० ६

(१३६) अनन्तानुबन्धी कषाय स्वरूप पद

६-१०-५१

[वन्दना वन्दना वन्दना रे·· ए ढब]

जो-जो उभा सामे भटा रे, अनन्तानुबंधी चार चोरटा,
चोरटा चोरटा चोरटा रे, अनन्तानुबंधी चार चोरटा···
असीम परिग्रह फांसे फंसावी, तृष्णा समुद्र जल गटगटा रे· १
सत्संग प्रेम पीयूष हरी ले, ए छे अनंत लोभ नी लटा रे· ·२

चक्र वंचक छल दंभ कपट ए, जड़ लाभे दाव अटपटा रे…३
कंटक सम निज दोष ढंकावे, शिव-मग ठग माया छटारे…४
संतजीभे पग मेली ठेली-मग, मन चली चाल ठवटा रे… ५
ज्ञान अंधे भव धंधे धपावे, ए छे गुमान गज नी घटारे…६
सत्पथ सत्साधन संत-द्रोहे, आशातना ए चटपटारे · ७
अंखे लाली तन-तापे धृ्जारी, क्रोध फणीधर नी फटारे…८
चारे कपाय अनन्तानुबंधी ए, लूटे सम्यक्त्व-धन नी अटारे…९
दर्शन-मोह तोपे भ्रम पोपे, आत्म स्वभाव मुख घुंघटारे…१०
सत्संग-प्रेम निज दोष अरक्षा, संताज्ञा शरणे हटा रे…११
अनुभवपथ-पंथी सहजानंद, आत्मसिद्धि द्वार खटखटारे…१२

(१३७) अप्रत्याख्यानी कषाय-स्वरूप

७-१०-५७

राग-होरी

अविरति क्षोभ जमावे, अप्रत्याख्यान-तावे…
दिग्-भ्रम रोग गयो य छता ए, स्वास्थ्य लाभ न पावे,
प्रवृत्ति वण निवृत्ति काले पण, क्वचित अस्थिर स्थिर भावे
आतम-लक्ष खंडावे…अवि० १

ज्ञाने जे पर-द्रव्य-भाव नी, त्याग अवस्था कहावे;
अ=नहीं प्रत्याख्यान=प्रतिज्ञा, ठरवा दे न स्वभावे;
आत्म-प्रतीति छता ए…अवि० २

राष्ट्र कुटुंब समाज देश नी, फरजो उदये आवे;
ते ते चिन्ता चिन्तित चितडु, गृहस्थी गाड़ी चलावे
आत्म प्रदेश कंपावे · अवि० ३

पद-रक्षा अभिमान प्रवाहे, परिग्रह चिन्त लोभावे
नीति धर्म रक्षा छाने थी, माया क्रोध करावे,
निर्वृत्ति प्रवृत्ति समावे·· अवि० ४

कषाय ए अप्रत्याख्यानी, आत्म-प्रतीत प्रभावे,
सहजानन्दघन सम्यक् बलथी जीती निर्वृत्त थावे,
देशविरति अपनावे···अवि० ५

(१३८) प्रत्याख्यानी कषाय-स्वरूप

७-१०-५७

राग-सारंग

जीतो ठग प्रत्याख्यान ने··(२)

अप्रत्याख्यानी जे चारे, लोभ-क्रोध-छल-मान ने,
जीत्या ते निज आकृति बदली, प्रवृत्ति समय छले तने···जी० १
प्रवृत्ति-निर्वृत्तिमय जागृत काले, भजो स्वरूप निशान ने,
तेल-धार ज्यम करो अखंडित, तजो न अजपा जाप ने··जी० २
अमूल्य अवसर व्यर्थ न खोवो, गाडी आवी स्टेशने,
झबके मोती लेज परोवी, पड्या पछी झट उठने··जी० ३
आत्म-प्रतीति-लक्ष अखंडित, निद्रा-जागृति मा बने;
तो ते सर्वविरति धर साधु, पदवी सहजानन्दघने··जी० ४

(१३९) संज्वलन-कषाय-स्वरुप

राग-आशा ७-१०-५७

साधो भाई ! अप्रमत्त-पद लीजे, समय प्रमाद न कीजे··सा०

सम्यक्-ज्वलने चारे संघनी, समता लोभ कहीजे...
शिष्य हिते वक्रोक्ति माया, गुरुपद मान हणीजे··सा० १

प्रत्यनीक प्रति शिक्षा क्रोधे, बोधे भव्य बोधीजे··
एम संघ रखवाली करता, उद्भव ज्वलन शमीजे·· सा० २

स्वरूप लक्षे योग-प्रवृत्ति, पंच समिति वहीजे··
सयमित तन रक्षा काजे, तेथी पण विरमीजे··सा० ३

आत्म-प्रतीति-लक्ष अखंडित, तोय स्वरूप-स्थिति छीजे,
अखण्ड स्वानुभूति-च्युति ए, प्रमत्त-भाव तरीजे··सा० ४

मंद कपाय-सज्वलन जीती, अप्रमत्त थई जीजे··
स्वरूप-गुप्त-असंग-मौन रही, सहजानंद रस पीजे··सा० ५

(१४०) विरह

खण्डगिरि ८-१०-५७

लागी मोहे पियु मिलन की चटकी ··(२)

पूरव पश्चिम उत्तर दक्षिण, चउ दिसि भू-तीरथ की .
नदी-विवर गिरि-गह्वर खेटक, ग्राम नगर वन भटकी··लागी० १

तप जप व्रत यम नियमादिक सह, शास्त्र पुराणे अटकी .
व्यर्थ भये सब साधन अब तक, सच्चेगुरु विन लटकी··लागी० २

परख विना कच्चे गुरु-पद पर, वनी अंध शिर पटकी :
देव धर्म गुरु सतत उपासत, हटी न चाल घुंघट की··लागी० ३

पियु-मिलन-विधि पूछत ही कहे, वाते अंट संट की .
तातें तैसे कच्चे गुरु सो, अव मुझ मति छटकी·· लागी० ४

कलिकालें सच्चे गुरु दुर्लभ, यही चिन्ता खटकी :
यदि मिलें, लहुं पिय-मिलन-विधि, सहजानन्द घट की·· लागी०५

(१४१) विरह

राग-होरी ८-१०-५७

मेरे घट सुलगी होरी-किस विध जीउं मैं गौरी
पियु पियु रटतो पंखी पपैयो, सुन पियु सुमरन जोरी
पियु पियु पियु पियु सास उसासे, रटत रटत भई वौरी
प्रियतम मिलन मे भोरी···मेरे० १

ज्यों ज्यो सांस निसासा वाढत, वफ वफ ऐंजिन को री
त्यों त्यों विरहानल तनु व्यापत, नखशिख जारत लौ री···
जीवन आशा विछोरी ··मेरे० २

अंसुअन-धारा अविरत वरसत, तपत वुझात न मोरी :
वूझत जठरानल विरहानल-वाढ़त अचरिज ओरी
सूझत नयन कपोली ·· मेरे० ३

धव धव धवगत हियगत धमनी, तड़फत जिय मछलो री
किस कमलासन नाथ विराजत, सहजानन्द छको री :
तजि के विरहिनी भौंरी···मेरे० ४

(१४२) असली-नशा

खण्डगिरि ६-१०-५७

राग-होरी

सद्गुरु भंग पिलाई ··लाली अँखियन छाई···
आप छकी दोय छकी मोरी नयना, तन मन तपत बुझाई :
व्यापी रोमे रोम खुमारी, अधर रहे मुसकाई—
प्रेम सुधारस पाई ··स० १
वीणा घंट सितार बांसुरी, नौवत डफ तवलाई :
धौं धौं धप मप धननन वाजे, शंख मृदंग शहनाई—
अनहद शोर मचाई···स० २
कोटी चंदा सूर प्रकाशे, वीज चमक चमकाई—
खिली अमल कमल पांखुरियाँ, दिव्य सुगंध फैलाई
सूंघत भौंरी अघाई···स० ३
चिन्मय-सहजानदघन-मूरत्ति, आप विराजत आई .
सहस्रदली शय्या पै पियुजी, अर्द्धांगे अपनाई—
श्रद्धा सुमति वधाई ··स० ४

(१४३) सच्चे भक्त

खण्डगिरि ६-१०-५७

सच्चे भक्त न हों मन-चोर···
उदय प्राप्त परिग्रह तन धन, राज समाज की दोर :
अहँ-मम विहीन ट्रष्टी हो वे रहे, कर्म योगी कठोर···सच्चे० १
प्रभु-पद-वेदी मन वलिदाने, तर्क न फल की ओर,
प्राप्त परिस्थिति समरस विलसत, सुख दुख कल्पना तोर · सच्चे०२
लाभ अलाभ जन्म मृत्यु द्वन्द्व, सभी विकल्प मरोर ,
भूति-भगवन् न्याये सव मे, प्रभु दर्शन शिर मौर··सच्चे० ३
रहें निराश दास प्रभु के, स्मरण निरंतर जोर :
सहजानंदघन प्रभुपद सेवी, जारें कर्म अघोर··सच्चे० ४

(१४४) प्रेरणा

खण्डगिरी ६ १०-५७

राग-मालकोष

क्यों चोरो प्रभु को देकर मन...
देकर मन तुम देकर मन...क्यों०...
लेकर सर्वार्पण की प्रतिज्ञा, प्रतिपालन को करो जतन :
दत्त वस्तु को अदत्त-ग्रहण से, लागे श्रेष्ठो-पद लांच्छन ..क्यों० १
कर्म-बंध होवत अहं-मम से, मन दोषो यही परिभ्रमण :
पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,पुनरपि जननी जेल शयन ..क्यों० २
सभी परिग्रह मन अधीन है, मन चोरत हो सभी हरण .
भोगे-मैथुन झूठ ने हिंसा, पंच पाप में होत पतन ..क्यों० ३
मन ही संसार असार अशुचि, मन-मुक्ति यही सिद्ध-वतन :
सहजानंद प्रभु-पद मन बलिकर, मुक्त भक्त हो करो भजन...क्यों०४

(१४५) सत्संग-रंग

खण्डगिरी १०-१०-५७

राग-खम्माच

साचो सत्संग रंग, द्वन्द्व जंग जीते...साचो०
कल्पना-तरंग व्यंग, वासना-अनंग भंग :
तृष्णा-गंग छल छलंग, ढंग भये रीते..साचो० १
क्रोध-अनल मान-गरल, मोह-तरल मिथ्या-वरल :
भये खरल अमल-कमल, आप सरल चित्ते ..साचो० २
त्रिविध ताप पाप काप, आप आप-रूप व्याप:
सहजानंदघन अमाप, छाप संत नीके...साचो० ३

(१४६) मंगल-वाक्यो

खण्डगिरी १४-१०-५७

हरिगीत छंद

विद्या भण्यो टली नहिं अविद्या, फरे तुं भव-फालके,
शास्त्रो कण्ठाग्र छतां वृत्ति-जय ना कर्यो उपदेश दे,
मुंड्या विना मन, शिर-मुंडी साधु अनंती वार थई,
आचार्य थइ न सुधार्यो आत्माचार पेटभरो रही ·१
मृग-जल-स्नपित वन्ध्या सुता पोंखे तने नभ-पुष्प थी,
रे जीव ! क्यम चेततो नथी ? लेवा भमे सुख जड मथी,
वान्छा मायिक-सुख सर्व नी छोड्या विना छुटको नथी,
आ वचन श्रवण करी त्वरा थी चढ अभ्यास-पथे पथी···२
परिभ्रमण-काल अनादि थी साधन अनन्ता तें कर्या,
पण ते थयां सौ व्यर्थ सद्गुरु-गम विना उलटां फल्यां;
एक संत न मल्या सत् सुण्युं-श्रद्धयुं नहिं तें मात्र ते,
मल्ये सुण्ये श्रद्धये आत्म थी भणकार मुक्ति नो थशे···३
कोई पण प्रकारे शोधी-परखी संत-पद-पूजारी वन,
मन-वचन-तन नैवेद्य तर्पी आत्म-अर्पी कर प्रशन्न,
जो परम प्रेमे संत-आज्ञा दंभ रहित आराधशे,
तो सर्व मायिक-वासना तुझ ज्ञान घर थी भागशे··४
उपर्युक्त वाक्यो मान्य मंगल रूप संत-अनंत नां,
आगम-अनंता संत-वाक्ये शब्दे-शब्द-एकेक मां;
छे आत्म मा वे अक्षरे पथ-मोक्ष प्राप्त-पमाडशे,
गुरुराज-भक्ति भक्त सहजानंदघन-पद पामशे···५

(१४७) साधकीय-व्रणदोष

राग धन्याश्री १४-१०-५७

विशुद्ध आतम-ध्यान···जीवने...मोक्ष-साधन वलवान···
प्राप्ति तेहनी थाय कदापि न, वण निज आतम-ज्ञान···जीवने० १
ते सद्‌बोधे ते सद्‌गुरु ना, आश्रय-संग-वहुमान···जीवने० २
थयो अद्यापि ते संत्संग निष्फल, वण सद्‌गुरु ओळखाण···जीवने० ३
'हुं जाणुं छुं–हुं समझुं छुं, ए डहापण अभिमान···जीवने० ४
'परिग्रह-प्रेम' थवा दे न संत पर, प्रेम अखट अकाम···जीवने० ५
'अपकीर्त्ति-अपमान-लोक-भय, परम-विनय धन हाण···जीवने० ६
सन्निपात-त्रिदोपे दुपित-मन, थाय न संत-पिछाण···जीवने० ७
तास निमित्त-कारण 'असत्संग', स्वच्छंद, छे उपादान···जीवने० ८
आडा नडे संत-आज्ञा-भक्ति मा, तोय न चते अजाण···जीवने० ९
चेती सद्‌गुरु–शरण सनाथे, सहजानंद निधान·· जीवने० १०

(१४८) मूल भूल

राग कान्हड़ो १५-१०-५७

जीवडो पोते पोता नी भूले, असथो भ्राति हिंडोले झूले··
तेथी सत्सुख ने वियोगो, दर्शन मोह त्रिशूले,
सुख शोधे निज तत्त्व-अवोधे, त्रिविध-दव भव चूले ··जीवडो० १
वार अनंती नरक-निगोदे, दुखियो आग-वबूले,
स्थावर-जंगम तिर्यंच-स्वांगे, रगडायो जल-शूले··जीवड़ो २
देवपणे निज दैवत खोई, विपय लोलुपी भूले;
दुर्लभ मानवता ने वगोवे, वक्र-जडो थइ फूले·· जीवडो० ३
फुट-वॉल ज्यम मूढ कूटातो, जो निज भूल कवूले,
सत्संगे लहे तो सहजानन्द, नहि तो चूल थी ऊले ··जीवड़ो० ४

(१४९) मन ना १८ विघ्नो

१६-१०-५६

[धोबीड़ा तुं धोजे मन नुं धोतियुं रे, ए ढव]

दोषो अढार कहुं सांभलो रे, मन ना निग्रह मां विघ्न रे;
मनोजये तत्त्वज्ञानथी रे, तारो स्व-आतम सुज्ञ रे···दो० १
आलस[१] अनियमित[२]–ऊंघवुं रे, विशेष-[३]आहार उन्माद[४] रे;
माया[५]-प्रपंच विलासता[६] रे, काम[७]-अनियमित-अमर्याद[८] रे···दो० २
तुच्छ वस्तु[९] थी फुलाववुं रे, रस-गारव[१०]-लुब्ध प्रयोग रे;
कारण विना ज कमाववु[११] रे, आप-वडाइ[१२] अतिभोग[१३] रे·· दो० ३
पारका अनिष्ट[१४] ने-इच्छवुं रे, झाझा नो स्नेह[१५] गुमान[१६] रे,
एक्के सुनियम[१७] न साधवो रे, आव-जा अनुचित[१८] स्थान रे.. दो० ४
दोषो अष्टादश नाशथी रे, करो मनोजय भव्य रे;
सधे स्वरूप-लक्ष वहुलता रे, सहजानन्द प्राप्तव्य रे...दो० ५

(१५०) सम्यक्त्व नां पाँच लक्षणो

खंडगिरि २३-१०-५७

राग-खम्माच

आत्मदशा पाच चिन्ह 'समकित' स्वभावे...
अरे जीव ! थोभ !! थोभ !!! केम लहे भ्रान्ति-क्षोभ ?
साचो निर्वेद वाह्य-वत्तना छोडावे...आ० १
शोधी एक साचा-संत, चरण-शरण मा वसंत;
वोध वचने तल्लीन, वेसी-'श्रद्धा' नावे...आ० २
उदित-उदयागामी-लाय, कषाय-वृत्ति शमाय;
'प्रशम'-जले न्हाय ते, कमाय शाति दावे...आ० ३
देह भिन्न आप सुखी, देहाध्यासी सर्व दुखी;
दुखी-दुखे दिल 'दया' ज, स्वात्म तुल्य आवे...आ० ४
सर्व चाह-ग्राह मरी, तेज शाहन् शाही खरी;
'संवेगे' सहजानन्द मुक्ति-राह धावे...आ० ५

(१५१) अमी-वर्षा नूतन-वर्षाभिनंदन

वि० सं० २०१४ का० सु० १ ता० २४।१०।५७

राग-मालकोश

वर्षो प्रभु अमी-वर्षा सदा...(२)
संवर-धम सुमर्म प्रवोधे, वोधी समाधि स्व-संपदा;
तत्त्व सत्त्व सम्यक्त्व स्वभावे, दृग्-ज्ञाने समता यदा...व० १
प्रभु-पद स्वरूप-विलास-भवन मां, रमता राम रमे तदा;
भासन स्थिरता आत्म स्वरूपे, श्री सहजानन्दघन-रस प्रदा...व० २

(१५२) उपदेश

कव्वाली खंडगिरि २५-१०-५७

हे जीव! तू भ्रमा मत, कहूं वात तेरे हित की,
आनंद है अंतर में, सम-श्रेणि खोज चित्त की...१
जो रत्न चित् निधि के, अप्राप्य जड़ निधि से;
निर्दोष शांति आनंद, है प्राप्य चित् निधि से...२
वहिरंग जड-खजाना, चित्-कोष अन्तरंगे,
क्यों विषम-श्रेणि भटके, तू! पंच विषय संगे...३
तज कर्म-कर्मफलदा, द्वय चेतनावलंवन,
भज ज्ञान चेतना को, होगा निरावलंवन...४
प्रत्यक्ष अनुभवेगा, आनंद गंग तत्क्षण;
तव सहजानंदघन तू! कहलाएगा विचक्षण!...५

(१५३) चार अवस्थाएं

राग-आशा २५-१०-५७

अवधू! तुर्या-अवस्था तेरी, ज्ञान-सुधारस-डेरी...
आत्मज्ञान अरु देहभान दोय, रहें सुषुप्त वंधेरी;
द्रव्य-भाव सुषुप्ति-अवस्था, मृतक प्राय अंधेरी...अवधू० १
स्वप्न-सृष्टि ज्यों देहादिक पर, अहं-मम भूत लगेरी,
आत्म अभाने द्वंद्व-अशांति, स्वप्न-अवस्था ठगेरी...अवधू० २

सम्यक्-श्रद्धा योग प्रयोगे, स्व-पर-विज्ञान सधेरी;
आतम-दर्शन-ज्ञान-रमणता, जाग्रति साधक चेरी...अवधू० ३
पूर्ण केवल-चैतन्य-घन मूर्त्ति, मुक्त जीवन भव-फेरी;
अनंत-चतुष्ठय भूप स्वरूपे, तूर्या अवस्था येरी...अवधू० ४
सद्गुरुराज कृपावल से ये, स्वप्न सुपुप्ति नशे री,
जागृत उज्जागृत हो अपना, सहजानंद विलसे री...अवधू० ५

(१५४) शीलोपदेश

८-१-५८

क्षत्रियकुंड-हिल प्रवेश—पोष दशमी २०१४

पराभक्ति पढो सुमति ! सुशीला तुम वनो सच्ची;
प्रभु की भक्ति विन तेरी, महिमा शील की कच्ची...१
शरीर भिन्न आत्म-ज्योति में, रहे चित्त वृत्ति लीन यदा;
यही चारित्र धर्म यही, सुशील-स्वभाव सौख्य-प्रदा...२
कुशील-तन से लहे जीव नर्क, तन सुशीले नृ-स्वर्गीय-भोग;
शुद्धात्म-सुशील से मुक्ति, सधे प्रभु भक्ति से यह योग...३
अतः प्रभु-भक्ति की युक्ति, पठित हो दे परीक्षा शील;
रमो निज शुद्ध सहजानंद, वमो यह दुखद भव मंजिल...४

चित्रकाव्य १

अेकविंशति-दल-कमल-वद्ध दोहा—

शम दम खम गम अममता । मन मह-मग सम-सीम ॥
महि मह मठ यम-भ्रम मरा । नम नम मम-मति हिम ॥१॥

चित्रकाव्य २

द्वाविंशति-दल-कमल-बद्ध-दोहा

जिन चरनन नत-नयन मन—मनन जनन विज्ञान ॥
अरि-वन-खनन-हनन शरन धन ! धन ! नर-तन शान्त ॥२॥

१-३-५८

(१५५) ज्ञानमीमांसा के दोहे

देहरादून-तपोवन ता० २०-५-५८

[लाला दीपचन्दजी जैन के आग्रह से स्वकृत ज्ञानमीमांसा से उद्धृत एक अंश का हिन्दी अनुवाद—]

केवल पर व्यवसाय जहँ, अप्रमाण अज्ञान।
मान्य स्व-पर व्यवसायता, साधकीय सद्‌ज्ञान ॥१॥
केवल निज व्यवसायी है, केवलज्ञान स्वरूप।
यही लक्ष्य अभ्यास से, प्रगटत आतम-भूप ॥२॥
सुमति=मार्गानुसारिता, कुमति=उन्मार्ग-खान।
संत-बोध ही सुश्रुत है, कुश्रुत=अन्ध जवान ॥३॥
सत्पथ हद लंगत नहीं, अतीन्द्रिय अवधिज्ञान।
केवल रूपी जड़ लखत, विभंग-अवधि-अज्ञान ॥४॥
पर - मनः पर्यय भी जहाँ, पावें पर्यवसान।
समाधिष्ठ-मन पथिक का, सो मनःपर्यव ज्ञान ॥५॥
चलत पंथ भी ज्यों सभी, मार्ग बाह्य भी गम्य।
नहीं चाह यदि बाह्य की, तव केवल पथ रम्य ॥६॥
केवल-पथ परमावधिज, यही परमावधि ज्ञान।
तहाँ विश्व - सर्वज्ञता, सो सर्वावधि ज्ञान ॥७॥
सर्वावधि से ज्ञात जहँ, लोकालोक स्वरूप।
ज्ञान त्रिकालिक विश्व का, यही सर्वज्ञ स्वरूप ॥८॥
ज्ञात फिर फिर क्यों लखें, ज्ञप्ति-तृप्ति अभंग।
आप आप में परिणमत, केवलज्ञान असंग ॥९॥

मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यव, स्वापेक्षक चिद्-अंश।
ये प्रातिभ तारतम्यता, तिमिर=अज्ञता-ध्वंश ॥१०॥
प्रातिभ=केवल वीज है, अरुणोदय चिद् ज्योत।
तस फल केवलज्ञान घन, सूर्योदय उद्योत ॥११॥
द्रव्य भाव पर ज्ञेय का, संग नहीं लवलेश।
मात्र अकेला ज्ञान ही, केवलज्ञान विशेप ॥१२॥
उपयोगे उपयोग की, घनता सधी अखंड।
कार्य स्वभावी निर्विकल्प, केवलज्ञान असंद ॥१३॥
अरुण प्रकाशे सूर्यवत्, ज्यों सवही देखंत।
त्योंहि प्रातिभ-ज्योति से, स्व-पर प्रत्यक्ष लखंत ॥१४॥
लखत स्व-स्वरूप सिद्ध सम, देह[1]-भिन्न असंग।
शुद्ध - वुद्ध चैतन्यघन, सहजानंद अभंग ॥१५॥

---

१ त्रिविध कर्म

(१५६) शीलोपदेश

वीर सं० २४८५ का० सु० १३

महालक्ष्मी, ऊन ता० २४-११-५८

राग धन्याश्री

सतीयां ! रहो दृढ़ शील प्रवास ! शील ही ब्रह्म निवास…स०
जगत ऐंठ जड-वीर्य अचौर्य, अमूर्छित चित जास ;
शील जीवन ही सत्य अहिंसा, अंतर-ज्योति-प्रकाश…स० १
शील विराधत फल देखो, डुक्करी जनन प्रयास ;
कुक्कड़ी कुत्तियां गधियां रँडियां जीवन धिक् धिक् तास…स० २

चेतत चालो पुरुष व्याघ्रन सों, धूर्त्त कामी प्रिय-भास ;
तकें शिकार ज्यों बुगला मच्छ को, करो न रंच विश्वास ~ स० ३
हुआ अग्नि भी जल शीतल ज्यों, महिमा शील सुवास ;
शील निष्ट महासती सीताजी, पद प्रणमुं सोल्लास · स० ४
स्वरूप लक्षे योग प्रवर्त्तत, आत्मनिष्ठ अभ्यास ;
शील ब्रह्म निष्ठा परमार्थिक ! सहजानंद विलास···स० ५

(१५७) शीलोपदेश

महालक्ष्मी ऊन ता० २४-११-५८

राग-धन्याश्री

रे सति ! तज नर-पशु जन संग, पडत शील में भंग···रे०
सुंघत सुंघत लपकत लंपट, मृगनयनी मृदु अंग ;
सदा अतृप्त नर-व्याघ्र व्याधमन, नयन वक्र मुख व्यंग · रे० १
फुत्कारें फणिधर ज्यों फुत फुत, फादत कुनर भुजंग ;
डंकत व्यापे विषम विकलता, धधकत अनल अनंग···रे० २
अर र र ! यौवन वाग उजाडें, वानर-नर विकलंग ;
कोमल कलियाँ कुम्पल फल सव, तोड़ मरोड़ अपंग···रे० ३
जहाँ से निकले तहाँ चाटत छी ! मुत्र-पुरीष सुरंग ;
लड मरें नर कुत्ते हरामी, करत परस्पर जंग·· रे० ४
दगावाज नर वाज तके नित, ज्यों तीतर शिशु तंग ;
सावधान हो शील धर्म भज, सहजानंद अभंग···रे० ५

(१५८) महेश

शिववाड़ी-बीकानेर २५-१-५६

मानव जो भजे जिनेन्द्र महेश, तो छूटे भव क्लेश··मानव···
स्तवन स्मरण करी श्वास उश्वासे, भजतां प्रभु ने हमेश ;
रटतां जिन पद निज पद पामे, आत्म स्वरूप स्वदेश··मानव···
ममता मोह मान मदमारी, मन धरी आत्म प्रदेश ;
हे जिवड़ा तुं भज प्रभु ने नित्य, तज रे प्रमाद अशेष··मानव···
शमाई जा निज आतम भवन मां, समजी जुदो तन-वेश ;
जीवन मुक्त सहजानन्दघन था, साचो देव महेश··मानव...

(१५९) प्रार्थना

शिववाड़ी-बीकानेर ३०-१-५६

चंचल चित चिहुं दिशि भटकत है (२)
दुर्दम दुर्गम दुर्पथ दौडत, दोप दावानल पटकत है···चं०
मार्ग-महंत मानवता मौडत, मन्मथ मोहे अटकत है···चं०
मारत मारत मस्तक हंटर, मानत नहीं अति नटखट है··चं०
साह्य करो प्रभु सहजानंदघन, तेरो शरण एक ही सत है···चं०

(१६०) योग-दृष्टि-समुच्चय सार पद

हरिगीत ४-२-५६

तृण तेज सम-भा खेद-क्षय, अद्वेष यम मित्रा महीं
छाणाग्नि-भा अनु द्वेग जिज्ञासा नियम तारा अहीं
काष्टाग्नि-भा अविक्षेप सुश्रूषा सधे आसन वला
अनुत्थान, दीप प्रभा श्रवण प्राणायामी दीप्रा भला···१
रत्ना-भ, भ्रान्तिक्षय, स्थिरा, निज वोध प्रत्याहारणा
तारा-भ कान्ता, अन्यमुद् क्षय, गुणमीमासा धारणा
भवरोग-क्षय रवि-भा प्रभा मा ध्यान सत्प्रतिपत्ति ज्यां
आसंग-क्षय शशि भा परा स्व प्रवृत्ति सहज समाधि त्यां···२

(१६१) प्रेरणा

४-२-५६

जीया तू दीया जला दिल का…(२)
जीव शरीर जुदा दिखला ज्यों, खली तेल तिलका…जी०
भंग अनादिय मोह ग्रंथि हो, आत्म भ्रांति छिलका…जी०
वमन विरेचन रागद्वेष कर, शाम्य धर्म झलका…जी०
रीति ऋषिजन भीति भगा हो, सहजानन्द हलका…जी०

(१६२) सत्संग प्रेरणा अवंचक त्रयी

४-२-५६

प्रतिदिन नियमित सत्संग करो…(२)
भाव विशुद्धे संत-शरण गृही, योग-अवंचक मच ठरो…प्र०
वर्त्तत वच-तन-मन आज्ञाधीन, किरिया अवंचक राह खरो.. प्र०
तीर्थपति निज जिनपद पावत, फल अवंचक भ्राति हरो…प्र०
रामपुरी आराम स्वधामे, सहजानंदघन सिद्धि वरो…प्र०

(१६३) मन पंछी पद

१५-१०-५६

चंचल मन-पंछी चुप रहो!
पंख विना उडत रे अंधा! इधर-उधर क्यों झाकत हो… चं०
हाथ विहीन कछु हाथ न आवत, पांव विहीन क्यों फांदत हो…चं०
मुख विहीन क्यों मुख मरोडत, नाक विहीन नकटाइ करो…चं०
रे वधिर! सुन वात हमारी, सहजानन्द प्रभु शरण गहो…चं०

(१६४) निज चेतावनी पद

११-२-६०

जीया तू चेत सके तो चेत, शिर पर काल झपाटा देत··

दुर्योधन दुःशासन वन्दे ! कीन्ही छल भर पेटः

देख ! देख ! अभिमानी कौरव, दल बल मटियामेट ः जीया० १

गर्वी रावण से लंपट भी, गये रसातल खेट :

मान्धाता सरिखे नृसिंह केई, हारे मरघट लेट ; जीया० २

डूब मरा सुभूम से लोभी, निधि रिद्धि सैन्य समेत ;

शक्री चक्री अर्ध चक्री यहां, सब की होत फजेत ः जीया० ३

ता तैं लोभ मान छल त्यागी, करी शुद्ध हिय खेत :

सुपात्रता सत्संग योग से, सहजानंद पद लेत : जीया० ४

(१६५) सात्विक आहार-दान विधि

रामकुटी आत्म-विज्ञान भवन

हृषिकेष ५-५-६०

नमोस्तु ! नमोस्तु ! तिष्ठो ! तिष्ठो !

आवो पधारो गुरुराज ! रंक झोंपड़ी में

प्राशुक अन्न जल काज··रंक झोंपड़ी में

निर्जन निर्मल इसी जंगल में, दास ने सजाया साज···रंक०

कुटी दिवार अंगन मृदु मृण्मय, फूस का छाया है छाज··रंक०

उपर छायी गारवेल अति शीतल, चटाई चंदोवा प्याज···रंक०

शिला चट्टानमय पाटा तखत ये, विराजो यहां शिरताज···रंक०

पांव पखारूं अर्घ उतारूं, करूं क्षुधा-तृपा इलाज···रंक०

मिट्टी वरतन में मट्ठा विलोया, मीठा विशुद्ध सत्तू स्वाद···रंक०

तुंवी पात्रे प्राशुक गंगोदक, शुद्ध फलादि प्रसाद···रंक०

मन वचन तन भोजन शुद्ध है, करो सिद्ध भक्ति महाराज···रंक०

ना हो विलंव अव हंस तडफत है, आरोगो गरीवनिवाज···रं०

आहारदान के चिर मनोरथ, फूले फले अहो ! आज···रंक०

जय हो जय ! जग निर्ग्रंथ-चर्या, स्व-पर निस्तारक जहाज···रंक०

अहो दानं ! अहो दानं ! वदे देव, सहजानन्द स्वराज···रंक०

(१६६) स्याद्वाद वैशिष्ठ्य

हृषिकेश ६-५-६०

हंसा ! रूठ गये तुम कैसे !

सुनि ॐ शान्ति ध्वनि भक्तन की, समझे अर्थ अनैसे ;

वे नूतन जन चिर परिचित तुम, विधि निषेध जहँ जैसे···हं०१

शब्द शब्द के अर्थ विभिन्नता, आशय भाव विशेषे ;

अर्थ-ग्रहण सापेक्ष सुनय विधि, कही स्याद्वाद जिनेशे ··हं० २

राग-द्वेष अज्ञान मिटत है, जिन सिद्धान्त प्रवेशे ;

सहजानन्द रस धारा वर्षत, आत्म प्रदेश-प्रदेशे···हं० ३

(१६७) धूप-दशमी रहस्य

राजपुर, सुगन्ध-दशमी १-९-६०

भादवा सुदि १० सं० २०१६

राग-पूर्वी

मैं ऊजवँ, धूप-दशमी व्रत चंग ;
प्रगटी अनुभव गंग···मैं···

तन-मन्दिर ज्ञायक वेदी स्थित, चिन्मूरति सरवंग ;
दश दिशि-अंवर तान चंदोवा, छत्र त्रिरत्न अभंग··मैं० १

गुरुगम-वल पट्-चारों भेदत, चक्र-व्यूह क्रम अंग ,
चक्र-चक्र प्रगटे चिद् ज्योति, दश दीपक मन रंग···२

महाशान्ति अभिषेक सुधारा, सुधा-वृष्टि उत्तमंग ;
प्रतिचक्र कमलाकृति विकसत, महके दिव्य-सुगंध··मैं० ३

दशों द्वार दश-मुख घट संवर, खेवूँ धूप-दशांग ;
उड़त धूम्र कार्मण आरति,-दश-शिख दश-ध्वज रंग···मैं० ४

दिव्य ध्वनि दश भेद संगीते, पढ दश पूजा उमंग ;
धान्य-सप्त धातु स्वस्तिक कर, मेटूँ चौगति-संग··मैं० ५

सुगंध-दशमी पर्व उद्यापन, रहस्य यही अंतरंग ;
अनुभव पथ पावे कोई विरला, सहजानन्द सुरंग...मैं० ६

(१६८) नूतन वर्षाभिनन्दन-पद

वीरात् २४८७ का० शु० १ २१-१०-६०

(गजल)

चेतन तुम्हे सदा हो, नूतन वर्षाभिनंदन···
जयकार हो तुम्हारा, स्व स्वागताभिवंदन···१
मारा मारा फिरा तूं, वीता मिथ्यात्व जीवन ;
पर हाथ कुछ न आया, पाया न आत्मदर्शन···२
पुण्योदये तुझे जव, मिला वीतराग स्पर्शन;
तव परमगुरु प्रतापे, समझा स्व और परधन···३
स्व-अर्थ=धन तुम्हारा, चैतन्य भाव पावन ;
जड़भाव धन पराया, तज कर किया विशुद्ध मन···४
परज्ञेय भिन्न केवल-चिद् ज्योति पिण्ड सोहम् ;
सोहं की लौ लगा कर, प्रविनष्ट क्षोभ मोहम्···५
दवी चेतना प्रगटी जव, निज क्षेत्र=वर्ष नूतन ;
सहजात्म-स्वरूप निष्ठित, स्वतंत्र सहजानंदघन···६

(१६९) प्रेरणा-पद

उदरामसर-धोरा-गुफा ११-११-६०

चाल—[जब तेरी डोली निकाली जायगी]

ला दिखादे अपने वहीवट की वही
लाभ-हानि हिसाव तूं वतला सही···१
दीर्घ-निद्रा काल झटपट आ रहा
पर परिणति में समय क्यों खो रहा···२

चंद रोज में चल वसेगा तूं कहां ?
दर्द दिल का नहीं मिटा अव तक यहां···३
जीव फिर भी चेतता नहीं क्यों अरे !
जैन नाम धरा न जीता मोह रे···४
नर-पशुता छोड अव नरसिंह वनो ;
रणभूमि में मोह-क्षोभ सुभट हनो...५
ईतर झंझट छोड आत्म-साधन करो ;
शम परायण सहजानन्द स्व-पद वरो···६

(१७०) पद होली

ता० २४-२-६१

राग-होरी

पिय संग खेलूं मैं होली, प्रेम खजाना खोली···पिय०
गुप्ति गढ चढ वंकनाल-मग, गये हम दशम-प्रतोली,
अशोक-वन अनुभूति-महल में, ज्ञान गुलाल भर झोली
रंग दी पियु मुँह-मौली···पियु० १
घट-पंकज-केसर चुन-चुन कर, पाडु-शिला पर घोली,
मिला सुधारस भर पिचकारी, पियु छिडकें हम चोली;
हम पियु पिंड डुवोली · पियु० २
पियु भी हम सर्वांग डुवोकर, पाप कालिमा धोली ;
वाजत अनहद वाजे अद्भुत, नाचत परिकर टोली ;
दिव्य संगीत ठठोली···पियु० ३
ब्रह्माग्नि सर्वांग ही धधकत, कर्म कंडे की होली ;
क्षायिक भावे खाक उडा फिर, वैठ स्वरूप खटोली ;
सहजानन्द रंग रोली···पियु० ४

(१७१) प्रेरणा

१३-३-६१

देह दुर्लभ नर की नर ! तुझ को मिली,
वीत गई उम्मर न आये निज गली १
लाख यत्न करो वहिर्मुख सुख नहीं,
लक्ष द्रष्ट्रा में धरो न फिरो कहीं २
राकडा तुम वाकडा वन लाओगे,
काय वच मन भिन्न निज धन पाओगे ३
जैन सच्चा हो जिनेश्वर पथ चले,
नर स्व-सहजानन्द-पद में जा मिले ४

(१७२) जिन-वाणी-स्तुति

अनन्त-अनन्त भाव भेद से भरी जो भली,
अनन्त-अनन्त नय निक्षेपे व्याख्यानी है
सकल जगत हितकारिणी हारिणी मोह,
तारिणी-भवाब्धि मोक्ष-चारिणी प्रमाणी है
उपमा देने का जिसे गर्व रखना ही व्यर्थ,
देने से दाता की मति मपाई मैं मानी है
अहो ! राजचंद्र वाल ख्याल में न लेते इसे,
जिनेश्वर-वाणी कोई विरले ही जानी है ॥ १ ॥

[श्रीमद् राजचद्र कृत गुजराती स्तुति का हिन्दी रूपान्तर]

(१७३) मंगल दीपक रहस्य पद

हम्पी १७-४-६२

जग मग जग मग जग मग हीया,
प्रगटाया प्रभु मागलिक-दीया,
अपने घट किया मागलिक दीया,
अर्हं मम गालक अर्थ-प्रक्रिया···१

केवल दर्शन-ज्ञान स्वकीया
द्विविध चेतना निज रस प्रिया :
भ्रम तम विघ्न विनाशक क्रिया
अनंतवीर्य अरि-अंत करी या...२

अनंत चतुष्टय स्वाधीन जीया,
मंग=स्व सहजानंद-पद लीया :
मंगल दीप रहस्य सुधीया !
अंतरंग विधि अनुभवनीया···३

(१७४) नूतन दम्पति ने मंगल आशीष

दोहा १२-५-६२

भोग शरीर ससार ए, छे अनादि भव रोग।
चिकित्सक थइ ने हरो, सहजानंद सुयोग ॥१॥
व्यभिचार न थवा कह्यो, दम्पति धर्म आचार।
करो धम अंकुश थी, काम अर्थ व्यवहार ॥२॥
विना धर्म अंकुश थी, काम अर्थ ज अनर्थ।
धर्मांकुशे मोक्ष दे, एज काम नें अर्थ ॥३॥
सहजानंद स्वरूप छे, निर्विकार चिद्रूप
विकार विष ने विरेचतां, सहजानंद अनूप ॥४॥
आशीस म्हारा वांचजो, नूतन दंपति आज
धर्म मर्याद न छोडजो, सहजानंद जहाज ॥५॥

(१७५) प्रेरणा

शरद् पूनम २०२०
(हम्पी) ता० ३-१०-६३

हां रे शुद्ध प्रेमी सत्संगी सौ आवजो हो राज !
जंगल मां भक्तो नी झुपड़ी···
हारे मले देशी साथे तेड़ी लावजो हो राज ! जं०

देशी आत्म बुद्धि धरे, आत्म स्वरूप मां प्रज्ञ ;
आत्म बुद्धि जड़-देह मां, ते परदेशी अज्ञ···
हारे परदेशी नो संग नवि जोड़जो हो राज···जं० १

धर्म क्रिया परदेशी नी, अन्तर्लक्ष विहीन ...
तप-जप किरिया खप करी, भवो भव भटके दीन ;
हारे दृष्टि अंधा ना धंधा ए तोडजो हो राज ··जं० २

वाह्य क्रिया वेषादि मा, वलग्या दृष्टि अंध;
गच्छ मत ममता थी लड़े, लहे न धर्म सुगंध···
हारे तेथी खोटी चर्चा नवि छेड़जो हो राज···जं० ३

संत इशारो सांभली, करो निज लक्षे भक्ति,
देह भान भूल्ये सधे, सहजानन्दघन युक्ति···
हारे तमे शिक्षा ए न्याय थी तोलजो हो राज···जं० ४

शरण-स्मरण गुरुराज नुं, एक ज निष्टा होय
आत्म-ज्ञान-समाधि ने, पामे नियमा सोय···जं०
हारे हैयुं भक्ति ना रंगे रंगावजो हो राज···जं० ५

(१७६) सांवत्सरिक खामणा

२०२० भा० सु० ४ गुरुवार ता० १०-९-६४

गजल-कव्वाली

खमावुं सव जीवो ने, थया होय दोष जे म्हारा,
भवो भव ना वधा खमजो, क्षमा धर्मे रही प्यारा…१

करुं हूं पण क्षमा सौ ना, थया होय दोष म्हारो प्रत्ये,
परस्पर खमो खमावी नै, आराधक आपणे थइये २

नि.शल्य थवा तणी ए रीत, सर्वज्ञे वतावी छे,
हृदय नी शुद्धता करवा, प्रणाली आत्म हितकर ए…३

मिच्छामि दुक्कडं मागुं, परम गुरुराज नी साखे,
करो स्वीकार सौ जीवो, अे सहजानदघन भाखे ..४

(१७७) महासती महिमा

१५-९-६४

जगमाता मैंने देखी अद्भुत मूरति, अ० जग०
जिन्हे प्रगट सर्वांग आतमा, हो गई नष्ट मिथ्यात्व मती··जग०
पैर चुवत है अष्ट महासिद्धि, नव निधि रिधि विस्तृत अती··जग०
गगन विहारे महाविदेहे, वंदे शास्वत तीर्थपति··जग०
कभी जायँ ए द्वीप नंदीश्वर, देव-देवी सह करें भक्ती··जग०
कभी जाय ए इन्द्रसभा में, धार्मिक संवादे सुरति··जग०
विनय करें इन्द्रादिक फिर भी, गर्व न धरें अकल विभूति··जग०
ऐसी अद्भुत आत्मदशा पर, महिमा न जाने अल्पमती··जग०
वाह्य वेश व्यवहार देख कर, कर्म वाधे कोई निंद्यमती··जग०
वंदो निंदो हर्ष शोक नहीं, सदा रहें निज अलख मस्ती··जग०
धन-धन हे धनदेवी महासती, आशीष सहजानंद वती ··जग०

(१७८) धर्ममाता धनबाई

धन-धन धर्म माता धनबाई, मेरी नैया पार लगाई ··धन०
सात हजार वर्षों पर मैं था, रुद्रमुनि मिथ्यात्वी बड़ा ही···धन०
आत्म-भान बिनु तप तपता था, कंठ भुजा रुद्राक्ष सजाई···धन०
मिथ्या देव गुरु धर्म प्रचारक, कर्त्ता-धर्त्ता मान बड़ाई ··धन०
व्याधिग्रस्त असहाय बना तब, महासति तुम करुणा बरसाई ··धन०
खान पान औषध उपचारे, स्वस्थ बनाया निच्छलताई ··धन०
जैन धर्म का मर्म बताया, जैनी बनाया ढोंग छुडाई···धन०
क्रमशः हुआ मैं जिनदत्तसूरी, युगप्रधान आचार्य बडा ही ··धन०
अब मैं हूँ देवेन्द्रदेव यहाँ, गुरु स्थानीय शक्रेन्द्र सभाइ धन०
अगले भव भव-मुक्त बनूंगा, हे सति ! ये सब तेरी कृपाइ धन०
प्रत्यक्ष हो गुरु दत्तसुरि वर, निज घटना यह मुझको सुनाई···धन०
सहजानंदघन प्रमुदित होकर, शीघ्र ही पद्यारूढ बनाई···धन०

(१७९) अलख बाबो

१-१-६५

देख्यो री मैंने अलख बावो जी ऐसो (२)
औरत को ये स्वांग सजा कर, लागै सत्पुरुष ही जैसो···दे०
सहजानंद रस छाक छक्यो फिरै, सुरनर सेव्य अशेषो···दे०
अंतर सावधान निज ज्ञाने, बहिरंग विचित्र निवेशो···दे०
लोक दिखावन खावत-पीवत, हंसे हसावे को कैसो···दे०
अंधी दुनियां समझ न पावै, करे प्रवर्त्तन तैसो···दे०
धन धनुबावो परख्यो हरख्यो मैं, जैसो देख्यो कहूं तैसो···दे०

(१८०) अनुपम बाग

[कुनूर-नीलगिरि]

वै० १५-२०२२

आये हम अनुपम वाग कुटीर
अनुपम वाग कुटीर···आये०

अनुभव-रस परिपुष्ट होइ जहां, वहत सुज्ञान सलील ;
आतम-हंस किलोल करत यहां, रोम हंसावे समीर··· आये० १

त्रिविध ताप उताप न लागत, मेटत भव भय पीर···
उन्नत नीलगिरी शृंग वैठत, होवत सवही अमीर···आये० २

कुनूर भी सुनूर वनत यहां; छीलर होत गंभीर ;
सहजानंदघन विलसत निशिदिन, रमता राम सुधीर···आये०३

(१८१) प्रेरणा

ता० ६-४-६७

पद कच्छी भाषा में

अैयें कित्त सुत्तो तुं टंगु पसारी
मुरखा ! वाजी वंनें तो हारी··· (२)
मोह निंधर जे सुपने में तुं, भक्कें उधरखी भाई !
जड़-काया के पिंढ रूपें मंन्नीं, केडी कैंयें मुडसाई···अैयें० १
तोजो-मुजो कैंयें वाटणी, तें में कैंयें लड़ाई ;
घडीक सुखी नें घडीक दुखी मंन्नीं, केडी कैंयें नफटाई···अैयें० २
घडीक टोंक हैं मुरकें, घुरकें-घडीक दंध किकडाइ
डुस्का भरी-भरी घडीक रूंएं तुं, घडीक फुन्नें हिच्चकाई···अैयें०३
जाग-जाग तुं अख्युं उघ्घाडी, न्यार स्वरूप अच्छाई,
अैयें एक्त संसार सुपन सें, सहजानन्द सवाई···अैयें० ४

(१८२) खामणा

८-६-६७

थया अमे खमी-खमावी नि शंक, वेसी राज प्रभु अंक···थया०
काल अनादि नो अनन्तानुवंधी, सिलक हतो भव-पक,
परमकृपालु शरणे जाता, आत्मा थयो नि.कलक··थया० १
शाता नो भिखारी भटक्यो, चोर्यासी मा रंक,
परम कृपालु कृपा थी ह्वे तो, सहजानंद सटंक ··थया० २

(१८३) नव दम्पत्ति आशीर्वाद

हम्पी १६-२-१९६६

भोग शरीर संसार यह, है अनादि भव रोग,
चिकित्सा इसकी कहूं, सहजानंद सुयोग··१
वचने को व्यभिचार से, दम्पति धर्म आचार,
करौ धर्म अंकूश से, काम अर्थ व्यवहार ·२
विना धर्म अंकूश ये, काम अर्थ ही अनर्थ,
धर्मांकुश से मोक्षप्रद, येही काम अरु अर्थ···३
जन्मान्तर संस्कारवश, उदित विकार ही कर्म;
आत्म भान समता वलै, शमन करौ यही धर्म··४
देह कुटुम्ब समाज अरु, देश राष्ट्र ऋण वन्ध;
उऋण होने के लिए, करौ स्वधर्म सम्वन्ध··५
पति पत्नी यह देह है, हम सहजात्म-स्वरूप;
जैसे सिद्ध भगवान हैं, निर्विकार चिद्रूप···६

निर्विकार प्रभु ध्यान से, उद्भूत विषय विकार;
फिर भी अङ्कुर होत हैं, लग्न-जीवन का सार…७
धर्म सुदर्शन चक्र से, कर्म रिपु बल नाश;
जड़ चेतन भिन्न होत है, प्रगटे ज्ञान प्रकाश…८
आशीष मेरा आपको, नूतन दम्पति आज,
धर्मी सुखी रहो सदा, सहजानंदघन राज…९

(१८४) श्रीजिनरत्नसूरि गुरु स्तुति

गुरुराया अहो गुरुराया रे जिनरत्नसूरि गुरुराया,
आज आचारज पद पाया रे, जिन० (आंकडी)
शाह भीमसिंह ओसवंशी तस, नंजबाई घरजाया,
ओगणी अड़तीसे लायजा नगरे, उद्भव जन्म धराया रे जि० १
व्यवहारिक कला कौशल्यमय, जीवन लघुवय पाया,
क्षणभंगुर निज देह पिछानी, वैराग रंगे रंगाया रे, जि० २
खरतर गच्छपति मोहन मुनिवर, शांत महंत कहाया,
कर्मविपाक सुप्रवचन सुनकर, प्रतिबोधामृत पाया रे, जि० ३
ओगणी अठावन विक्रम संवत, रेवदर अर्बुद छाया,
मुनि शिरताज श्रीराजमुनि गुरु, मुनि पदवी वक्षाया रे, जि० ४
काव्य कोष छंद न्याय ज्योतिष अरु, व्याकरणे चित्त लाया,
आगम प्रकरण पठनतया निज, त्याग रंग विकसाया रे, जि० ५
क्षमार्जव मार्दव मुक्त्यादि, यतिधर्मे महकाया,
क्लेश कुपंथ कदाग्रह, परिग्रह, त्यागी ममता माया रे, जि० ६

एकल आहार निहार वृत्तिधर, एकासन तप ठाया,
देश विदेश गुरू उग्र विहारे, केइक भव्य दृझाव्या रे, जि० ७
ओगणी छासठमे लश्कर नगरे, श्रीजिनयशःसूरि राया,
योगोद्वहन सह आवील तपकर, गणिवर पद विभूपाया रे, जि० ८
संघ आग्रह सह मुम्बापुरी में, जिनऋद्धिसूरि राया,
सूरि मंत्र अनुष्ठान पुरस्सर, सूरिपदे स्थपवाया रे, जि० ९
ओगणी सताणव धवल आषाढे, सप्तमी गुरु अशाया,
म्होत्सव दशदिन अवनव रंगे, वढते नूर सवाया रे, जि० १०
छत्रीस गुणगण सज्ज हुए गुरू, जन तन मन हर्षाया,
यत्किंचित गुरूजीवनदर्शन, भद्र आनद न माया रे, जि० ११

(१८५) मांगु अक्षत पद आप कनेथी

मूंगी मागणीए मागुं अक्षत पद आप कनेथी,
आप कनेथी गुरू ! आप कनेथी, मूंगी० (आकडी)
छे अविनाशी अर्थ अक्षत नो, शुद्ध अक्षत लावुं तेथी, अक्षत० १
नवतत्वो छे वीजभूत जेहना, करूं नंद्यावर्त्त अेथी, अक्षत० २
ज्ञान दर्शन ने चारित्रमयी ते, ढगली करूं त्रण जेथी, अक्षत० ३
सिद्धशिला पर ठाम छे जेहनो, अर्द्ध चंद्राकार एथी, अक्षत० ४
अक्षत पद फल लेवा मुंकुं छुं, गहुली उपर फल तेथी, अक्षत० ५
अेहवा संकेतथी शिव पद मागुं, वादीने त्रिकरणेथी, अक्षत० ६
तारक बुद्धिए करी करुणा गुरू, वाचो व्याख्यान आप तेथी, अक्षत० ७
मुक्ति दर्शक आप वाणी सुणी ने, व्रति वने भवि जेथी, अक्षत० ८
श्री'जिनरत्न' त्रयी प्रगटावी, भद्र पामे सुख एथी, अक्षत० ९

(१८६) जिनरत्नसूरि ने वंदना

वंदना वंदना वंदना रे, जिनरत्नसूरि ने वंदना,

गुरू वंदन प्रेम आनंद ना रे, जिन० (आंकडी)

छट्ठ अट्ठम तप अग्नि ज्वालाए, साधन कर्म निकंदना रे, जि० १

थाणा नगरीए रही चौमासुं, बोधन भविजन वृंदना रे, जि० २

परण्या भूपाल श्रीपाल ए नगरे, नरपति मातुल नंदना रे, जि० ३

शुद्ध भावे श्रीनवपद पूज्या, पुष्पो ग्रही अरविंद ना रे, जि० ४

तीर्थ तणी ए प्राचीनता नी, कोई काले थई खंडना रे, जि० ५

तेह उद्धार ने कारण आपे, हाथ धरी चैत्य मंडना रे, जि० ६

अद्‌भुत उत्तुंग रचना करावी, टाली ने केइ विटंवना रे, जि० ७

विध विध कोरणीमय पट रचना, मयणा श्रीपाल तास अंवना रे, जि०

एह प्रसाद छे आप गुरूवर नो, उज्वल कीर्ति अमंदना रे, जि० ६

खरतर गच्छपति रिद्धिसूरि गुरू, महके गुलाव तनु स्यंदना रे, जि० १०

चित्त झंप्युं दोस दर्शन थी, ग्रीष्मे ज्युं वावरी चंदना रे, जि० ११

सुशिष्य रत्नसूरि संघ सकले, भद्र भावे करी वंदना रे, जि० १२

(१८७) सुणो अम अर्ज जरी

(सिद्धाचल...क्रोडो प्रणाम, ए चाल)

श्रीजिनरत्नसूरि ! सुणो अम अर्ज जरी (आंकड़ी)

अम भाग्ये गुरू आप पधार्या, दुष्काले जलधर अणधार्या ;

चातक प्यास हरी...सुणो० १

कल्पवृक्ष ज्युं मरुस्थली मां, मुम्बापुरी नी लालवाड़ी मा ;

प्रगट्या तरण तरी...सुणो० २

मधुर गिरा अमृत वरसावी, भगवती सूत्र नुं पान करावी ;
गौतम प्रश्नोत्तरी…सुणो० ३

तदुपरात भावना अधिकारे, कथा विक्रम भूपति अति भारे ;
श्रवणीय सुरस भरी…सुणो० ४

वाणी सुणी कठीआरा आपे, दूर थया गुरू आप प्रतापे ,
अंतर उर्मि ठरी ..सुणो० ५

दर्शक पूजक अधिक संख्याए, केई जोडया व्रत जप तपस्याए ,
आपी बूटी खरी.. सुणो० ६

अति उपकार कर्यो गुरू अम पर, पूर्ण चढावो श्राद्ध श्रेणी पर ,
त्या लगी अहिं विचरी…सुणो० ७

भगवती सूत्र ने पूर्ण कर्या विण, संघ रजा आपे कारण किण ,
रहेजो स्थिरता करी.. सुणो० ८

जो न बुझावे प्यास सरोवर, तो शुं गोपद आश हे गुरूवर !
न्याय विचार धरी…सुणो० ९

बीड़ खेडी ने बाग बनाव्यो, फल आपे कम विण सिंचाव्यो ?
तेम अम स्थिति नरी.. सुणो० १०

आप संगति नो खप छे अमोने, तेहथी ज विनति करीए तमोने;
करो चौमास फरी…सुणो० ११

माटे गुरूवर अत्र विराजो, देशनामृत थी अमने निवाजो ;
दयालु दया करी . सुणो० १२

रवजी सेठ आदि सहु संघे, विनति करे छे अतिहि उमंगे ,
नयणे नेह धरी.. सुणो० १३

ओगणी अठ्ठाणु ज्ञानपंचमीए, गुरूवर नमी दु.खदव उपशमीए;
श्रेय विचार करी…सुणो० १४

(१८८) रत्नसूरिराज ने हुं वंदना करूं

रत्नसूरि राज ने हुं वंदना करूं, वंदना करूं गुरुवर वंदना करूं, रत्न०
आप देशनामृतो ने हृदयं मा धरूं, हृदय० गुरुवर हृदय मां० रत्न० १
वस्तुत. एहीज जैन धर्म छे खरूं, धर्म० गुरु० धर्म० रत्न० २
कामी रागी रुद्र पीर केम त्या जवु, केम० गुरु० केम० रत्न० ३
भर्यो छे मिथ्यात्व जेमा केम ते स्तवुं, केम० गुरु० केम० रत्न० ४
शुद्ध देव धर्म गुरु पाय हुं पडुं, पाय० गुरु० पाय० रत्न० ५
जीवदयामयी अहिंसक जीवन हुं घडुं, जीव० गुरु० जीव० रत्न० ६
माया क्रोध मान लोभ शीघ्र उपशमुं, शीघ्र० गुरु० शीघ्र० रत्न० ७
सत्य वचन केलवी असत्य ने वमुं, अस० गुरु० अस० रत्न० ८
अणपूछी अनेरी कोई वस्तु ना ग्रहु, वस्तु० गुरु० वस्तु० रत्न० ९
ब्रह्मचर्य स्नान थी पवित्र हुं रहुं, पवि० गुरु० पवि० रत्न० १०
दुष्ट विषय वासना ने तप तपी दमुं, तप० गुरु० तप० रत्न० ११
परिग्रह त्यागी आत्म रमणता रमुं, रम० गुरु० रम० रत्न० १२
पंच ए महाव्रतो थी कर्मने दहुं, कर्म० गुरु० कर्म० रत्न० १३
साद्यनंत भद्रकारी मुक्ति मा रहुं, मुक्ति० गुरु० मुक्ति० रत्न० १४

(१८९) चालो मली एक संगे साहेलड़ी

चालो मली एक संगे साहेलड़ी ! सूत्र साभलवा,
सूत्र सांभलवा आत्म ओलखवा चालो… (आंकडी)
जीव अजीव पुण्य पाप तत्वादि, जैन दर्शन ना दीवा. सा० १
शुद्ध देव गुरु धर्म पिछाणी, प्रेमे अमृत रस पीवा. सा० २

मान माया काम क्रोध क्लेशादि, छंडी ए सर्व विभावा. सा० ३
दु.खदायक राग द्वेष विध्वंशी, मुक्ति मारग मा जावा. सा० ४
घाती अघाती अष्ट कर्म संहारी, अमल अक्षय पद लेवा. सा० ५
जैनधर्म नो सार ज छे ए, करो कारज सहु एवा. सा० ६
भाखे भवि उपकार ने कारण, सूत्र श्री देवाधिदेवा सा० ७
तेथी साहेलडी श्रवणे सुणी ने, चाखो अमृत फल मेवा. सा० ८
शमी दमी जिनरत्नसूरि वर, प्राये निग्र्ंथी जेवा. सा० ९
तास नमी भद्र आनंद पावे, वरसी रह्या मेघ नेवा सा० १०

नोट :— न० १८४ से न० १८९ तक की रचनाए स० १९९७-८ मे वम्बई मे गुफित हैं। और "रत्नप्रभा" से उद्धृत की गई हैं।

(१९०) श्री जिनरत्नसूरि गहूंली

(राग—श्री सिद्धाचल ने सेवो भवियाँ)

रत्नसूरि गुरुराज ने वंदन, वंदन वारंवार तुमने ।। आंकडी ।।
पर उपकारी दयानिधी रे, पर दुख भंजणहार गुरुजी ।।१।।
तित उधारण प्राणीया रे, परम कृपालु मुनिराज गुरुजी ।
अंतरचक्षु उघाडीया रे, आतमज्ञान कराय गुरुजी ।।२।।
जंबूद्वीप ना दक्षिण भरते, मध्यखंड मनोहार गुरुजी ।
ते माहे सुंदर अति शोभे, कच्छदेश सुखकार गुरुजी ।।३।।
जन्म लियो गुरु लायजा गामे, श्रावक कुल शणगार गुरुजी ।
माता तेजबाई उर अवतरीया, पिता भीमशी भाई नाम गुरुजी।।४।।
छोडी मोह संसार नुं रे, आप थया अणगार गुरुजी ।
तीन रत्न ने साधवा रे, वरवा निज सुख सार गुरुजी ।।५।।

शात दान्त समता सिंधु रे, बाह्यातर तप धार गुरुजी।
जग जन ने प्र तवोधवा रे, करता उग्र विहार गुरुजी ॥६॥

मधुर ध्वनि दिये देशना रे, अमृत सम गुरु वाण गुरुजी।
भविजन आगल वर्णवा रे, सूधी जिनवर आण गुरुजी ॥७॥

एम अनेक गुणे भर्या रे, चरण करण ना भंडार गुरुजी।
रत्नसूरि गुरु पद नमुं रे, मुझ मन प्रेम अपार गुरुजी ॥८॥

(१९१) श्रीजिनरत्नसूरि गहूंली

(राग-सिद्धाचल ना वासी तुमने क्रोडों प्रणाम)

रत्नसूरि गुरुराज तुमने लाखों वंदन, तुमने लाखों वंदन।
वाल ब्रह्मचारी गुरुराया, पुण्ये तुमारा में दर्शन पाया।
सफल थयो अवतार, तुमने लाखों वंदन ॥ रत्न० ॥ १ ॥

दुनिया नी माया ने छोडी, मन ने धर्म ध्याने जोड़ी।
लीधो संजमभार तुमने लाखों वंदन ॥ रत्न० ॥ २ ॥

कंचन सम छे काया गोरी, जीवो ने शिव-मार्गे दोरी।
करो छो वहु उपकार, तुमने लाखों वंदन ॥ रत्न० ॥ ३ ॥

प्रमाण नय ने तत्व जाणों, जैनधर्म ना मर्म ने माणो।
दर्शन आनदकार, तुमने लाखों वंदन ॥ रत्न० ॥ ४ ॥

उपदेश शैली अपरंपार, जाणे सुणीए वारवार।
संसार तारणहार, तुमने लाखों वंदन ॥ रत्न० ॥ ५ ॥

तुम मुख दर्शन करवा काजे, मुंवई शहर थी आव्या आजे।
हैये हर्ष अपार, तुमने लाखों वंदन ॥ रत्न० ॥ ६ ॥

आवतुं चौमासुं मुंवई शहेरे, अम विनंती करिये मेहरे।
स्वीकारो गुरुराज, तुमने लाखों वंदन ॥ रत्न० ॥ ७ ॥

ये दोनों स०-२००० में प्रकाशित भद्र-पुष्पमाला

(१६२) दादा श्री जिनचन्द्रसूरि प्रार्थना

राग-भारत का डंका आलम में

दादाजी श्रीजिनचंद्रसूरि, गुरु दर्शन अमने आपो ने;
गुरु दर्शन अमने आपो ने, अम दुःख दोहग सहु कापो ने···दा० १
श्रीसंघ तणी छिन्न भिन्न दशा, छेदी करी एकता थापो ने;
निर्नायकता दूरे करवा, अम युगप्रधान एक आपो ने···दा० २
जिनरत्नत्रयी अवलंबनना, सुणीए उपदेश आलापो ने;
सुणी वीनति अम बालाओनी, सद्बुद्धि सहु ने आपो ने···दा० ३
[स० २००३ मे प्रकाशित गुजराती 'पच प्रतिक्रमण सूत्र' मे प्रकाशित]

—:०:—

(१६३) समज-सार

चारभुजा रोड आश्विन सं० २००७

जड़-चेतन अधिकार :—

पूर्ण ब्रह्म शुद्धातमा, चिदानद सद्‌राज;
परम कृपालु स्वरूपने, नमुं अभिन्न थई आज ..१
'स्यात्' पदांकित शब्द-ब्रह्म, कृपा शारदा माय,
स्वानंदे निजमा रमुं, समज-सार प्रगटाय...२
शुद्ध चिन्मूर्त्ति ते छतां, छे स्व-परिणति अशुद्ध;
रागादिक मल अशुद्धता, थाय समज थी शुद्ध···३
साध्य शुद्ध निज आतमा, तास थापना सिद्ध;
अविच्छिन्न सेवन थकी, साधक थाय समृद्ध...४

सिद्ध स्वरूप मन मन्दिरे, पधरावी सोल्लास;
समज हेतु सुविचारथी, करूँ तास सहवास...५

उपज-स्थिति-लय प्रति समय, ऐक्य परिणमन नित्य;
अनंत गुण पर्ययमयी, चिद्सत्ता निज सत्य...६

निज चिद् सत्ता-बीजने, ज्ञान-भवनमां वाइ;
स्थिरता रक्षक सोंपीने, रहुं अचिन्त सदाइ...७

दर्शन ज्ञाने रमणता, अे सनातन स्व-धर्म,
राग-द्वेष-अज्ञानमा, रमवुं ते परधर्म...८

धर्मी धर्मज एकता, सहजानंद विलास;
धर्मविमुखता धर्मीनी, दुःख संतति आवास...९

पर घर गत सति पत दहे, जडथित चेतन राय;
पर हद नृप केदी बने, निज हद सुखद सदाय...१०

काम भोग बंधन कथा, जगमां सुलभ असार;
चिदानंद अनुभव कथा, दुर्लभ केवल सार...११

चिदानन्द अनुभव विना, जे जाण्युं ते धूल;
अनुभव-पथ आरोहवा, त्याज्य प्रथम ए शूल...१२

स्वानुभूति गुरू सोंपी ने, निःशल्य मन निर्धार,
मुमुक्षुता बखतर सजी, था चेतन ! होशियार...१३

संत-बोध :—

छति ऋद्धि पण भान नहीं, तेथी मांगे भीख;
तुज वैभव तुज दाखवुं, माने जो हित सीख...१४

स्यात् पदांकित शब्दब्रह्म, ने संवेदन साख;
युक्ति बोधथी तुज कहुँ, सुण रे ! थई थिर थाप...१५
ज्योत घटादिक उभयनो, द्योतक दीपक जेम,
चेतन ! ज्ञायक भाव तुज, स्व-पर प्रकाशक तेम १६
दाह्याकार छतां दहन, दाह्य पणुं न धराय
ज्ञेयाकार छतां ज तुं, ज्ञेयपणे नत्र थाय...१७
दर्पण जल गत बिम्बना, जल दर्पणता पाय;
तेम दृश्य ज्ञेय बिम्बथी, चेतनता न पमाय...१८
ज्ञेय ज्ञान अनुभव समय, सोहं सोहं थाय;
ते स्वरूप तुजनो सदा, ज्ञायक भाव वदाय.. १९
क्षीर-जल न्याय अनादिथी, तुज सम्बन्ध जड़ साथ;
पण तुं-तुं जड-जड सदा, सौ सौ निज निज नाथ...२०
अनंत अवस्था पिंड तुं, एक अछेद्य अभेद;
सत्य दृष्टिए छो सदा, निर्विकल्प निर्वेद...२१
पामर जन प्रतिबोधवा, चारित्र दर्शन ज्ञान;
प्रमत्ताप्रमत्त भेदादि सौ, वे'वार मात्र प्रमाण...२२
चूरि आदि पर कालिमा, पन्नर वला पर्यंत;
सोल वलानी दृष्टिए, कनक अशुद्धतावंत...२३
जड संगे चेतन रह्यो, गुणठाणांत पर्यंत;
सिद्धस्वरूपनी दृष्टिए, तेम अशुद्धतावंत...२४
अशुद्ध विषय व्यवहारनो, निश्चय शुद्ध प्रमाण;
निज निज स्थाने सत्य पण, विरोध आपस जाण...२५

परमारथ उपदेशवा, साधन छे व्यवहार;
समज इशारा थी लहे, मुंगा बाल गमार...२६
पंक मिश्र जल जोइने, तरस्यो रहे अजाण,
कतक चूर्ण प्रयोगथी, पीए शुद्ध जल जाण...२७
कतक चूर्ण प्रयोग सम, निश्चयनय विज्ञान;
जड-चेतन भिन्नता करी, प्रगटावे निज ज्ञान ..२८
श्रुतज्ञाने अनुभव करे, ज्ञायक शुद्ध स्वरूप,
श्रुतधारी श्रुत-केवली, भाखे त्रिभुवन भूप...२६
निश्चय ज्ञान ते आतमा, गुण गुणी एक अभिन्न,
अक्षत कण एक ज थकी, पाक ज्ञानता पीन . ३०
निश्चय विण व्यवहारनो, नियमा फल संसार,
निश्चयने अवलंबीने, चिदानन्दघन सार...३१
शुद्धात्मा शुद्ध नय वले, जाण्यो जाय त्रिकाल;
तदनुकूल व्यवहार विण, कदी न लागे भाल...३२
जड-चेतन नवतत्त्वनी, शुद्ध नय वले प्रतीत,
हेयोपादेय ज्ञेयथी, सम्यग्दर्शन रीत.. ३३
बंध पर्याय समीपमां, नव तत्त्वो छे सत्य;
मुक्त स्वभाव समीपमां, जाणो तेज असत्य...३४
नय निक्षेप प्रमाण पण, तेमज सत्यासत्य,
शुद्ध स्वरूपनी प्राप्तिमां, निज निज स्थाने पथ्य....३५
जल निमग्न जल कमलनुं, स्पर्श परस्पर सत्य;
कमल स्वभाव समीपमां, पण ते स्पर्श असत्य...३६

स्वांग कालमा स्पर्शतां, जड चेतननी सत्य;

पण चैतन्य स्वभाव थी, वंध स्पर्श असत्य...३७

नाना पात्रो माटीनुं, अनेक पणुं ज सत्य;

माटी पिंड स्वभावथी, पण ते जाणो असत्य··३८

नर-देवादिक स्वांगथी, अनेक पणुं ज सत्य;

स्वांग मुक्त चेतन तणुं, अनेक पणुं असत्य...३९

भरती-ओटनी दृष्टिए, अथिर पणुं छे सत्य,

पण समुद्र स्वभाव थी, अथिर पणुं ज असत्य··४०

स्वांग गृहण ने त्याग थी, अथिर पणुं छे सत्य;

पण चैतन्य स्वभाव थी, अथिर पणुं ज असत्य··४१

पीत आदि गुण भेद थी, विशेपत्व छे सत्य;

पण सुवर्ण स्वभाव थी, विशेपत्व असत्य··४२

ज्ञानादिक गुण भेद थी, विशेपत्व छे सत्य

पण चैतन्य स्वभाव थी, विशेपत्व असत्य··४३

अग्नि स्थित जल देखतां, तप्तपणुं छे सत्य;

पण ते नीर स्वभावथी, तप्तपणुं ज असत्य··४४

जड निमित्त भ्रान्ति थये, छे सुख-दुःख ज सत्य;

पण शुद्ध सम्यग्-दर्शने, ते सुख-दुःख असत्य.. ४५

वर्तमान हालत कही, दाखवे चेतन भूल;

राय छतां भीख मागीने, कां करो कीर्ति धूल ? ४६

स्वभाव घर दाखल थवा, जगवे छे व्यवहार;

सीडी तजी ऊपर चढ़ो, अे अेनो उपकार··४७

परमां निजनी कल्पना, करवी ते संकल्प;

ज्ञेय भेदथी ज्ञानमां, भेद थवो ते विकल्प···४८

विकल्प सकल्पे भर्यो, ए अशुद्ध वे'वार,

निर्विकल्प अभ्यास मां, वाधक हेय असार . ४९

अवद्ध—स्पृष्ट-अनन्य ने, अचल-असंग चिद्रूप;

अविशेष जे दाखवे, ते शुद्ध नय नय-भूप···५०

आत्माकार सामान्य ने, ज्ञेयाकार विशेष;

ज्ञानभेद धुर सुखद छे, अन्य पमाडे क्लेश...५१

शाकाकार सामान्य जे, लूण लुब्ध स्वादंत,

ज्ञेयाकार सामान्य पण, ज्ञान मूढ न छिवन्त ··५२

ज्ञेयाकार सामान्य ते. ज्ञान लीन थाय सँत,

पारगत श्रुत सिन्धुनो, जन्म मरण दुःख अन्त ··५३

दर्शन-ज्ञाने रमणता, सेव्य सदा मुनिराय,

रत्नत्रयीनी एकता, निश्चय चेतन राय···५४

जाणी श्रद्धी सेवता, धनार्थीओ धनवंत,

तेम मुमुक्षु यत्नथी, चेतन सेव लहंत ··५५

तन तन-भाव तन-कर्ममां, हुंपद वर्ते ज्याय,

देहाध्यास अज्ञानता, दुःख दावानल त्यांय . ५६

तन धन परिजन जाति के, देश नगर वन गेह,

पर जड चेतन लक्षथी, वर्षे विकल्प मेह···५७

हुं—आ, आ—हुँ, मारूँ-आ, हुं अेनो, आ ठीक,

हतुं मारूँ आ, हुं हतो-अेनो, आ ज अठीक···५८

थशे मारूँ आ भाविमा हुं पण एनो थईश,
एम कल्पना मेघ थी, निपजे राग ने रीश ..५९

राग द्वेष वशता लहे, मूढ स्वरूप अजाण;
निर्विकल्प उपयोग मां, रमे ज्ञानी चिद् भाण ..६०

ज्ञान-अंध मोहित-मति, रही कल्पना युक्त;
वद्ध-अवद्ध पर द्रव्यमां, राखे ममत अयुक्त ..६१

चेतनता जड ना लहे, जडता चेतन राय;
जड-चेतननी एकता, नियमा कदी न थाय ..६२

जडने हुँ- मारूं कहे, अरे ! मुरख शिरताज;
सर्वाभासे रहित तुं, सदानन्द चिद्राज ...६३

शिष्य :—

उपासना साकार नी, असिद्ध ठरे भव पाज;
दहे आत्म जुदा गण्ये, समजावो गुरुराज ! ...६४

गुरु :—

उदयाश्रित चिद्भावना, तन चेष्टाए जणाय;
चर्या संत स्वरूपनी, साधक साधन थाय ...६५

प्रभु मुद्रा जग पुज्य छे, समता शिक्षण हेत;
उदये अणव्यापक रही, साधक शिवपद लेत ...६६

प्रभु मुद्रा सहवासथी, प्रभु गुण गण सेवाय,
प्रभु सेव्ये निज सेवना, सेवक सेव्य ज थाय ...६७

विण गुण लक्षी सेवना, जड-सेवा सही फोक;
महेल मात्र सेवन थकी, नृप सेवा रण-पोक ...६८

तन परिणामने प्राप्त जे, द्रव्येद्रिय सम्बन्ध

भेद ज्ञान करवत थकी, वे'री ज्ञानी अबंध…६९

ज्ञान खण्ड खण्ड दाखवे, भावेन्द्रिय विक्षेप;

अखण्ड निज चिद्शक्तिए, थाय ज्ञानी निर्लेप…७०

ग्राह्य-ग्राहक लक्षणी, इन्द्रिय विषय प्रपंच,

ज्ञेय, ज्ञायक साकर्य माँ, धरे न ममता रंच… ७१

मन इन्द्रियथी आत्ममाँ, प्रत्याहारी लक्ष;

प्रभु गुण गण हृदये धरे, साधु जितेन्द्रिय दक्ष…७२

मोहादिकना उदयने, स्वरूपथी भिन्न जाण;

भाव्य-भावक सांकर्यथी, रहे अलेप सुजान…७३

लब्धि सिद्धि मोह दूतिका, ऊभी अध विच पंथ,

छलाय ना तस छल थकी; जितमोही निग्रंथ…७४

शुक्लध्यान हथियारथी, मोह सैन्य करी अंत;

रमे अचिंत्य स्वराज्यमा, क्षीणमोही भगवंत… ७५

विभाव मात्र अस्पृश्य छे, तेथी अडे न संत;

ज्ञान तेज पच्चखाण छे, ज्ञाने स्पर्शन अंत…७४

गृही पर वस्तु भूल थी, समजे तेह छंडाय,

शरीरादि जड भाव सौ, संतथी अेम तजाय…७७

राग-द्वेष-मोहादि सौ, नथी माहरां एह,

हुं केवल उपयोगमय, भाव अममता तेह…७८

तन धन परिवारादि सौ, नथी माहरां कोय,

हु केवल उपयोगमय, द्रव्य अममता सोय…७९

स्वयंज्योति चैतन्यघन, शुद्ध-बुद्ध सुखधाम;
सदा अरूपी एक हुं, मुज भिन्नथी शुं काम ? ८०

तूस सहित अक्षत अने; अक्षत तूस रहित ;
तेम स्वरूप असमानता; जणो जीव-शिव रीत…८१

विभ्रम चादर ओढीने, थयो चेतन नटराय ;
जग रंगथल नाटक करे, विभिन्न स्वाग सजाय··८२

करे अज्ञ प्रेक्षकजनो, नट स्वरूप विचार ;
'स्वांग सहित' नटरूपता, एक करे निर्धार··८३

'स्वाग-मात्र' नटको' कहे, 'स्वांग भाव' ने कोय ;
'शुभाशुभ परिणामता' नट स्वरूप ते होय··८४

को' परिणाम-प्रवाहने, नाट्य-क्रिया कहे अन्य ;
'पुण्य-पाप' नटको, वदे, नट सुख-दु:ख अधन्य ··८५

स्वांग जन्य अे परिणति, नट रूप थाय केम ?
देहादिक सौ परिणति, आत्म स्वरूप न तेम·· ८६

नाट्यक्रिया तन्मय करी, द्रव्य लहे नटराय ;
मुखये ते जड द्रव्य व्यय, अष्ठ कर्ममां थाय··८७

मोह-मदिरा पानथी, छक्यो रहे दिनरात ;
भ्रान्तिज चश्मे असतमा, सत्श्रद्धा अपनात…८८

जडात्म बुद्धे जडजने, देखे जाणे सदाय ;
निज स्वरूप दर्शन अने ज्ञान-पटल प्रगटाय…८९

आत्म वीर्य अपव्यय करे, वीर्य विघ्न गुटिकाय;
भोग लाभना दान थी, निजानंद अंतराय··९०

निजानन्द अवरोधथी, तीव्र विकलता पाय;
धरे ममत ते टालवा, स्वांगे विविध उपाय ···९१

प्राप्त स्वांग जीरण थए, आयु टिकिट ले धाई;
चारे गति चौदे भुवन, भटके भाड भवाई···९२

विविध जाति कुल उचित जे, ऊंच-नीच केई स्वाग,
विविध नाम मुद्रा सहित, खरीदे नट पी भांग·· ९३

विविध वर्ण रस गंध ने, स्पर्श शब्द आकार,
अंगोंपागने इन्द्रियो, स्वागे विविध प्रकार···९४

अल्पाधिक स्थिति धारका, सूक्ष्म स्थूल केई-केई,
अनेकालय एकालया, समना अमना लेई···९५

अवे'वार वे'वारिया, एक रूप बहु रूप;
थिर-अथिरा केई संग्रहे, स्वाग चेतन नट भूप···९६

जघन्य मध्यम उत्कृष्टा, राग-द्वेष अज्ञान,
भाव शुभाशुभ खर्चीने, खरीदे नाट्य सामान···९७

तीव्र मोह उन्मत्त थई, नाचे विविध प्रकार;
पृथ्वी अग्नि जल वायु ने वनस्पति तनधार···९८

शख कोडा ने अलसिया, कीडी ईयल, घीमेल,
भृंगादिक थई ने करे, इग-विगलनो खेल···९९

जल थल नभचर स्वांगमा, पशु पक्षी बहु जात;
छल कपट अविवेकथी, कर्यो खेल विख्यात···१००

छेदन भेदन ताडना, वध बंधन ने दाह,
इनाममा त्यां बहु समय, वर्त्यो दु:ख प्रवाह···१०१

काम शोक मद लोभने, दुर्गच्छा अरति क्रोध ;
मायादिक लदवद थई, थयो नारक नट योध…१०२
नर्कागार नचनक्रिया, मुख थी कही न जाय ,
नारक स्वांग इनाम थी, नट भणे त्राय-त्राय …१०३
आर्य अनार्य नरादिना, विविध मानव अवतार;
भूत-प्रेत सुर असुरनां, देव स्वांग बहुवार…१०४
लाख चौरासी योनि कृत, स्वांग अनंतानंत ,
शात—अशाता वेदनी 'अविरति' फल स्वादंत…१०५
छेल्ले मानव स्वांगमां, लही 'विरति' नट साज,
संयम गुणथानक क्रमे, वन्यो संत नटराज…१०६
यम नियम आसन अने, प्राणायाम प्रयोग ;
तन-इन्द्रिय-मन जय करे, साधीने हठयोग…१०७
मन एकाग्र सुविचार थी, तन चेतन भिन्न जाण ;
दुःख कारण तन भाव तज, भाव विदेही प्रमाण…१०८
राजयोग आरूढ थई, प्रत्याहारी लक्ष ;
आत्म-धारणा दृढ करे, स्वसंवेदन दक्ष…१०९
ध्यान सुकान अडोल धर, लीन समाधि स्वरूप;
लब्धि सिद्धि वृन्द लोभथी, लपसे नहिं चिद्रूप…११०
क्षपकश्रेणी वंशे चढी, मोह केफ करी अन्त ;
अंते पर जड स्वांग तज, आप थयो भगवन्त…१११
नृत्यक्रिया काले कदी, वध्यो घटयो न क्याय ;
हतो रह्यो तेवो ज ते, नवाई शी ए मांय ?…११२

उदय अस्त कर्म मोहनो, हतो ड गुणठाणंत ;
मोह-नृत्य, संसारनो, एक साथ ही अन्त···११३

होत आत्म स्वरूप तो, केम थाय तस अन्त ?
अविनाशी चेतन सदा, जाणे विरला सन्त···११४

जड चेतन सम्बन्ध त्यां, हतो क्षीर-जल जेम ;
क्षीर-क्षीर जल-जल सदा, जड़ चेतन पण तेम···११५

प्रगट लक्षणे भिन्न नी, कदि न मिश्रता थाय ,
स्वभाव निज-निज नो तज्ये, निज अभाव अंकाय···११६

द्योत अंधारे मिश्रता, सम्भव नहीं त्रिकाल ,
जड चेततनी मिश्रता, कल्पना ज वागजाल···११७

'नृपति जाय' लोको कहे, भूप सैन्य ने देख ,
भूप सैन्यनी एकता, स्वांगे नट तेम लेख···११८

सैन्य स्वरूप न भूपनुं, स्वांग रूप नट नेम ;
तनांत तन भावादि को, आत्म स्वरूप न एम···११९

भेद ज्ञान कर निज कर वड़े, विभ्रम वस्त्र उतार,
थाय मौनता मनतणी, ए ज समज नो सार···१२०

मनने मौन करावीने, मुखथी करवी बात ;
मुख मौनी मनथी बके, एज जीवनी घात···१२१

समजसार नो प्रथम ए, जड़-चेतन अधिकार ,
हवे सुणूं गुरु वाणीमा, कर्त्ता-कर्म विचार···१२२

इति जड़-चेतन अधिकार

अथ कर्त्ता-कर्म अधिकार :— (अव्यवस्थित-अपूर्ण संकलना)

व्याप्य व्यापक न्यायथी, कर्त्ता-कर्म प्रवृत्ति ;
अभिन्न सत्तामय सदा, द्रव्य अवस्था वृत्ति ··१

जेह सत्व छे व्यापके, तेज व्याप्यमां जाण ,
उभय स्वरूप एकत्वता, अखंड द्रव्य प्रमाण···२

सर्व अवस्था व्यापतो, व्यापक द्रव्य के' वाय ,
एक अवस्था रूप ते, नामे व्याप्य वदाय ··३

व्याप्ये व्यापकतो छतो, व्यापक कर्त्ता जाण ,
व्यापकनुं जे कार्य ते व्याप्य ज कर्म प्रमाण···४

कर्म सधे बे कारणे, निमित्त ने उपादान ,
उपादान निज रूप ने, सदा निमित्त पर जाण·· ५

उपादान छे पूर्व ने, उत्तरावस्था कर्म ;
कर्त्ता नुं ज स्वरूप छे, त्रणे अभिन्न ए मर्म···६

कर्त्ता कोण ? निमित्त को' ? कोण स्वपरनुं कर्म ?
शुद्ध दृष्टिए ज्यां लगी, जणाय नहिं ए मर्म · ७

त्यां लगी ज पर कर्म नो, कर्त्ता निजने जाण ;
पर चिन्ता तन्मय थई, पामे दुःख अजाण···८

प्राप्य निर्वर्त्य विकार्य ए, कर्त्तानां त्रण काज ;
निज द्रव्याश्रित थाय छे, अे अनुभूत अवाज···९

नवीन कर्म निर्वर्त्य ने, विकार्य कृत विकार ;
उभय रहित जे प्राप्त ते, प्राप्य कर्म निर्धार···१०

प्राप्य विकार्य निवर्त्यमय, निज कर्मज सदाय ;
गृहे परिणमे उपजे, पण पर कर्म न थाय···११
नूतन अणु पण ना बने, बने न तास विकार ;
मूर्त्त गृहण पण थाय ना, चेतनथी निर्धार···१२
कर्त्ता परनो पर ज छे, निज स्वभावनो आप ;
उभय परस्पर निमित्त पण, परमां न शके व्याप···१३
व्याप्य व्यापकता सदा, तत्स्वरूपमां होय ,
कर्त्ता कर्मपणुं ज पण, तेमज तेमां जोय···१४
निज अवस्थामांज ते, व्यापे द्रव्य सदाय ;
चेतन-चेतनभावमां, जड भावे जड राय···१५
कर्त्ता जड परिणामनो, जड ज होय त्रिकाल ,
ज्ञान परिणतिनो, सदा, कर्त्ता चेतन भाल···१६
घट परिणामनां ज्ञाननो, कर्त्ता छे कुम्भार ;
घट परिणमने निमित्त छे, घट कर्त्ता न लगार···१७
जड परिणामनां ज्ञाननो, कर्त्ता चेतन होय ;
जड परिणमने निमित्त पण, जड-कर्त्ता नहीं सोय···१८
व्याप्य-व्यापक भाव, छे, घट-माटीमा जेम ;
घट कुम्भारे ते नहिं, जड-चेतन पण तेम···१९
उष्ण जले वाटी पचे, पण जल पाचक नो'य ;
पाचक धर्म छे अग्निनुं, शुद्ध दृष्टिए जोय···२०
जल अग्नि संयोगथी, लहे उष्णता जेह ;
उष्ण धर्म ते अग्निनुं, जल स्वभाव न तेह···२१

राग द्वेष मोहादि जे, चेतनमां देखाय;
जड निमित्त ज सौ जडज ते, चेतनना केम थाय···२२

चेतनने मोहादिनो, छे संयोग सम्बन्ध;
मोह युक्त जाणण क्रिया, मोह-क्रिया ज सम्बन्ध···२३

अज्ञाने मोहादि नी, कर्त्ता-कर्म प्रवृत्ति;
तास निमित्त जड एकठुं, थाय सहज निज वृत्ति···२४

जड-चेतन निज निज पणे, मली रहे एक थान;
कहेवाय ते बन्ध जे, थाय निमित्त अज्ञान···२५

मोहादि कर्तृत्वथी, वंध अनादि प्रवाह;
इतरेतराश्रय दोष विण, भूलवे चेतन राह···२६

चेतनने निज ज्ञाननो, छे तादात्म्य सम्बन्ध
सहज थाय जाणण क्रिया, ज्ञान-क्रिया ज अवंध···२७

ज्ञान-मोहादिक भिन्नता, ज्यां लगी य न जणाय;
टले न वंध अज्ञानता, आत्म समाधि न थाय···२८

ज्ञाने मल मोहादि ए, जेम जल मल सेवाल;
ज्ञान ढांकी व्याकुल करे, उपजे आत्म जंजाल···२९

जल-सेवाल एक ज नहीं, तेम मोहादि ज्ञान,
ज्ञान-ज्ञान मोह-मोह छे, उभय मिलन अज्ञान···३०

जाणे नहीं निजने कदा, ए मोहादि विकार;
कर्या विना ते थाय ना, जड निमित्त ज निर्धार...३१

अछती वस्तु छतां टकी, चिद् सत्तानी सहाय;
सहायक ने कनडे ह हा! ए अचरज मुज थाय···३२

आप ज दुःखी आपथी, क्यां करवी पोकार ;
दु.ख कारण ने पोपतो, आप ज थाय खुवार···३३

निजमांथी निपजावी ने, निज पर करी सवार ;
भार वहन दुःखथी डरे, ए मूरख सरदार···३४

दुःख कारण जाणे छते, पण विरमे नहीं जेह ;
जाण्युं ते सौ छे वृथा, कह्यो अज्ञानी एह···३५

जणावीने विरमावतो, दुःख कारणथी जेह ;
तेज ज्ञान प्रमाण छे, ज्ञाने दुःखनो छेह···३६

भेदज्ञान छीणी वडे, भेदीने अज्ञान ;
ज्ञान-मोह भिन्नता करी, वसे सन्त निज भान···३७

वहाण पकड सिन्धु वमल, वमल शम्ये छंडाय ,
विकल्प वमल शमावीने, मोह पकड दूर थाय···३८

चल अनित्य मोहादिए, वाई वेगादिक जेम ;
अशरण दुःख दु.खफल ज ते, थाय ताहरा केम ? ३९

स्वभावथी विज्ञानघन, तुं चिद्-ज्योति अनन्त ;
पट् कारकथी पार शुद्ध, अखंड अनुभववन्त···४०

दर्शन ज्ञाने पूर्ण ने, अजरामर एक सत्व ;
जड निमित्त ज-जड मुक्त तुं, छो पारमार्थिक तत्त्व.. ४१

मोहादिक अन्तरंग ने, वर्णादिक वहिरंग,
नियमा ए जड संगथी, ज्ञानी रहे असंग···४२

[विविध पुद्गल कर्म ने, जाणे जाण सदाय ;
ग्रहण परिणमन उपजन, पण तेनुं नव थाय···४३

विविध निज परिणाम ने, जाणे जाण सदाय ;
ग्रहण परिणमन उपजन, पण परनुं नव थाय···४४
सुख दुःखादि जड कर्मफल, जाणे जाण सदाय ;
ग्रहण परिणमन उपजन, पण तेनुं नव थाय···४५
रहे एम जड द्रव्य पण, निज भावे ज सदाय ;
ग्रहण परिणमन उपजन, चेतननुं नव थाय···४६
जीवभाव हेतु लही, जड परिणमन ज थाय ;
हेतु लही जड कर्मनो, अज्ञ जडे मोहाय···४७
निमित्त नैमित्तिकपणुं, जीव-भाव-जड-भाव ;
उभय परस्पर निमित्तथी, कर्त्ता थाय विभाव···४८
जीव भाव जड ना करे, जड भावो नहीं जीव ;
आप आपणा भावना, कर्त्ता वेऊ सदैव···४९
जाणे करे रमे सदा, चेतन आप स्वभाव ;
करे भोगवे ना कदी, नियमा ते जड भाव]—५०

—:o:—

ॐ नमः सहजात्म स्वरूपाय

(१९४) ज्ञान-मीमांसा

मंगल दोहा

परमगुरु पद-कंज नमूं, ॐ सहजात्म स्वरूप ;
परम कृपालु देव प्रभु, सहजानंदघन भूप···१
जिन पथ द्योतक मोहरिपु, मुमुक्षु जन-विश्राम ;
दुर्भग हारक-कल्पतरु, प्रणमुं आतमराम...२

दर्शन-ज्ञान-सामान्य हुं, स्व-संवेद्य प्रत्यक्ष,
पंच पूज्य ना पूज्य ने, पूजूं तजी पर पक्ष...३
आत्म ज्ञान-दाता प्रभु, सद्गुरु युग-प्रधान;
चरण कमल वेदी परे, करूं आत्म बलिदान...४
विशुद्ध दर्शन ज्ञानघन, तस आश्रम आसाद्य;
शिवकर साम्य लहु अहो ! शरणापन्न थइ सद्य ..५

पीठिका दोहा :—

प्रवचन अंजन दृष्टिए, संत-बोध-रस-पान,
करूं मिमांसा व्यक्त ए, प्रातिभ-केवलज्ञान...६
शक्री-चक्री पद ना गमे, फल चारित्र सराग,
गमे एक निज आत्म-पद, फल चारित्र-अराग . ७
मोह-क्षोभ विहीन जे, आत्मा नो परिणाम,
साम्यभाव ते धर्म ते, चारित्र ज तस नाम...८
भाव विना वस्तु ज नहीं, वस्तु वण ना भाव,
द्रव्य गुण पर्याय मय, प्रगट वस्तु छे साव...९
जे काले जे भाव थी, परिणमे चित्त-वृत्ति,
ते काले ते मय ज छे जेम स्फटिक नी रीति...१०
शुद्धे शुद्ध अशुभे अशुभ, शुभे शुभ चित-वृत्ति,
धर्म पाप ने पुण्यमय, बने आत्म ए रीति...११
जो न शुभाशुभ परिणमन, जीव शुद्ध कूटस्थ,
तो न घटे सुख दुख आ, बंध मोक्ष सौ व्यर्थ—१२

शुभाशुभ चल-भाव छे, शुद्ध अचल चिद्रूप;
सुख-दुख फल चल-भावना, अचल फल आनंद भूप...१३

फल ओलखववा लक्षणे, सुख ते अन्तर्दाह;
दाह मुक्त आनंद ने, दुःख=बाह्यान्तर दाह...१४

शुद्ध भाव-चारित्र थी, चिदानंद घृतपान;
शुभ चारित्रे स्वर्ग-सुख, जेम उष्ण-घृत स्नान...१५

अशुभ अनाचारे फले, भीषण चउगति भ्रान्ति;
कुनर-तिरि-नारक पणे, लहे त्रि-ताप अशान्ति...१६

अधिकारी :— दोहा :—

न जड़ मान मतार्थिता, अनुकूलता दासत्व;
विषय मूढ स्वच्छंदना, ते आत्मार्थी सत्व...१७

न क्रिया जड़ शुक ज्ञान ना, ना पर-रंजक वृत्ति;
दृष्टिराग हठवाद ना, ए सत्संगति-रीति...१८

संयम तप अकषायता, सम सुख–दुख चित्त-वृत्ति;
शुद्धभाव-अधिकारी ते, सन्मति सुमुक्षु-प्रवृत्ति...१९

ग्रन्थ विषय :— दोहा :—

सन्मति सत्संगे रही, करतां सत्श्रुति-पान,
शुद्ध स्वभावे परिणमी, पामे प्रातिभज्ञान...२०

बाह्य भाव रेचक करी, रक पूअंतर्भाव,
परम भाव कुंभक बले, ध्यावे शुद्ध स्वभाव...२१

बंकनाल षटचक्र ने, भेदी शोधे पिण्ड,
दिव्य नयन निरखे अहो, व्यापक सकल ब्रह्माण्ड...२२

नाभि चक्र स्थिर-ज्योत थी, द्विप समुद्रादि अशेष;
खंड देश वन नगर गृह, लखाय व्यक्ति विशेष···२३

अधोलोक अधश्चक्र क्रम, सुर असुर व्यन्तरादि,
सप्त नरक नारक लखे, दुखिया जीव प्रमादि...२४

उर्ध्व, उर्ध्वचक्र क्रमे, उदरे ज्योतिष्चक्र;
कल्पवासी श्रेणि ववे, प्रति पासडीए वक्र.. २५

ग्रीवाए ग्रैवेयको, अनुदिश अनुत्तरसिद्ध;
शिर-गोलक चक्र-क्रमे, दूरंदेशी-ऋद्ध···२६

दक्षिण-भूतल कमल मा, वैक्रिय लब्धि प्रकाश;
आहारक वामे अहो !, संयमधर ने खास...२७

दक्षिण-स्तन तल कमल मां, तैजस मापक तंत्र;
वामे कृष्ण राजी अहो ! कार्मण मापक यंत्र...२८

जेम जेम संवर वधे, त्यम कार्मण-मल नाश,
कमल श्वेतता अनुसरे, एज निशानी खास···२९

माटी शुद्ध कर्या पछी, चश्मा दुर्बिन थाय,
कषाय भाव निवारता, चित्त शुद्धि प्रगटाय···३०

नानी चीजो दाखवे, मोटी दुर्बिन जेम,
योग दृष्टि तारतम्यता, चर्म चक्षु सह एम···३१

द्रव्य क्षेत्र कालादिनुं, भाख्युं जे परिमाण;
योग दृष्टि सापेक्ष ते, चर्म दृष्टि अप्रमाण...३२

अगम अलोक ज आतमा, लोके लोक स्व-माय ;
लोकालोक प्रत्यक्षता, प्रातिभज्ञान पसाय···३३

गति आगति निज परतणी, भूत भविष्य प्रपंच ;
आ काळे पण गम्य छे, न धरो शंका रंच· · ·३४

लोक पुरुष संस्थान ए, धर्म ध्यान अनुभूति ;
ज्ञेय ज्ञाननी भिन्नता, प्रकट स्व पर सुप्रतीति· · ·३५

स्व पर प्रतीति वळे सहज, वृत्तिओ आत्माधीन ;
क्षायिक समकित प्रगटतां दर्शनमोह प्रक्षीण· · ·३६

प्रातिभ=केवल-बीज छे, अरुणोदय चिद् ज्योत ;
देशे केवलज्ञान ए, चित्त प्रवाह प्रति श्रोत· · ·३७

मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यव, स्वापेक्षक चिद्-अंश ;
ते प्रातिभ तारतम्यता, तिमिर अज्ञता ध्वंश· · ·३८

दर्शनमोह-अरिहंत ते, जिनवत् जिन सुप्रमाण ,
प्रातिभज्ञानी ते कह्या, केवल-बीज प्रधान· · ·३९

अरुण - प्रकाशे सूर्यवत्, जेम बधुं देखाय ,
प्रातिभ-ज्योते ज्ञानी ते, स्व पर प्रत्यक्ष जणाय· · ४०

लखे स्व-स्वरूप सिद्ध सम, देह भिन्न असंग ;
शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, सहजानन्द अभंग· · ·४१

अपूर्व परमाह्लादता, अनुपम सम अविच्छिन्न ;
विषयातीत अनंत ते, चिदानन्द स्वाधीन · ·४२

आत्मास्तित्त्व प्रतीतिए, सर्वोत्कृष्ट निवास ;
प्रगटे केवलज्ञान तो, नवमे समये खास· · ४३

समय मात्र पण संग-पर, पामे ना उपयोग ;
तो प्रगटे केवल दशा, अखंड आत्मारोग्य· · ·४४

अेक समय परमाणु ने, प्रदेश-ज्ञान जो थाय ;
प्रगटे केवलज्ञान तो, वीतराग असहाय…४५
इन्द्रिय-संज्ञा-योग जय, परथी आप असंग ;
उपयोगे उपयोगता, केवलज्ञान अभंग…४६
तद्रूप आत्मा ध्यावतां, चिन्मय सरहद वास ;
चित्त शुद्धि पूरण थता, घाति-कर्म-मल नास…४७
अन्य अध्यास विमुक्त घन, ज्ञान-स्थिति जे शुद्ध ;
आत्मज्ञान जे स्फटिक वत्, केवलज्ञान प्रबुद्ध…४८
योग छते उपयोगनुं, छेज प्रयोजन खास,
तेथी सयोगी जिन लगी, छेज बुद्धि वल तास ४९
संग-प्राप्त अणु-ज्ञान तो, अनुभव गम्य ज जाण ;
अणु स्वरूप त्यम सर्व नुं, बुद्धि वले सुप्रमाण ५०
नभ-प्रदेश समीपस्थ तो, अनुभव-गम्य प्रकार ;
शेष अनंत प्रमाणता, बुद्धि-गम्य निर्धार ५१
अनुभवाता समयवत्, काल अनादि अनंत,
स्वरूप भूत भविष्य नुं, बुद्धि-गम्य ज लखंत…५२
स्वात्मा अनुभव-गम्य पण, सर्व परात्म-स्वरूप ;
बुद्धि-गम्य प्रमाण त्यम, धर्म अधर्म प्ररूप…५३
अनुभव सह बौद्धिक वले, जिन-सयोगी-सर्वज्ञ ;
सर्व क्षेत्र-यम-भाव थी, सर्व द्रव्य प्रगट-ज्ञ…५४
सयोगी-केवल द्विविध छे, धुर-समयी चल योग ;
अंत्य समयी स्थिर योग सह, अघाति पूर्व प्रयोग…५५

अयोगी केवल भेद बे, क्षीयमाण-क्रम-योग ;
धुर समयी ने इतर तो, नष्ट-योग ज अयोग···५६

योगी अयोगी सिद्ध ए, केवल भेद प्रभेद ;
व्यवहारे पण निश्चये, केवलज्ञान अभेद··५७

निज स्वभावना ज्ञान मा, तन्मय शुद्ध उपयोग ;
निर्विकल्प परिणमनता, केवलज्ञान स्व-भोग··५८

आप आपमा आपथी, आप वड़े निज काज ;
करे भोगवे आपने, आप स्वयंभू-साज··५९

अभंग आनंदोत्पत्तिज, समूल दाह-विनाश,
अधिष्ठान ध्रुवता पणे, आप स्वयंभू वास···६०

कोई पर्याये उत्तपत्ति ज, भंग पर्यय कोइ एक ;
गुण स्वभावे ध्रुवता, प्रति द्रव्ये एक मेक··६१

दाह मुक्त साम्राज्य मा, अनंत वीर्य प्रकाश ;
ज्ञानानंदे परिणमे, ज्ञानी स्वरूप विलास·· ६२

देह-जन्य सुख-दुख नथी, अतीन्द्रिय प्रभु चंग,
श्रीफल गोलावत् रहे, तन-मठ-धर्म असंग ··६३

ज्ञाने परिणत ज्ञानी ने, प्रतिबिंबित स्वलक्ष ;
सरहद आत्म प्रदेश थी, लोकालोक प्रत्यक्ष ··६४

आत्मा ज्ञान प्रमाण छे, ज्ञान ज्ञेय प्रमाण ;
लोकालोक न ज्ञेय छे, अत. सर्वगत ज्ञान···६५

दूध मां व्यापे नीलिमा, नीलम नाख्ये जेम ;
ज्ञान प्रभाए आत्मनी, सर्व व्यापकता तेम···६६

ज्ञान प्रमाण न आत्म जो, हीनाधिक ज्ञानात्म ;
अधिक ज्ञान तो जड़ बने, जाणे ना हीनात्म…६७

ज्ञान रूप ज्ञानी अहो! ज्ञान विषय जग-सर्व ;
सर्वगत ज्ञानी अतः, ज्ञानी गत छे सर्व…६८

ज्ञान नये ज्ञानातमा, अन्ये नये अन्यान्य ;
अनंत गुण पिण्डातमा, ज्ञान तो आत्म अनन्य…६९

जगत जगत स्वरूप छे, आत्मा ज्ञान स्वरूप,
आत्मा जग नी भिन्नता, जेम नेत्र ने रूप…७०

दर्पणगत प्रतिबिंब तो, छे दर्पणमय जेम ;
ज्ञान-दर्पणे अेकता, जगत आत्म नी तेम… ७१

एम कथंचित् भिन्नता, अभिन्नता छे जेम ;
भिन्नाभिन्न उभय नये, ज्ञानी जगत ज तेम…७२

जाणे स्व पर सर्वस्व पण, ज्ञप्ति तृप्ति अभंग ;
प्रतिबिंबित पर-ज्ञेय थी, केवलज्ञान असंग…७३

केवल आत्म स्वभाव ना, अखंड ज्ञाने लीन,
केवलज्ञानी ते कह्या, सहजानन्दघन पीन…७४

जिन पद निज माहे लखे, आप्त बोध थी जेह,
स्वरूप ज्ञान अनुभूति थी, छे श्रुत-केवली तेह…७५

श्रुत जडोपाधि टालता, रहे शेष निज ज्ञप्ति ;
प्रातिभ ज्ञान प्रकार ते, सहजानन्दघन तृप्ति…७६

आत्म स्थैर्य तारतम्य पण, आत्म अनुभवे तुल्य ;
उभय केवलज्ञानी छे, जेम अरुण ने सूर्य… ७७

कर्तृत्व करणत्व द्वय, अभिन्न शक्ति स्वरूप ;
ज्ञायक ज्ञान एकत्वता, चिन्मय आतम स्वरूप···७८

स्व-पर ज्ञायक ज्ञान थी; ज्ञेय स्व पर बे रूप ;
आप प्रकाशे आप थी, सूरजवत् चिद् भूप···७९

ज्ञान न जाणे ज्ञेय तो, ज्ञाने शुं ज्ञानत्व ?
ज्ञाने ज्ञेयो अलखतो, ज्ञेये शुं ज्ञेयत्व···८०

ज्ञेय शक्ति अचिन्त्य मां, अर्पण धर्म स्वभाव ,
ज्ञान शक्ति अचिंत्य मा, अद्भुत ग्राहक भाव··८१

त्रिकालिक पर्याय सौ, विशिष्ट स्पष्ट जणाय ,
चित्रपट शुद्ध ज्ञान मां, वर्ते जगत सदाय ·८२

चित्रकार ना चित्र मां, भूत भविष्य शमाय ;
शुद्ध ज्ञान असमर्थ जो, दिव्य केम के'वाय··८३

दाह्य मात्र ने बालवा, पावक जेम समर्थ ;
ज्ञेय मात्र ने जाणवा, आतम-ज्ञान समर्थ··८४

इन्द्रिय सन्निकर्ष ना, भूत भावि पर्याय ;
तेथी इन्द्रिय ज्ञान तो, असर्वज्ञ सदाय··८५

मन इन्द्रिय उपदेश वश, क्षयोपशम संस्कार ;
पराधीन ईहादिके, इन्द्रिय ज्ञान असार···८६

कालो गोरो स्त्री पुरुष, पशु पक्षी वृद्ध बाल ;
स्थूल मूर्त जड पर्यये, इन्द्रिय ज्ञान वेहाल·· ८७

ज्ञेय अर्थ परिणमनता, कर्म-भोग अंध-चाल ;
त्रिदोष सन्निपात थी, वलगे कर्म-जंजाल··८८

कर्मोदय योगिक-क्रिया-मात्रे वंध न थाय ;
इष्टा-निष्ट परिणाम थी, मोहे अज्ञ वंधाय···८६

वीतराग नी सौ क्रिया, धर्मोपदेश विहार ,
अघाति कर्म वशे सहज, ज्यम स्त्री-मायाचार···६०

मोह विहीन प्रवृत्ति सौ, वंध निर्वृत्तिरूप ;
चिदानन्द विलसन क्रिया, मात्र क्षायिकी रूप···६१

सर्व आत्म प्रदेश थी, सर्व जाण एक साथ ;
तेज क्षायिक-ज्ञान घन, ईश्वर त्रिभुवन नाथ···६२

जेणे जाण्यो एक ने, तेणे जाण्युं सर्व ,
जो न जाण्यों अेक तो, जाण्यु ते सहु गर्व···६३

सर्व ज्ञेय जो ना लखे, समकाले निज मांहि ;
पूर्ण पणे निज रूप नो, अज्ञ कह्यो श्रुत माहि···६४

क्रम थी ज्ञेयालंवतुं, ज्ञान अनित्य असार ,
क्षायोपशमिक असर्वगत, अक्षायिक निर्धार···६५

माटे ज्ञायिक ज्ञान नुं, अहो ! अहो !! माहात्म्य !!!
ज्ञाप्ति क्रिया पलटे नहीं, सहजानंदी स्वास्थ्य···६६

सर्व ज्ञेय जाणे छता, न परिणमे ते रूप ,
ग्रहे न उपजे ते पणे, अवंध ज्ञानी भूप···६७

नोट —पद्याङ्क १७ से ३६ तक का हिन्दी रूप पृ० १३८-३६ में "लोकनालिदर्शन" नाम से छपा है।

—:००:—

(१९५) परमात्म-प्रकाश-भावानुवाद

सिद्ध बुद्ध परिमुक्त जे, सहज समाधि स्वरूप;
बोधी दृढ करवा नमूं, पराभक्ति अनुरूप....१

शिव अमल अज ज्ञानमय, परम समाधि भजंत;
ते वंदु श्री सिद्ध गण, थाशे जेह अनत...२

परम समाधि महानले, कर्मेन्धन होमंत.
ते हु वंदुं सिद्ध गण, करी रह्या भव अंत ..३

वली ते वंदु सिद्ध गण, वसी रह्या लोकान्त;
ज्ञाने त्रिभुवन गुरु छता, पुनर्जन्म न धरंत...४

ते वली वंदु सिद्ध गण. जेनो स्वात्म निवास,
लोकालोक प्रत्यक्ष निज, ज्ञान-दर्पणे जास...५

केवल-दर्शन-ज्ञानमय, आनंदघन जिननाथ;
नमुं भक्तिए जेमणे, बोध्या विश्व पदार्थ...६

लखि परमात्मा स्वात्म मां, परम समाधि धरंत,
निजानंद हेते नमुं, सूरि-पाठक-मुनि संत...७

स्मरी परमेष्टी भाव थी, गुरु योगीन्द्र मुनीश;
पूछे शरणापन्न थइ, भट्ट प्रभाकर शिष्य.. ८

संसारे वसता गयो, स्वामी काल अनंत,
पण मैं सुख कैं ना लह्युं, क्यम थाय दुख अंत ..९

चारे गति दुख तप्त ने, शरण्य जे प्रभु होय,
ते परमात्म स्वरूप ने, कहो कृपा करी मोय...१०

स्वात्मा ने समझ्या विना, समजाय न प्रभु रूप ;
नमी सत्पद सुण ते कहुँ, त्रिविध आत्म स्वरूप ··११

वहिरंतर् परमातमा, मूढ प्रज्ञ ब्रह्मरूप ;
तजी मूढता प्रज्ञ थइ, भज तुं चिद्‌घन भूप···१२

दृश्य-दृष्टि ना मैथुने, उपजे भाव विमूढ ;
देहज आत्म मानतो, अे वहिरात्मा मूढ···१३

देह भिन्न ब्रह्म ने वरी, ते दृग् सम्यग्-दृष्टि ;
त्या प्रज्ञ अंतरात्म ने, सहजानंदघन वृष्टि···१४

द्रव्य-भाव नोकर्म पर-द्रव्य मुक्त चिद् रूप ,
आप आपथी तृप्त जे, ते परमात्म स्वरूप ··१५

हरिहरादिक ध्यावता, जेने नित थिर लक्ष ,
त्रिभुवन वंदित सिद्धगत, अलख प्रभु ते दक्ष···१६

सच्चिदानंदघन प्रभु, जे शिव शात स्वभाव ,
अचल अकृत्रिम अमल ते, भवजल तारण नाव···१७

जे निज भाव न परिहरे, ले पर भाव न जेह ,
सर्वज्ञ परमातमा, ते शिव शाति सुगेह···१८

वर्ण गंध रस स्पर्शना, शब्दादिक नहिं जास ,
जन्म मरण जेने नहीं, जाण निरंजन तास···१९

क्रोध क्षोभ मद मोहना, नहि माया के मान ,
देह गेह जेने हिं, ते ज निरंजन जाण ··२०

पुण्य पाप जेने नहिं, हर्ष विषाद न काइ ,
सर्व दोष थी मुक्त जे, ते ज निरंजन भाई ··२१

ध्यान ध्येय के धारणा, मंत्र तंत्र नहिं जास ;
मंडल मुद्रादिक नहीं, ते प्रभु ध्यावो तास…२२
वेद शास्त्र के इन्द्रिये, जाण्यो जाय न जेह ;
अनुभव गोचर मात्र छे, भज परमातमा नेह…२३
सहज ज्ञान दर्शन सहज, सहज सौख्य चिन शक्ति ;
कारण प्रभु घट घट वसे, ध्यावो गुरुगम युक्ति…२४
कार्य कारण न्याये सदा, कार्य सिद्धता थाय ;
कारण-प्रभु ने सेवतां, कार्य प्रभु प्रगटाय…२५
सिद्ध वसे लोकान्त मा, तेवो निष्कल देव ;
देह देवले प्रगट छे, तजी भेद तुं सेव…२६
जेना अनुभव मात्र थी, शीघ्र कर्मलय थाय ;
ते प्रभु जो आकाश मां, तो ते केम लखाय ? …२७
इन्द्रिय सुख दुख ज्या नहीं, ज्या नहिं मननी दोड़ ;
ते निज ज्ञायक भाव भज, अन्य झंझट सहु छोड़…२८
शुद्ध नये निज मां वसे, अशुद्ध नये तन-लीन ;
तज अशुद्ध भज शुद्ध ने, सहजानंद रस पीन…२९
जड़ चेतन एक थाय ना, प्रगट लक्षणे भेद ;
क्षीर नीरवत् भिन्न वे, भंज निज आतम अखेद…३०
मन इन्द्रिय आकार वण, ने केवल चिन्मात्र ;
स्व संवेदन गम्य ते, अक्ष विपय ना छात्र…३१
भव तन भोग विरक्त थइ, खेले चिद्घन खेल ;
आतमनिष्ठ ते संतनी, त्रूटे भव भ्रम वेल…३२

वसे देव तन-मंदिरे, चिदानंदघन मूर्त्ति;
वंदो पूजो भावथी, प्रतिक्षण जगवी स्फूर्त्ति ··३३
देह आत्म मिथ स्पर्शता, रविकर-घन-नभ जेम;
स्पर्श रहित ने स्पर्श शो, जाण आत्म प्रभु तेम···३४
निर्विकल्प समतागृहे, अनुभवाय छे जेह;
वीतराग आनंदघन, प्रभु पद जाणे तेह ··३५
दर्पण-बिंबवत् आत्म थी, बद्ध देहादिक कर्म;
पण जे थाय न कर्मतन, लखे ए प्रभु-पद मर्म...३६
परमार्थे निष्कल प्रभु, त्रिविध कर्म थी भिन्न;
तेने मूढ अज्ञान थी, माने देह अभिन्न···३७
नभ-नक्षत्र समूह वत्, ज्ञाने त्रिभुवन जास;
भिन्नाभिन्न अभिन्नभिन्न, लख परमात्मा तास···३८
तन व्यापक अनुभूति ने, जे ध्यावे योगीश;
मोक्ष हेतु एकाग्र थई, लख सहजानंद ईश···३९
अग्याने जग-भ्रम रचे, ज्ञाने करे संहार;
कर्त्ता हर्त्ता आप छे, अन्य नहीं करतार···४०
रचे सृष्टि बहिरात्मवृन्द, अंतरात्म लयकार;
व्यापक ज्ञान स्वभाव नो, प्रभु पोषण करतार···४१
सृष्टि स्थिति लय ने कहे, ब्रह्मा विष्णु महेश;
छे त्रण पद पण व्यक्ति ना, लख वशिष्ट उपदेश...४२
सृष्टि स्थिति लय युत अयुत, आप कथंचित् एह;
लखो द्रव्य-पर्यय-नये, देव वसे जे देह...४३

जेना वसवाटे प्रवृत्त, छे तन-इन्द्रिय प्राण;
आत्म-हंस उडी जता, ए सहु राख मसाण…४४

तन-घर इन्द्रिय-गोखलां, पंच-विषय नो जाण;
ए सौथी पोते अलख, आत्म-प्रभु सप्रमाण…४५

बंध-मोक्ष व्यवहार थी, परमार्थें नहिं आत्म।
घन-नभवत् जड़ थी असंग, भाव! भाव! परमात्म…४६

ज्ञेयाभावे वह्निवत्, ज्ञान थाय थिर थाप;
विवित लोकालोक ते, स्वात्म द्रव्य मां व्याप…४७

सुख दुख कर्म फले कदी, हानी लाभ न आत्म;
सदा जेम नो तेम रहे, ते ध्याओ परमात्म…४८

सुख दुख कोरी कल्पना, देह मूढ मन-शूल;
रत्नत्रयी लूंटे सदा, तज ए भ्रांति-त्रिशूल…४९

सर्व व्यापक प्रभु को कहे, जड़ कोइ देह-प्रमाण;
शून्य कहे कोई तेहनो, गुरु करो! समाधान…५०

छे कथंचित सर्वगत, जड़ पण देह-प्रमाण;
शून्य कथंचित् आतमा, स्याद्वाद थी जाण…५१

निर्मल केवलज्ञान तो, सर्व व्यापक जणाय,
ज्यां ज्या ज्ञान त्यां आतमा, व्यापक प्रभु ए न्याय…५२

इन्द्रिय ज्ञान विनाश थी, देह भान नहिं होय;
शात-अशाता अनुभवे, जड़वत् तेथी सोय…५३

दीप-ज्योत वत् आतमा, छे प्रति देह-प्रमाण;
चरिम देहवत् मुक्त पण, तेथी देह समान…५४

सर्व दोष थी शून्य छे, सिद्धि मुक्त जिन-भूप;
एन्याये प्रभु शून्य ते, लख सहजात्म-स्वरूप...५५
पर ने उत्पन्न ना करे, पर थी नहिं उपजाय;
द्रव्ये आत्मा नित्य छे, पर्याये पलटाय...५६
गुण-पर्यय युत द्रव्य नें, विश्व द्रव्य-समुदाय;
क्रम भावि पर्याय नें, गुण सहभावि कहाय...५७
आत्म द्रव्य तेनाज छे, गुण दर्शन ज्ञानादि;
पर्यय चउ-गति भाव-तन, जनित कर्म रागादि...५८
द्रव्य कर्म ने आत्म नो, छेज अनादि संयोग;
मिथ कर्तृत्व न उभय नो, करे न मिथ उपभोग...५९
द्रव्य कर्म ना निमित्त थी, थाय शुभाशुभ भाव;
जड़-निमितज सौ जड़ छे, सौ रागादि विभाव...६०
विभाव निमित्ते कर्म जड़, उपजे आठ प्रकार;
तेथी ढक्यो मूढातमा, लहे न निज गुण सार...६१
विषय कषाये रक्त ने, चोंटे जड़-अणु-धूल;
आत्म प्रदेशे मूढ ने, ते ज कर्म-जड़-मूल...६२
तन-मन-इन्द्रिय सुख दुःखो, चउगति भ्रमण अमाप;
कर्म जनित मूढात्मने, तन्मय ने संताप...६३
कर्म-फलो जड सुख दुःखो, नियमा मुझ थी भिन्न;
ज्ञाता दृष्टा साक्षी हुं, ज्ञानी रहे अखिन्न...६४
ज्ञान-निष्ठता मोक्ष छे, ज्ञेय-निष्ठता बंध;
ज्ञेय सकल जड़ कर्म कृत, तेमा फसे ज अंध...६५

एवो एक प्रदेश ना, ज्यां न भम्यो ए अंध;
ज्ञानाजन विण केम लहे, देहे विभू अवंध…६६

स्वयं भमे ना लंगड़ो, अंधात्मा परदेश;
कर्म-विधि जग फेरवे, विविध सजावी वेष…६७

[अपूर्ण रचना]

(१९६) समाधि-माला

पावापुरी ३-८-५२

आत्मा आत्मपणे अने, जाणी जड़ जड़ रूप;
ज्ञायक भावे स्थिर थया, वंदुं सिद्ध स्वरूप…१

वोल्या वण सत् वोधता, तीर्थराज गत काम;
शिव ब्रह्मा हरि वुद्ध जिन, निज रूपेज प्रणाम…२

अनुमान श्रुत अनुभवे, कहुं स्व आत्म विवेक;
यथाशक्ति समचित्त थी, निज सुख कामी नेक…३

वाह्य अन्तर परमातमा, त्रिविध आत्म प्रति देह;
वाह्य तजी अन्तर सजी, भज परमात्म विदेह…४

आत्म भ्रांति देहादि मा, वहिरात्मा मति अन्ध;
भ्रान्ति मुक्त अंतरात्मा, परमात्मा ज अवन्ध…५

शुद्ध-वुद्ध-प्रभु-केवली, ईश्वर-मुक्त-परात्म;
अव्यय-अमल-असंग-जिन, परमेष्ठी परमात्म…६

गिर्वी आत्मा देह माँ, व्हारे चित्त प्रवाह;
चिद् जड़ मिथ+आत्त्वे वसे, ए वहिरात्म गवाह…७

नर तिरि नारक देव जे, आप आपणा स्वांग ;
मानै आत्म स्वरूप ते, वहिरात्मा पी भांग...८

देह देही न तूं अरे !, स्वगम्य देहातीत ;
अनन्त चतुष्ठय भूप छो, कर गुरुगम सुप्रतीत...६

मोह मदिरा पी छक्यो, वके भूत छल जेम ;
निज पर तन हूँ-तु कहे, देहाध्यासी एम...१०

मात-पिता-स्त्री-तनय तन, धनगृह आ मारांज ,
अहँ-ममताग्रह-मगर मुख, वूड़े भव जलमांज...११

भ्रांन्ति दृढ़ संस्कारी ने, फरी ज्या जन्मे एह ;
देह ज आत्मा मानतो, धरे देह मा नेह...१२

एम ज मूढ अनादि थी, देह जेल ठेलाय ;
निज वोधे निज मा ठरे, जेल मुक्त तो थाय...१३

जड़ महिमा जड़ता वड़े, चेतनता विसराय ;
ग्रहे भोगवे जड़ज ने, हा ! हा ! जगत हणाय...१४

देहे आतम भावना, दुःख मूल संसार ;
आत्म भावना आत्ममा, एज समज नो सार...१५

अमृत भवन गवाक्ष थी, पतित विपय विप वुन्द ,
मूर्छित थइ कदी न लह्यो, आत्म तत्व सुख कंद...१६

तन वचन मन मौन थई, कर तुं योग समास ,
पिंजर गत शुक सीख ले, जो परमात्म प्रकाश...१७

जाणनार देखाय ना, दृश्य शरीर न जाण ;
तो मूरख शाने वके, मौने प्रगटे भाण...१८

गुरु उपदेशे सज्ज थई, अनुभववा सिद्धान्त ;
कान जीभ थी मौन था, निर्विकल्प अभ्रान्त...१६

पर गृहण निज त्याग ना, केमे करी शकाय ;
ज्ञाता द्रष्टा साक्षी तुं, अनुभववन्त सदाय...२०

ठुंठा ने नर मानी ने, जेम पथिक बेंसाय ;
तेम भ्रमायो तन विषे, ज्यम फुटबोल फुटाय...२१

ठुंठु छे खात्री थतां, पथिक अभयता पाय ;
देह-जीव भिन्न परखता, आत्म-भ्रांति लय थाय...२२

आप आप मां आप थी, आपे अनुभव थाय ;
सोहं-सोहं-तेज हूं, समजी आप शमाय...२३

भाव-रात फीटी थयो, स्वयं ज्योति सुप्रभात ;
अगम अगोचर अलख हुं, सहजानंद विख्यात...२४

मने तत्त्व थी देखतां, ज्ञानाकार स्वभाव ;
शत्रु मित्रतादिक टले, सौ रागादि विभाव...२५

मने न देखे अज्ञ जन, शत्रु मित्र केम थाय ?
मने देखतां सन्त जन, शत्रु मित्र केम थाय ?...२६

अेम बहिरात्मता तजी, सज्ज थई अन्तरात्म ;
सौ संकल्पो मूकी ने, भाव ! भाव ! परमात्म...२७

दासोऽहं सोऽहं अहं, परा-भक्ति क्रम पाय ;
दृढ संस्कारी भावना, आत्म ठरणता थाय...२८

मूढ करे विश्वास ज्यां, खरुं भयास्पद तेज ;
डरे अहो ! निज आत्म थी, खरुं अभयपद एज...२६

विषयेन्द्रिय थी आत्म मां, प्रत्याहारी लक्ष ;
दर्शन ज्ञाने रमणता, आत्म प्रभुज प्रत्यक्ष···३०
जे परमात्मा तेज हुं, जे हुं ते प्रभु रूप ;
ध्याता ध्यान ने ध्येय हुं, एक अभिन्न स्वरूप···३१
विषय वने थी शोधी ने, सौंप्यो निज ने आप ;
निज मा निज रूपे भल्ये, सहजानन्द अमाप···३२
देह भिन्न निज आत्म ने, जाण्या पण ना मुक्ति ,
तप जप किरिया खपथकी, अष्ट कर्म मल भुक्ति- ३३
देह भिन्न आत्मा दिठे, दुष्कर तप तन शोप ;
परिसह उपसर्गो भले, सहजानन्द रस पोप···३४
जग महिमा रंजित मने, आत्मतत्व न जणाय ;
संत चरण मन दृढ़ कर्ये, वीतराग प्रभु थाय···३५
राग द्वेष मोजां रहित, अविक्षिप्त मन-आत्म ,
मल विक्षेप-अज्ञान तजी, भजो निरंजन स्वात्म···३६
आत्म भ्राति संस्कार थी, मन जड-जगमां धाय ;
ज्ञाने संस्कारी अचल, मन निज आत्म शमाय···३७
अज्ञ मान अपमान थी, हर्ष शोक वश जाय ,
आत्मारामी सन्त जन, टस थी मस नव थाय···३८
मोहे त्यागी तपसी ने, राग-रीस जो थाय ;
स्थितिप्रज्ञता भावतां, तत्क्षण खवीश विलाय···३९
देहे व्हालप जो जगे, तो त्या थी मन मोड़ ,
बोधमूर्ति गुरु चरण मां, तन व्हालप सिर फोड़···४०

आत्म भ्रांतिए जनित दुख, आत्मज्ञान थी नाश ;
दान शील तप ज्ञान वण, नहिं दे मोक्ष निवास...४१

देहाध्यासी इच्छता, दिव्य देह सुख भोग ;
सहजानंदी सन्त जन, इच्छे भोग वियोग.. ४२

जड़ गुण द्रव्य पर्याय मां, मोही जन वन्धाय ;
आत्म द्रव्य गुण पर्यये, ठरतां वन्धन जाय...४३

नात-जात-लिंग-वेद-तन, माने मूढ हुं एज ;
अनादि सिद्ध अवाच्य हुं, आत्मा वुध मानेज...४४

सम्यग् दृग पाम्ये छते, वमन करे को भ्रान्त ;
पूर्व भ्रांन्ति संस्कार थी, साक्षरा-राक्षस वांत...४५

जड़ज अचेतन दृश्य आ, अदृश्य चेतन आप ;
रोप तोप को पर करूं, रहूँ साक्षीए व्याप...४६

गृहण-त्याग जड़ नो करे, व्हार रमे मति अन्ध ;
न ग्रहे त्यागे भोगवे, जड़ ने संत अवन्ध...४७

तन वच थी मन छोड़वी, जोड़ो ज्ञायक भाव ;
जड़ पेठुं मन जड़ वने, चेतन-चेतन भाव...४८

जग विश्वास्य सुरम्य आ, ज्ञेय-निष्ठ आभास ;
भवे रति-विश्वास क्या ?, ज्ञान-निष्ठता जास...४९

आत्मज्ञान वण कार्य को, मन मा अधिक म धार ;
आत्मार्थे वच-काय थी, वर्त्तो उदयाधार...५०

इन्द्रिय द्वारे देखतां, देखनार खोवाय ;
स्वयं ज्योति आनन्दघन, अन्तर मांज जणाय...५१

व्हारे सुख दुख अन्तरे, अेकड़ियो विललाय।
व्हारे सुख दुख अन्तरे, अभ्यासी नर पाय···५२

कहो सुणो इच्छो रमो, तन्मय आतमज्ञान;
वीजुं सौ भूल्ये मल्ये, सहजानन्द निशान···५३

तन-मन-वच-गृहचूड थी, ढजवे धर्म धतींग;
लड़े युद्ध आत्मा हणे, जीत्ये तागड़धींग···५४

विप+यः पी जीववा मथे, अज्ञ चक्रधर भुंड;
शात-चाट वाधित मरे, भरी वीठ थी तुंड···५५

कुगति-रात भावे सुइ, जाग्ये मदिरा पान;
हुं सारुं वकतो फरे, जड़ ने आत्म अजाण···५६

निज-पर-तन-जड़ हुं अजड़, एज निरन्तर लक्ष;
अवाध्य अनुभव रूप छुं, ठरे स्वात्म मां दक्ष···५७

अनुभव पथ उपदेशतां, ग्रहे न जड़ मत धार;
मन मौने जड़-भरत थऊँ, व्युत्थान वृत्ति विडार···५८

जे इच्छुं प्रतिवोधवा, ते चेतन्य अकथ्य;
ग्राह्य न वचन विलास थी, माटे मौन ज पथ्य···५९

हृदय नयण भींची वहिर, राचे चर्म चमार;
अन्तर दृग प्रभु मां ठरे, जड़ कौतुकता मार···६०

शोपण पोपण देह हुं, जाणे धर्म-अधर्म;
सुख दुख वोधन देह ने, मूढ लहे न मर्म···६१

मन-वच-तन-तन्मय दशा, आश्रव वन्ध संसार;
रत्नत्रयी तन्मय दशा, संवर मोक्ष प्रकार···६२

जाडे झीणे वस्त्र थी, स्थूल सूक्ष्म ना देह ;
पतलो जाडो देह पण, आत्म स्वरूप न तेह…६३

नूतन जीरण वस्त्र थी, देह न नूतन जीर्ण ;
जीर्ण नवो ए देह पण, आत्म स्वरूप अशीर्ण…६४

स्वांग ग्रहण के त्याग थी, जन्म मरण नट नोय ;
ग्रहण त्याग तन आत्म थी, जन्म मरण क्यम होय ?…६५

काकीड़े सिर - रक्तता, ते तेनुं न स्वरूप ;
राग द्वेष अज्ञान पण, तेम न आत्मा रूप…६६

जे आ सक्रिय जग लखे, अक्रिय काष्ट समान ;
ज्ञान समाधिज ते लहे, देहधारी भगवान…६७

धरी देह कंचुक थयो, चिन्मूर्त्ति भोगीश ;
विषय झेर वहतो भमे, दीर्घकाल सह रीश…६८

अणु राशी चय उपचये, देह युवा वृद्ध थाय ;
आत्म अवस्था मूढ गणी, हर्ष शोक वश जाय…६९

कृश अकृश देह डावड़े, चेतन रत्न सम्भाल ;
आत्म-भावना भाव तुं, चिद्घन मूर्त्ति त्रिकाल…७०

आत्म-भावना दृढ़ करे, नियमा तेनी मुक्ति ;
अदृढ़ धारणा थी लहे, शात-अशाता भुक्ति…७१

लोक-संग वाणी वहे, भमे चित्त चल-काक ;
भरत मृग संग वोध थी, योगी असंग अवाक्…७२

गुफावास-घरवास ने, सम विषम गणे मूढ ;
निश्चल ज्ञायक भाव मां, वसे दृष्टात्मा गूढ…७३

आ तन-आतम भावना, छे परभव तन बीज ;
आत्म भावना आत्म मां, एज मुक्ति फल-मींज...७४

आप पमाड़े आपने, मुक्ति अने संसार ;
निश्चय आप सद्-असद् गुरु, अन्य निमित्ताचार...७५

दृढ देहाध्यासी सदा, माने आत्म विनाश ;
तेने तन-परिजन तणा, मृत्यु थी बहु त्राश...७६

मृत्यु मित्र थी ना डरे, अबद्ध-स्पृष्ट तन वास ;
जीर्ण वस्त्र वत् तन तजे, ज्ञानी अभय निवास...७७

आत्म कार्य मा जागतो, छूटे जग व्यवहार ;
आत्म कार्य मा ऊंघतो, फसे अशरण संसार...७८

मांय जुओ तो आतमा, बा'रे तन-जग-जेल ;
मांय ठरी अच्युत बने, बा'रे ठेलम ठेल...७९

आत्मज्ञ प्रारम्भ मां, जग उन्मत्त जणाय ;
दृढतर अभ्यासे पछी, जग पाषाण लखाय...८०

सुणी सुणाव्यो बोध बहु, देह भिन्न छे आत्म ;
पण भाव्यो ना आतमा, क्यम प्रगटे परमात्म ?...८१

देह भिन्न दृढतर सदा, आत्म भावना भाव ;
स्वप्ने पण भूलाय ना, भेद-ज्ञान पथ धाव...८२

पुण्य-पाप-व्रत-अव्रते, उभय नाश थी मोक्ष ;
व्रत पण अव्रत परे तजी, अप्रमत्त गुण पोष...८३

तजी मुमुक्षु अव्रत गण, धरे व्रतोत्तर मूल ;
आत्म दशा ए व्रत तजी चढे श्रेणी अनुकूल...८४

अन्तर जल्प विकल्प नी, जालज छे दुख खाण ;
मन मौने ल्यो शिष्ट मिष्ट, आत्म समाधि प्रमाण...८५
अव्रती व्रत मां रमे, व्रती ज्ञान ने ध्यान ;
यथाख्यात चारित्र मां, वीतराग भगवान...८६
बाह्य-लिंग थी मोक्ष जो !, तो नटनुं पण थाय ।
भाव-लिंग थी मोक्ष छे, तज वेषाग्रह लाय...८७
जाति-वेद-वय देहना, देहाग्रह ज संसार ;
देहाग्रह थी केम लहे, देहातीत स्व सार...८८
देव-शास्त्र-गुरु-आग्रही, छोड़े जो ना राग ;
असंग आत्म अभ्यास वण, केम थाय वीतराग ?...८९
हमणा केवल मोक्ष ना, वके हीन पुरुषार्थ ;
त्यागी थई ढीला पड़े, चूके छे परमार्थ...९०
पंगु अंध खंधे चढ्यो, दूरे जोतां एक,
पण छे वे जण तेम कर, आत्म शरीर विवेक...९१
पंगु समज अंध चालवत्, ज्ञान क्रियाए मोक्ष ;
स्वानुभूति आदर करो, तजो शुष्क जड़ दोष...९२
अज्ञे ऊंघोन्मादवत्, सर्व अवस्था भ्रान्त ;
ऊंघोन्मादे भ्रान्ति ना, आत्मदर्शी जन शान्त...९३
सर्व शास्त्र कण्ठे छतां, जाग्रत मूढ बन्धाय ;
उन्मत्त थई सूतां छतां, ज्ञानी बन्ध नशाय...९४
बुद्धि ज्यां ज्यां हित जुए, त्यां त्यां ते तल्लीन ;
रुचि अनुयायी वीर्य पण, ज्यां श्रद्धा त्यां पीन...९५

लागे अहित ज्यां बुद्धि ने, भड़की भागे व्हार ;
कुमति सुमति अनुसार छे, सत्य असत्याचार...९६

प्रभुरूपे गुरु भक्ति थी, शिष्य प्रभु पद पाय ;
ज्योति स्पर्शे वाट तो, दीवे दीवो थाय...९७

अथवा आत्मज्ञ आत्म ने, सेवी प्रभु पद पाय ,
डाले डाल घसाई ने, प्रगटे वृक्षे लाय...९८

भक्ति ज्ञान सन्मार्ग थी, झटपट शिवपुर चाल ,
श्रद्धा के स्व विचार थी, छूटे जन्म जञ्जाल...९९

भूतज शुद्ध जो आतमा, मिथ्या मोक्ष उपाय ;
मन अशुद्धता टालतां, शुद्ध स्वरूप पमाय...१००

स्वप्न दृष्ट तन नाश थी, थाय न आत्म विनाश ;
तो जागृत तन विणसतां, आत्मा नो क्यम नाश...१०१

सुखमां भावित ज्ञान तो, दुखमां चलित जणाय ;
दुष्कर तप बल केलवी, बुध सुख दुख पर थाय...१०२

भाव कर्म थी द्रव्य कर्म, तेथी देह प्रवृत्ति ;
भाव अकर्मे आत्म थी, देह-कर्म, विनिवृत्ति...१०३

लखी जड़ क्रिया आत्म मां; मूढ सुख दुख भोग ;
लखी भिन्न निज पर क्रिया, अक्रिय बुध गतरोग ...१०४

आत्म बुद्धि पर थी टली; गई पर्यय भव वेल ,
आप आप घर मां रमे, सहजानंद सहेल...१०५

अज्ञ-आत्मज्ञ-केवली, त्रिविध आत्मत्तव अत्र ;
समाधितंत्राशय लही, भाव्युं भाव स्वतंत्र ...१०६

सहजज्ञान सहजे ठर्युं, सहजानन्द स्वतन्त्र;
दर्शन ज्ञाने रमण ए, सहज समाधि-तन्त्र···१०७

परम कृपालु देव श्री, पूज्यपाद गुरुराज;
ज्ञायक भावे सेवतां, सहजानंद जहाज···१०८

पूज्यपाद अर्चन करूँ, अष्टोत्तर शत फूल;
यथा जात मुद्रा नमूं, सहजानन्द प्रफुल्ल···१०९

—:००:—

ॐ

(१९७) नियमसार—रहस्य (पद्य)

प्रारंभ १६-६-५५

दोहा

मंगल :—

ॐ सहजात्म-स्वरूप प्रभु, नमुं परम-गुरुराज;
शुद्ध चैतन्य स्वामिने, सहजानन्द जहाज...१

पीठिका :—

सहज-समाधि सजाववा, हणवा भव-दुःख द्वंद;
नियमसार-रहस्ये रमुं, कथित प्रभु कुंदकुंद...२

नियमसार संसार मां, नियम छे वस्तु स्वभाव;
चेतनसे चैतन्यमय, जड़ने जड़ता भाव...३

पुद्गल धर्म अधर्म नभ, काल द्रव्य जड़-पंच;
नियम-मर्यादा ना तजे, नियमित विश्व-प्रपंच...४

जगत् प्रवर्त्तक नियम छे, नियमित ऊगे भाण ;
अग्नि-उष्ण जल शीतता, दिन रजनी क्रम जाण···५

नियम मर्याद अलंघ्य छे, जलधि न मूके कार ;
लंघे चेतन एक तूं, अरे ! धिक्कार !! धिक्कार !!! ···६

नियमसार रहस्ये रम्ये, शीघ्र टले भव-व्याधि ;
नियम-मर्यादा थी सधे, सहजानन्द समाधि...७

पर्याये उत्पाद-व्यय, ते पर यम नो पाश ;
निसरे जेथी पर्यय दृग्, हेतु-नियम स्वप्रकाश···८

टले चर्म-दृग अंधता, उघड़े अंतर्दृष्टि ;
निज प्रभुता निजमां लखे, नियमसार जिन दृष्टि...९

निर्गत-यम-फांसी सदा, सम्यग्-दर्शन-ज्ञान ;
चारित्र ए त्रण रत्न ते, कार्य-नियम सुविधान...१०

रत्नत्रयी अंकूशथी, नियमित मन-गज-वृत्ति ;
संवेगे शिव-मग चले, सारे नियम निर्वृत्ति...११

कारण-प्रभु स्व-स्वरूपमा, जोई जाणी रममाण ;
नियमसार शिव-मार्ग छे, तस फल छे निर्वाण...१२

मोक्षोपाय ए नियमनुं, कारण छे सम्यक्त्व ;
ते आप्तागम ने श्रद्धये, परख्ये जिन पर तत्व...१३

शका-मुक्त ते आप्त छे, शंका=सौ मोह-सैन्य ;
दर्शन-मोह विमुक्त जिन, क्षायिक-दृष्टि जघन्य...१४

घनघातिक-अरिहन्त जिन, सर्वोत्कृष्ट विश्वास्य ;
विकल-सकल-व्रती मध्य-जिन, आप्ते त्रिविध रहस्य...१५

अनुभव-वाणी आप्तनी, आगम=गुरुगम-बोध ;
शरणापन्न पणे सुण्ये, श्रद्धये तत्व-विशोध...१६

चेतन-जड़ द्रव्य श्रेणिए, बोध्युं तत्त्वनुं मर्म ;
गुण-पर्यय-युत लक्षणे, लखे मुमुक्षु स्व-धर्म...१७

चेतन-विज्ञान :—

कारण प्रभु निज आतमा, कार्य-प्रभु परमात्म ;
स्वयं ज्योति चिद्धातुमय, छे चेतन जीवात्म...१८

चित्-प्रकाश-वपरास जे, ते उपयोग लखाव ;
स्वापेक्ष ते स्वभाव ने, परापेक्ष विभाव...१६

वीतराग स्वभाव शुद्ध, विभाव अशुद्ध कषाय ;
मंद-कषायी शुभ अने, अशुभ तीव्र-कषाय...२०

चित्-प्रकाश फेलाईने, टके स्व रुचि अनुसार ;
ते श्रद्धा बे रूप छे, सम्यक् मिथ्याकार...२१

आत्मा भणी टकी रहे, सम्यक्-श्रद्धा एह ;
चिद्-जड़-मिथज देहे टके, मिथ्या-श्रद्धा तेह...२२

मिथ+य+आत्व=मिथ्यात्व छे, जड़-चेतन मैथुन ;
तज्जन्य देहादिके, चिन्-प्रकाश लहे घूम २३

मोह-गांठ रूढ गूढ घन, उवट-वाट-गुलाट ;
मूल भूल ए अनादिनी, पामे न सुखनी छांट...२४

दर्शन ज्ञान चारित्र ने, वीर्यादिक गुण-गंग ;
सम्यक्-मिथ्या पणुं लहे, श्रद्धा-सिन्धु प्रसंग...२५

वस्तु सामान्याकार मय, चित्प्रकाश–आभास ;
ते दर्शन अने ज्ञान तो, वस्तु-निर्णायक खास···२६

रुचित वस्तु विशेषमां, दृग्-ज्ञाने रममाण ;
चित्प्रकाश चारित्र ते, कहे मर्मना जाण···२७

कारण-स्वभाव-दृष्टि छे, आतम श्रद्धा मात्र ;
स्वात्म-दर्शने लीन ते, सम्यग् दर्शन अत्र···२८

आत्म-साक्षात्कार ए, आत्म-प्रतीति एह,
वलावो मुक्ति-मार्गनो, ग्रन्थि-भेद सह जेह ··२९

द्रष्टामां दृष्टि तणी, घनता सधे अखंड ;
केवल-द्रष्टारूपता, कार्य-दृष्टि निर्द्वन्द···३०

आत्मा भूली जोवुं ते, मिथ्या-दर्शन-मोह ;
चक्षु अचक्षु विभंग त्रय, विभाव-दर्शन द्रोह···३१

छे सहजात्म-स्वरूप ते, कारण-स्वभाव-ज्ञान ;
प्रातिभ=केवल बीज छे, तद्-विपरीत अज्ञान···३२

सम्यक् मिथ्या भेद बे, विभाव-ज्ञानोपयोग ;
मति-श्रुत-अवधि उभयवश, मनःपर्यव धुर-योग···३३

अवधि-मनःपर्यव विकल, केवल सकल-प्रत्यक्ष,
प्रातिभ स्वरूप-प्रत्यक्ष छे, मति-श्रुत बेय परोक्ष···३४

सहज-ज्ञान आराध्य छे, जस फल केवलज्ञान,
श्रुत-आलंबन दृढ़ करी, अन्ये न दीजे ध्यान...३५

सुमति मार्गानुसारिता, कुमति उन्मार्ग-खाण,
संत-बोध ए सुश्रुति छे, कुश्रुति अंधनी वाण–३६

सत्पथ हद लंघे नहीं, अतींद्रिय अवधिज्ञान ;
छोड़े ना उन्मार्ग हद[1], विभंग अवधि-अज्ञान...३७
मार्गे स्थितनां मन.पर्यय, पामे पर्यवसान ;
समाधिस्थ मन जेहथी, ते मनःपर्यवज्ञान...३८
मार्गे संचरतांय पण, मार्ग-बाह्य देखाय ;
पथ-परमावधि ए अतः, लोकालोक जणाय...३९
उपयोगे उपयोगनी, घनता सघी अखंड ;
कार्य-स्वभाव ए निर्विकल्प, केवलज्ञान असंद...४०
केवलज्ञान-प्रतीति ए, परिणमन=सम्यक्त्व ;
सर्व गुणांशानुभूति ए, एज तत्त्वनुं सत्त्व...४१
आठ-कर्म-आधारथी, टक्यो विषम संसार ;
मोहनीय वश सात छे, मोहे क्षोभ अपार...४२
माटे दर्शन-मोह छे, अनंत दुःखनुं मूल ;
सम्यक्त्व छे तस औषधि, करे मोह उन्मूल...४३
तेथी ए प्राधान्य छे, ए वण साधन व्यर्थ ;
तप जप संजम साधना, ए सह ते परमार्थ...४४
निरंतर स्व-प्रतीति ते, क्षायिक-सम्यक्त्व शांति ;
त्रूटक क्षायोपशमिक ने, उपशम वृत्ति-उपशांति...४५
दृग्-ज्ञाने स्वरूपस्थता, ते सम्यक् चारित्र ;
उलटुं चारित्र-मोह छे, ते ज क्षोभ अविरत...४६
मिथ्यात्व अविरति अज्ञता, विभाव-गुण उन्मार्ग ;
सम्यग्-ज्ञान-दृग-चरणते, स्वभाव-गुण सन्मार्ग...४७

---

१ ज्ञायक सत्ता न लखे

चेतन-पर्यय द्विविध छे, स्वभाव अने विभाव ;
'कार्य कारण वे भेदथी, छे निरूपाधि-स्वभाव· · ·४८
कारण–शुद्ध-पर्याय ते, अंतरात्म-वृत्ति-गेह ;
छे परम पारिणामिकी, भावे परिणति जेह· · ·४६
सिद्धात्म-सघन-प्रदेशता, अथवा अर्थ-पर्याय ;
क्षायक भावनी परिणतिज, कार्य-शुद्ध-पर्याय· · ·५०
सर्व-व्यापक निज ज्ञानमां, षड् गुण हानि-वृद्धि ;
अगुरु-लघु गुण-पर्यये, विरमे संत-सुबुद्धि· · ·५१
कारण-गुण पर्यय रमे, ते कहिये अंतरात्म,
कारण प्रभु पण तेज छे, अन्य अशुद्ध वहिरात्म· · ·५२
ते देहाकारे रमे, शात-अशात कुटाय ;
नर-तिरि-सुर-नारक-तने, विभाव-व्यंजन-पर्याय· · ·५३
मोह क्षोभ सुख दुःखनो, कर्त्ता-भोक्ता मूढ़ ;
वीतराग सुसमाधि नो, सहजानन्द अमूढ़···५४
देह देवले देव ए, शाश्वत शुद्ध खचीत ;
दर्शन ज्ञाने रमणथी, सहजानन्द प्रतीत· · ·५५
जड़-विज्ञान : २
पुद्गल धर्म अधर्म नभ, काल अचेतन द्रव्य ;
निज निज गुण-पर्याय युत, पांचे जड़ ज्ञातव्य···५६
पूरण-गलन स्वभाव थी, पुद्गल नाम कहाय ;
वने पूरणे स्कंध ने, गलने अणु रही जाय· · ·५७
स्वभाव-पुद्गल 'अणु' कह्यो, विभाग छे 'स्कंध' रूप ;
अणु-चउ स्कंध-छ भेद थी, पुद्गल मूर्त स्वरूप· · ·५८

भू-जल-पवन-अनल तणुं, कारण ते कारणाणु;
स्कंध-मुक्त अविभागी ते, कह्यो कार्य-परमाणु···५९
एक गुण स्निग्ध के रूक्ष ते, जघन्य बंध-अयोग्य;
तूर्य-भेद उत्कृष्ट-अणु, सम विषम बंध योग्य···६०
छेद्ये स्वतः संधाय ना, घन-वस्तु काष्ठादि;
अति-स्थूल-स्थूल भासता, स्कंध-भेद ए आदि...६१
स्थूल-स्कंध जलादि ते, छेद्ये स्वतः संधाय;
स्थूल-सूक्ष्म छायादि ते, छे अछेद्य अग्राह्य···६२
सूक्ष्म-स्थूल-स्कंधो कह्या, शब्द-स्पर्श-रस-गंध;
सूक्ष्म कर्म-वर्गण इतर, सूक्ष्म-सूक्ष्म ते स्कंध···६३
अवगाहन कद-सूक्ष्मता, जे आद्यंत ते मध्य;
तेथी इन्द्रिय-ग्राह्यना, अविभागी 'अणु' लभ्य···६४
वर्ण-गंध-रस एकेका, स्पर्श अविरुद्ध बे ज;
अणु-स्वभाव-गुण इतर-गुण, गाह्य इन्द्रि-पांचे ज···६५
पर-निरपेक्षक-परिणति ज, अणु-स्वभाव-पर्याय;
स्वजातीय स्कंध बंधने, अणु-विभाव-पर्याय···६६
परमार्थे परमाणु ने, पुद्गल-द्रव्य वदाय;
स्कंधो ने उपचार थी, पुद्गल रहस्य सदाय··६७
गति-स्थिति-कलो मार्ग ज्यम, एंजिन ने सापेक्ष;
धर्म अधर्म नभ द्रव्य त्यम, जीव-पुद्गल सापेक्ष···६८
स्वभाव-गति-स्थिति-स्थान-हेतु, अयोगी सिद्ध अणुने ज;
विभाव-गति-स्थिति-स्थान-हेतु, शेष जीव स्कंधने ज···६९

जेम घटोत्पत्ति निमितता, चक्र-भ्रमण सापेक्ष ;
पांचे द्रव्य-नवाजुनी काल-द्रव्य सापेक्ष···७०
अणु लंघे अणु मंदगति, काल ते समय विशेष ;
असंख्य समय निमेष मां, काष्ठा आठ-निमेष···७१
सोले काष्ठानी कला, साठ-घड़ी दिन रात ;
घड़ी बत्रीस कलातणी, मासे त्रीस दिनान्त···७२
बे छ वारे मासनां, ऋतु अयन ने वर्ष ;
भूत भावि ने वर्त्तातुं, काल भेद निष्कर्ष···७३
अनंत गुणा जीव-अणु थकी, 'समयो' वे'वार-काल ,
नभ-लोके कालाणु ते, छे परमारथ काल···७४
ए चारे द्रव्यो तणा, गुणो-पर्यायो शुद्ध ;
काल रहित पंच-द्रव्यने, अस्तिकाय कहे बुद्ध···७५
अस्ति=वस्तु-होवापणु, देह जेम ते काय ;
बहु प्रदेश काया बने, एक प्रदेश अकाय···७६
प्रति द्रव्ये अभिन्नांश ते, प्रदेश 'अणु' प्रमाण ,
संख्य असंख्य अनंतता, स्कंध-प्रदेशो जाण···७७
परमाणु-कालाणुनुँ, प्रमाण एक-प्रदेश ;
धर्म अधर्म नभ लोक ने, जीव असंख्य प्रदेश···७८
ए छ द्रव्य-समुदाय ते, विश्व वसे नभ लोक ;
छे अनंत प्रदेशमय, ते आकाश अलोक···७९
जाति-विजातिय बंधथी, जीव-पुद्गलो अशुद्ध ;
बाकी चारे शुद्ध छे, चेत्ये चेतन शुद्ध···८०

पाचे असूर्त स्वरूप छे, मूर्त ज पुद्गल-यंत्र;
क्षीर-नीरवत् एकठा, सौ शास्वत ज स्वतंत्र…८१

आप आपने शोधिने, लखी स्वतंत्रता आप;
वाकी सो भुल्ये लघे, सहजानंद अमाप…८२

शुद्ध-भाव ३

कर्मोपाधिज गुण-पर्यय, रहित 'प्रभु' उपादेय;
स्वात्म भिन्न जीवादि सौ, वाह्य तत्व छे हेय…८३

'कारण प्रभु' शुद्ध-भावमय, त्यां न शुभाशुभ भाव;
कर्म शुभाशुभ कर्मफल, शात अशात अभाव…८४

राग द्वेष अज्ञान ना, नहीं मान-अपमान,
विभाव रूप स्वभावके, हर्ष शोक नां स्थान…८५

द्रव्य कर्म स्थिति वंधना,—अष्ट विध प्रकृति वंध;
कर्म-रजनुं प्रवेश ना, तेथी प्रदेश-अवंध…८६

कर्म निर्जरा कालनी, फलद शक्ति=रसवंध;
द्रव्य-भाव कर्मोदयी, स्थानो नुं न सम्वन्ध…८७

क्षायिक—क्षायोपशमिक ने, औदयिक-उपशम भाव,
आवरणो सापेक्ष ए, चारे स्थान-अभाव…८८

जाति रोग जरा मरण, कुल-योनिनों भेद;
जीव स्थान चउ-गति-भ्रमण, मार्गण-स्थान न खेद…८९

निर्दोषी निर्भय असम, निःशरीर निर्दण्ड;
नीरागी निमूढ़ छे, निरालंव निर्द्वंद्व…९०

निःक्रोधी निर्मान-मद, निःशल्य निराकार;
निष्कामी निर्ग्रन्थ छे, ज्ञान-चेतनाधार…९१

अलिंग-ग्रहण अव्यक्त ए, अरस अगंध अरूप ;
असंहनन अबद्ध-स्पृष्ट, सहजानंदघन भूप···६२
अज अविनाशी अतींद्रिय, अमल सिद्ध-सम-एह ;
घट-घट परगट वसी रह्यो, सहज समाधि सुगेह···६३
देह-धर्म-आरोप-सौ, व्यवहारे ए मांहि,
शुद्ध भावने परखतां, शोध्या जड़े न कांइ···६४
शुद्ध भावने स्पर्शतां, दर्शन-मोह-विनाश ;
चित्त-चंचलता भोग-रुचि, साधन-श्रम नो नाश···६५
देहात्म-बुद्धि टली खुले, क्षायिक-दृष्टि सुज्ञान,
विमोह विभ्रम संशयो-व्यतीत तत्व-विज्ञान···६६
विज्ञाने इच्छा शमे, गमे आत्म-स्थिरता ज ;
बाह्यांतर व्रत-तप सधे, शुद्ध भाव फलतां ज···६७
शुद्ध भाव रहस्ये रमो, तजी शुभाशुभ भाव ;
शे'नी राह जुओ हवे, सहजानन्दघन दाव···६८

शुद्ध-चारित्र ४

कारण-प्रभु-'रखवाल' जे, अप्रमत्त-शुद्धभाव ;
स्व-पर-प्राण पीड़े नहीं, अहिंसा भव-जल-नाव···६९
द्रव्य स्वतन्त्र-प्रतीति सह, भाषण हित-मित-पथ्य ;
राग-द्वेष-मोहने तजी, आत्म-भान सह सत्य···१००
यावत् कार्मण वर्गणा, चोरे नहिं पर-द्रव्य ;
सर्व विकल्प सन्यास ए, अचौर्य व्रत कर्तव्य···१०१
कर्मोदय मां ना भले, ना पर-परिणति=रंग,
अखंड-ब्रह्म-समाधि ज्यां, ब्रह्मव्रत ना स्त्री-संग···१०२

कारण प्रभु भिन्न जे रही, परिगृह-गाह-चूड़;
मूर्च्छा नहीं जग एंठमां, अपरिग्रह व्रत मूल···१०३
कारण प्रभु दरबार प्रति, गमन ईर्यापथ शोध;
संयम हेतु प्रवर्त्तना, इर्या-समिति प्रबोध···१०४
भेद विज्ञान स्याद्वाद सह, अनुभव-भाषण जेह;
सावद्य-वचनो त्यागी ने, भाषा-समिति एह···१०५
कारण-प्रभु गवेषी ने, अणाहार-पद लीन;
सहजानन्द-रस पी छके, अेषणा-समिति पीन···१०६
वहिरात्मा-निक्षेपी ने, अंतरात्म-आदान;
परमात्मानी ध्यावना, तूर्य-समिति प्रधान...१०७
आत्म भ्राति अविरति तथा, प्रमाद कषाय योग;
क्षपक-श्रेणिए परठवे, पंचमी समिति अयोग ··१०८
कारणप्रभु पद्पकंजे, मन-मधुकर तल्लीन;
निर्विकल्प अनुभव-रसे, ए मनगुप्ति अदीन···१०८
मन-मौनी थातां रहे, वचन-वर्गणा स्तब्ध;
ग्रहण-निसर्ग न तेहनो, वचन-गुप्ति उपलब्ध···११०
चेतनमय निज कायमां, वास्तु करे अडोल;
विदेहिता अवधूतता, काय-गुप्ति अणमोल···१११
महाव्रत-गुप्ति-समिति वड़े, स्वरूप साधक जेह;
निरालम्ब निर्ग्रंथ ए, समाधिष्ठ मुनि तेह···११२
जेना अनुभव-बोधथी, प्रगटे आतमज्ञान;
श्रुत-केवली निर्ग्रंथ ते, उपाध्याय भगवान···११३

जेना चारित्र दर्शने, टले शिथिल-आचार ;
युगप्रधान आचार्य प्रभु, मुमुक्षु-गण रखवाल···११४
कार्य-अनन्त-चतुष्क-प्रभु, घन-घातिक अरिहंत ;
भव-तारक जगपूज्य जिन, धर्मचक्री जयवंत···११५
शुद्ध पूर्ण चैतन्यघन, अलख अडोल स्वरूप ;
योगीगम्य अकृत्रिम पद, कार्य-प्रभु सिद्ध भूप···११६
उपादान निज आत्मने, कारणता दातव्य ;
कारणे कार्य-प्रसिद्धि अतः, कारण प्रभु छे सेव्य···११७
उपादान सत्पात्रता, निमित्त कारण सत्संग ;
उभय कारण-प्रभु सेवतां, सहजानंद अभंग···११८
कार्य प्रभु पद-व्यक्तता, शुद्ध चारित्र प्रसाद ;
सहजानंद समाज ने, चारित्र रहस्ये स्वाद···११९
सहजानंद समाज नो, निश्चय मुख्य वे'वार ;
जड़ खटपट झटपट तजी, चित्त शुद्धि करनार···१२०

शुद्ध-प्रतिक्रमण ५

कर्ता कारयिता न तन, नर-तिरि-नारक-देव ;
अनुमंता नहिं देह हुं, छु' परब्रह्म सुदेव···१२१
मार्गण गुण जीवस्थानना, कर्त्ता कारयिता न ;
अनुमंता ना छु' अकल, विष्णु ज्ञान निधान···१२२
बाल तरुण वृद्ध हुँ नहीं, ना कर्त्ता अनुमंत,
कारयिता ना छु' अलख, बुद्ध शुद्ध गुणवंत···१२३
कर्त्ता कारयिता न हुं, राग द्वेष के मोह ;
अनुमंता तद्रूप ना, वीतराग—जिन—ओह !···१२४

क्रोध लोभ मद कपट ना, कर्त्ता कारयिता न ;
अनुमंता ना छुंज हुँ, सहजानन्द शिव खाण···१२५

भेदाभ्यासी मुमुक्षुओ, सहज थाय मध्यस्थ ;
प्रतिक्रमण-परमार्थथी, रहे सदा स्वरूपस्थ···१२६

बाह्यांतर जल्पो तजी, रागादिक मल धोइ ;
कारण प्रभु ने ध्याववुँ, प्रतिक्रमण कर ओइ···१२७

आत्म-लक्ष खंडित थवुं, विराधना-जड़-एज ;
ए अपराध ज ना करे, प्रतिक्रमण मय तेज···१२८

दर्शन-ज्ञाने रमण वण, छे वधुं अनाचार ;
प्रतिक्रमण मय तेज जे, रहे स्वरूपाकार···१२९

वीतराग-जिनमार्ग वण, शेष सकल उन्मार्ग ;
प्रतिक्रमण मय ते चले, रत्नत्रयी सन्मार्ग···१३०

निदान माया भ्रांति त्रय, काटेथी जे मुक्त ;
अनुभव-पथ चाली शके, प्रतिक्रमण संयुक्त···१३१

मन वच काय विकार तजी, त्रिगुप्ति-गुप्त सुसंत ;
मन-वच-तन मौनी मुनि ज, छे प्रतिक्रमणवंत···१३२

धर्मध्यानथी शुक्लमां, समजी जेह शमाय ;
आर्त्त-रौद्रता छोडीने, प्रतिक्रमण मय थाय···१३३

देह भावनाथी गयो, व्यर्थ अनादि काल ;
आत्म भावना भावरे, जीव ! करे का वार ?···१३४

जेम हजारो पुट लही, सहस्र-पुटी बलवान ;
आत्म भावना पुट दिधे, आत्मा सिद्ध-समान···१३५

मिथ्या भावो छोडीने, सम्यक् भावे लीन ;

प्रतिक्रमण मय तेज जे, सहजानन्द-रस-पीन…१३६

सधे मुक्ति जस ध्यान थी, आत्मा उत्तम पदार्थ ;

माटे आतम ध्यान छे, प्रतिक्रमण-[1] उत्तमार्थ…१३७

पंच पूज्यमां पूज्य नुँ, ध्यान ज छे शिव-गेह ;

माटे सकल-अतिचार नुं, प्रतिक्रमण पण एह…१३८

प्रतिक्रमण सूत्रे कह्युं, ते भावे जे भाव ;

प्रतिक्रमण रहस्ये रमे, सहजानन्द स्वभाव १३९

शुद्ध प्रत्याख्यान :— ६

मन-वच-जल्पो त्यागीने, कारण प्रभु नुं ध्यान ;

त्याग अवस्था ज्ञानमा, निश्चय प्रत्याख्यान…१४०

केवल-दर्शन-ज्ञानघन, केवल-सौख्य-निधान ;

केवल चेतन वीर्यमय, सोहं ज्ञानी-ध्यान…१४१

जोड़े ना परभावने, तजे स्वभाव न आप ;

जाणे जुए जे सर्व ने, सोहं ज्ञानी जाप.. १४२

प्रकृति-स्थिति-प्रदेश-रस, बंध रहित जे जीव ;

सोहं सोहं ध्यावतो, स्थिरता त्या ज सदैव…१४३

मुझ निर्मम सम-घर रहुं, मुझ आलम्बन हुं ज ;

देहादि अहं-मम बधुं, सौ वोसरावुं छुं ज…१४४

मुझ दृष्टिमा हुं ज हूं, ज्ञान चारित्रे हुं ज ;

संवर - योगे हु खरे, प्रत्याख्याने हूँ ज…१४५

---

१ सलेखना

जन्म मृत्यु दुःख मां वधे, अरे ! एकलो हूँ ज ;
भ्रान्तिथी जन्म्यो मुओ[1], पण अहो ! अमर छुं ज…१४६

शास्वत दर्शन-ज्ञानमय, एक मुझ आतमराम ;
अन्य संयोगी भाव सौ, तेनुं मने न काम…१४७

त्रिविध-त्रिविधे वोसिरे, दुश्चेष्टा करी जेह ;
त्रिविधे सामायिक करुं, निर्विकल्प गुण-गेह…१४८

वैर नथी मने कोइ थी, सौथी समता पीन ;
सौ आशा वोसरावी ने, थाउं[2] समाधि लीन… १४९

शांत दांत विक्रान्त भव-भीरू सत्पुरुपार्थी ;
अधिकारी पच्चक्खाण नो, सहज समाधि अर्थी…१५०

प्रत्याख्यान-रहस्यमां, वृत्तिओ जेनी लग्न ;
भेदाभ्यासे रत सदा, सहजानन्दघनमग्न…१५१

शुद्ध आलोचना :— ७

त्रिविध कर्म व्यतिरिक्त जे, निष्कर्म चेतन ध्यान ;
कहिए शुद्ध आलोचना, जेम खड्ग ने म्यान…१५२

आलोचना अविकृति करण, आलुंछन भावशुद्धि ;
चउभेदे आलोचना, करता चित्त विशुद्धि…१५३

जे समरस मन मन्दिरे, देखे आतम-देव ;
आलोचन सार्थक्य ते, कहे देवाधिदेव…१५४

समता भाव अंगूछणे[3], लुंछन आश्रव-स्वेद ;
चिद्धातु-घनमूर्तिनुं, आलुंछन निर्वेद…१५५

---

१ मर्यो २ रहुं ३ अंगलुछणे

अनुकूल प्रतिकूल हो[!] प्राप्त परिस्थिति माय ;
रुष तुष के गभराट[1] ना, अविकृति करण ज त्याय ··१५६
निमित्त वसे जे जे उठे, सारा-नरसा-भाव ;
भिन्न जाणी समरस रहे, भाव-शुद्धि नो दाव · १५७
देहभाव आलोचीने, आतम भाव विशुद्ध ,
कार्यं प्रभुता प्रगट कर, सहजानन्दघन बुद्ध···१५८

शद्ध प्रायश्चित ८

करी भूल फरी ना करे, चीलो वदली चाल ,
पड्या पछी झट उठीने, प्रायश्चित शम-ढाल···१५९
कषाई[2] ने संहारवा, एकाग्र थई अज[3] चित्त ;
सवल घसारो जे करे, ते निश्चय-प्रायश्चित्त···१६०
गुस्सा पर गुस्सो करे, दीनपणानुं मान ,
माया नो साक्षी रहे, लोभ आत्मनुं ध्यान ··१६१
उत्कृष्ट निज अनुभूतिमां, अफर जम्युं जे चित्त ,
बीजुं कई न सांभरे, ते निश्चय प्रायश्चित्त · १६२
निरीह ऋषिराजो तणी, जे जे चेष्टा थाय ;
ते वधुंज प्रायश्चित छे, अधिक शुं कहेवाय ? १६३
कर्म-गंज दारू तणो, एक भडाके नाश ;
ब्रह्माग्नि कण एकथी, प्रायश्चित्त ए खास ··१६४
ज्ञान आरसी मां अहो ! आखुं जगत् शमाय ,
तेमज आतम-ध्यानमा, साधन सर्व शमाय · १६५

---

१ उन्माद २ कषायभाव ३ आत्मा

वागजाल सौ छोड़िने, हुं मारूं दई मार ;
आप आप-रूपे रमे, प्रायश्चित नो सार···१६६

कायानी माया तजी, समरस चिद्घन मूर्ति ;
देहाध्यास विमुक्तता, कायोत्सर्ग सुयुक्ति···१६७

मूल—भूल थोड़ी छतां, व्याज तणो नहिं पार ;
माटे मूल-प्रायश्चित्त थी, सहजानंद अपार···१६८

सहज-समाधि ६

दृश्य अदृश्य करी अने, अदृश्य ने दृश्य रूप ;
ध्यावे अलख स्वभूपने, सहज-समाधि-स्वरूप···१६९

भावि-चिन्ता भूत-स्मृति, वर्त्तमान आशक्ति ;
टाली मन-मौनी थतां, सहज-समाधि-व्यक्ति···१७०

घरे रहो तो नर्शवत्, नटवत् रहो बजार ;
साम्य-भाव जो ना डगे, सहज-समाधि अपार···१७१

सावद्य-विरत त्रिगुप्त ने, इन्द्रिय समूह निरुद्ध ;
स्थायी सामायिक तेह ने, सहज-समाधि विशुद्ध···१७२

वर्त्तन जेवुं निज भणी, तेवुं पर-प्रति होय ;
स्थायी सामायिक तेह छे, समाधि कारण सोय···१७३

दैन्य के अभिमाननी, आग तणो न प्रवेश ;
स्थायी सामायिक तेहछे, सहज-समाधि विशेष···१७४

दुःखिया मां सुख वांटी[1] ने, सुख-दुःख थी रहे दूर ;
स्थायी सामायिक तेहने, समाधि छे भरपुर···१७५

---

१ दानदेकर

कंचन-लोह-बेड़ी समा, वर्जे पुण्य ने पाप ;
स्थायी सामायिक तेहने, रहे समाधि व्याप···१७६

हास्य शोक रति अरति भय, घृणा काम नहिं लेश ;
स्थायी सामायिक तेह छे, सहज समाधि प्रवेश···१७७

तप जप संयम नियम व्रत, जो समता सह होय ,
स्थायी सामायिक तेह छे, समाधि कारण सोय···१७८

आर्त्त-रौद्र स्पर्शे नहीं, धर्मे शुक्ल प्रवेश ;
स्थायी सामायिक तेहने, सहज समाधि अशेष···१७६

मौन व्रत उपवास के, गुफावास तन-कलेश ;
शास्त्रज्ञान पण शुं करे, जस मन साम्य न लेश···१८०

माटे साम्य-गृहे रही, रही, करो सकल व्यवहार ;
प्राप्त-उदय साक्षी पणे, सहजानन्द जुहार···१८१

शुद्ध-भक्ति १० (गुरु वंदना)

परम पंचम[1] भाव थी, अडग मन सावधान ;
अभेद रत्नत्रये जुड़े, कार्य-भक्ति-निर्वाण···१८२

भक्ति-मुक्त-सत्पुरुषनी, प्रशस्त राग प्रधान ;
अकपट शरणापन्न थई, कारण-भक्ति प्रमाण···१८३

रागादिक परिहार मां, जोडयुं राखे चित्त ;
सर्व विकल्प अभाव सह, योग-भक्ति समचित्त···१८४

जोड़युं राखे आत्म ने, आप्त बोधमां जेह ;
चोक्खो थई स्वच्छंद दही[2]; योग-साधना तेह···१८५

१ पारिणामिक २ जनाकर

आत्मवश अंतरातमा, परवश ते वहिरात्म ;
आत्म-सिद्ध परमातमा, त्रिविध अवस्था आत्म...१६६
वृति-परवश ते हींजडो, स्ववश वृति सतिरूप ;
...परम पुरुष-पति भक्तिए, प्रसवे आत्म स्वरूप...१६७
आत्म-ज्ञान अधिकारी ना, हिजडो अरे ! अभाग ,
परमारथ-युद्ध मोरचो, जोई करे नाश भाग.. १६८
होय जो श्रमण-लेबासमा, करे संघ विखवाद ;
आवश्यक कंठाग्र पण, तजे न शुकरी स्वाद ..१६६
कूकर जेम भौं भौं करे, सुणी सुनाई वात ;
पण ते जीरवी ना शके, करे आत्मनी घात...२००
जो नपुंशकता छोड़िने, जगवी सत्पुरुषार्थ ;
वृति जये विजयी थया, आवश्यक परमार्थ...२०१
वृति-दोरडु हाथ मां, ज्यां दोरे त्या जाय ;
ज्या वांधे त्या स्थिर रहे, जेम गरीबड़ी गाय...२०२
मान-सरोवर हंसलो, करे न विष्टाहार ;
तेम मुमुक्षु-वृतियो, भमे न जग-अेंठवार...२०३
रहे स्वरूपाकार नित, साम्य शुक्ल निज धाम ;
यथाख्यात-चारित्रमय, वीतराग विश्राम...२०४
कर प्रतिक्रमण ध्यानमय, स्वरूपाकारे भव्य ! ;
शक्ति-हीन जो होय तुं, तो श्रद्धा कर्तव्य...२०५
प्रतिक्रमण आलोचना, नियमादिक पच्चखाण ;
वचनोच्चारण जे क्रिया, ते स्वाध्याय प्रमाण...२०६

आवश्यक रहस्ये रम्ये, सधे मौनता भाव,
स्वरूप गुप्त असंग ले, ज्ञान-निधिनो ल्हाव २०७
अपूर्ण-घट छलकाय पण, पूर्ण रहे थिर थाप ;
न पड़े वाद विवाद मा, रहे स्वरूपे व्याप…२०८
आवश्यक क्रम एहथी, आप्त-जनो थया सिद्ध ;
अप्रमत्त थई ने लह्या, सहजानन्दघन ऋद्ध…२०९

शुद्ध उपयोग :- १२

जाणे जुओ निज आतमा, परमार्थे सर्वज्ञ,
व्यवहारे थी सर्वने, एम कहे मर्मज्ञ २१०
वर्ते ताप-प्रकाश जेम, सूर्य मा एक साथ ;
वर्ते दर्शन-ज्ञान तेम, सर्वज्ञे एक साथ…२११
स्वर-पर-प्रकाशक आतमा, पर प्रकाशक ज्ञान ;
दर्शन स्व-प्रकाशक ज छे, ए अेकान्त अज्ञान…२१२
पर-प्रकाशक ज्ञान जो, ठरे ज दर्शन-भिन्न ;
निराधार थई जड़ बने, माटे बन्ने अभिन्न…२१३
पर-प्रकाशक आत्म जो, ठरे ज दर्शन भिन्न,
विना दृष्टि कोने जुओ, माटे बन्ने अभिन्न २१४
ज्ञान-जीव पर-द्योतका, तेथी दृष्टि वे'वार ;
परमार्थे स्व-प्रकाशका, तेथी दृष्टि पण धार…२१५
जाणे जुए प्रभु स्वात्मने, लोकालोके न लक्ष्य ;
ए दृष्टि ज परमार्थनी, जेथी स्वरूप प्रत्यक्ष २१६
जाणे लोकालोकने, सर्वज्ञ नहीं आत्म,
ए दृष्टि व्यवहार नी, कथी ज्ञान माहात्म्य २१७

स्व पर सौ जे देखतो, तेने ज्ञान प्रत्यक्ष,
देखे न सम्यक् सर्वने, तेने ज्ञान परोक्ष · २१८
जीव स्वरूप ज ज्ञान छे तेथी स्व स्वनो जाण ;
भिन्न ठरे ए जीव थी, जो स्व स्वनो अजाण···२१६
ज्ञान तेज छे जीव ने, जीव ते ज छे ज्ञान,
तेथी स्व-पर-प्रकाशका, आत्मा दर्शन ज्ञान २२०
परमावधिए जाणिने, लोकालोक स्वरूप ;
सर्वावधिए निर्विकल्प, सर्वज्ञ लीन स्वरूप २२१
जाणेलु शु जाणवुं ! ज्ञप्ति तृप्ति अभंग,
आप आप मा परिणमे, केवल ज्ञान असंग २२२
जाणे जुओ बधुं छतां, ईच्छा ना सर्वज्ञ,
तेथी सदा अबंध छे; एम वदे मर्मज्ञ २२३
भाव मन-परिणाम सह, साभिलाष मुख-वाणि,
ते बंधन कारण कही, इतर अबंध प्रमाणि ··२२४
गमनादिक चेष्टा बधी, वर्त्ते उदय प्रयोग ;
इच्छा रहित अबंध प्रभु, नहिं भाव-मनोयोग २२५
आयु-क्षये सौ कर्म-क्षय, शुद्ध बुद्ध प्रभु सिद्ध ;
धर्मान्ते लोकातमा, रहे आकृतिम-पद-ऋद्ध २२६
कर्म जन्म जरा मरण, बाधा पीड़ न ज्यांई ;
निद्रा मोह क्षुधा तृषा, आर्त्त रौद्र भय काई २२७
देह इन्द्रिय उपसर्ग ना, विस्मय चिंता भुक्ति,
धर्म-शुक्ल-ध्यानो नहिं, आप्त कहे ए मुक्ति···२२८
पुनरागमन न ज्याथकी, अव्याबाध समाधि ;
चिद्घन मूर्ति अस्तित्व छे, वर्जित सकल उपाधि २२६

सिद्ध तेज निर्वाण छे, निर्वाण ज छे सिद्ध,
केवल दर्शन-ज्ञान घन, वीर्य-सौख्य समृद्ध···२३०

शुद्ध-उपयोग पसायथी, कारण कार्य स्वरूप;
आप-आप-रूपे थया, शुद्धात्मा सिद्ध-भूप···२३१

प्रशस्ति :— १३

कर्णाटे गिरि-गह्वरे, आतम साधन काज;
गुप्त-मौन-असंगता, सिद्ध करवानी दाझ···२३२

निज प्रमादने टालवा, कर्युं आ सुप्रयत्न;
सुज्ञो भूल सुधारजो, करी ने अनुभव यत्न···२३३

ज्ञानी-आशय विरुद्ध जे, काँई लखायुं होय;
निःशल्य भावे तेहनुं, मिथ्या-दुष्कृत मोय···२३४

ईर्षावश कोइ अज्ञ दे, अनुभव पथ ने आल;
तेनी चिन्ता शुं करे, तुं तारुं सम्भाल···२३५

आप्त-बोध प्रमाणिने, पूर्वापर अविरुद्ध,
निज पुष्टि अर्थे रच्युं नियम रहस्य विशुद्ध ·२३६

नियमसार-रहस्ये थई आत्म-वृत्ति नी पुष्टि,
सहज समाधि प्रदायिका, सहजानन्दघन वृष्टि···२३७

परम कृपालु देव अहो! आप्त परम गुरुराज;
चरणे करूं समर्पणा, निज सम्पत्ति महाराज···२३८

ॐ शान्ति ! ॐ शान्ति !!

(समाप्ति ता० २५-६-५५ रविवार)



(१९८) दर्शन पूजा स्तवन

[चाल-ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे]

चलो सखि श्रद्धा! प्रभु मंदिरे रे, दर्शन-पूजन-काज;
प्रभु दर्शनथी आत्म दर्शन सधे रे, पूजत पूज्य-स्वराज···चलो० १
असंख्य प्रदेशी शुद्ध मन-मंदिरे रे, प्रभु सहजात्म स्वरूप;
सर्वांगे व्यापक नित्य ध्याइये रे, अनंत चतुष्ठय भूप··चलो० २
पांच मिथ्यात्व-वसन ते अभिगमा रे, दश+त्रिक(३०)मोहनिय-स्थान
अनंतानुवंधी-चउ-साथीओ卐रे, तजी करो वहुमान,··चलो० ३
त्रणी दृष्टि-मोह-त्रिक ढगली००० करो रे, चोक्खे चित्त धरो-ध्यान;
प्रगटे अनुभव-ज्ञान केवल-कला रे, साध्य-बिन्दु० सिद्ध स्थान...चलो० ४
योग-त्रयी प्रभु चरण चडावीओ रे, अंग-पूजा अभिराम;
समिति-गुप्ति थी प्रवृत्ति निवृत्तिए रे, अग्र-पूजा गत काम···चलो० ५
कषाय थी उपयोग न जोड़िए रे, भाव पूजा ए खास;
प्रतिपत्ति-पूजा वीतरागता रे, सहजानंद विलास...चलो० ६

(१९९) दिव्य सन्देश-चेतन शुद्धि

[राग-ऋषभ जिणंद सुं प्रीतड़ी]

चेतन शुद्धि केम करू ? कहो परम कृपालु देव ! दयाल !!
स्वच्छंदे साधन बहु कर्यां, पण तेथी वाधी उलटी जंजाल…चे० १
दिव्य ध्वनिए प्रभु एम कहे, सांभल रे मुमुक्षु ! शुद्धि-प्रकार ;
चित्त अशुद्धि जड़ निमित्त थी, देहादिक कर्म तणो व्यभिचार…चे०२
आत्म बुद्धे जड संग थया, तथा जडता अबोधता चित्त मझार ;
पर जड अहं ममता थकी, आपो आप भूली भरो संसार…चे० ३
कर्म-संयोग-पर्याय नी, मूको जड़-ममता-अहंता असार ,
उदये राखो चित्त सम रसी, नट-नर्स परे रहो घर के व्हार…दिव्य४
वृत्ति उद्गम स्थले स्थिर करो, जिम रेडिअे पिन रेकार्ड नो संग;
चेतन शुद्धि अभ्यास ए, सहजानंदघन कथरोटी-गंग…दिव्य० ५

पृ० १३६ में :—

शुभभाव फल छे देव संपद, अशुभ नारक आपदा;
वेड़ी कनक ने लोहनी, स्वाधीनता ना त्यां कदा !
माटे शुभाशुभ उभय छोड़ी शुद्ध भावे स्थिर रहो;
देहादि दुख अभाव सहजानंदघन ते पद लहो !!

पृ० १३७ में धून :—

जब पावे मन गज विश्राम, आपही सेवक आपही स्वाम ॥

